राहुल सांकृत्यायन की इतिहास-दृष्टि

राहुल सांकृत्यायन की इतिहास-दृष्टि

डॉ चन्द्रभानु प्रसाद सिंह

धरती प्रकाशन

प्रकाशक : [illegible] प्रकाशन [illegible] बीकानेर (राजस्थान) / मुद्रक : [illegible]
[illegible] दिल्ली 110032 / संस्करण : प्रथम 1987 /
मूल्य : 70 रुपये मात्र।

RAHUL SANKRITYAYAN KI ITIHAS DRISTI
by Dr. Chandra Bhanu Prasad Singh Price 70/

पूर्व स्वर

अब तक राहुल के रचना-कर्म पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं हुआ है। प्राय साहित्य के मूल्यांकन के परम्परागत मानदण्डों से राहुल की रचनाओं का विश्लेषण किया गया है, जबकि ये रचनाएँ परम्परागत मानदण्डों का अतिक्रान्त करती हैं और सर्वथा नये मूल्यों की स्थापना करती हैं। लेखकों ने ज्यादा श्रम राहुल की भाषा, शैली आदि रूपगत पक्षों के विश्लेषण में खर्च किया है, जबकि राहुल की मूल चिन्ता अन्तर्वस्तु की है।

राहुल एक मार्क्सवादी साहित्यकार विचारक हैं, लेकिन हिन्दी के स्थापित और ख्यातिप्राप्त मार्क्सवादी आलोचकों ने उन पर नहीं के बराबर विचार किया है। यह और बात है कि राहुल का लेखन इन आलोचकों के लेखन से कई मायनों में आज भी अधिक प्रासंगिक तथा महत्वपूर्ण है। एक नामी मार्क्सवादी आलोचक ने अवश्य हिन्दी उर्दू विवाद के सन्दर्भ में राहुल पर विचार करने की कृपा की और हिन्दी की वकालत करने के कारण उन्हें साम्प्रदायिक तक कह डाला। यद्यपि अब वे राहुल से भी कहीं ज्यादा कठोर होकर हिन्दी की वकालत कर रहे हैं। इसी नामी आलोचक ने राहुल पर इतिहास की मनमानी व्याख्या करने का भी आरोप लगाया है, जबकि हकीकत ठीक इसके विपरीत है। राहुल ने कई ऐसी महत्वपूर्ण तथा मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत की जिनसे हिन्दी आलोचना तथा इतिहास-लेखन की कई मुश्किलें हल हो जाती हैं। हिन्दी के धुरन्धर मार्क्सवादी आलोचक राहुल का नाम विस्मृत करते हुए इन स्थापनाओं को अपनी मौलिक सोच के रूप में प्रस्तुत करते हैं। लेकिन ऐसे आलोचक प्रवर राहुल के योगदान को स्वीकार करना तो दूर उनका नाम तक लेना अपराध समझते हैं। राहुल पर सबसे अधिक आक्रमण पुराणपन्थी आलोचकों ने किया है, क्योंकि राहुल की मान्यताएँ उन्हें खतरनाक तथा परिवर्तनकामी लगती हैं। पुराणपन्थियों की दृष्टि में राहुल ने इतिहास पर मार्क्सवाद को लाद दिया है ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ा मरोड़ा है, यौन का विकृत चित्रण किया है आदि-आदि। सारत राहुल दुहरी मार के शिकार होते हैं। मार्क्सवादी खेमे से उन्हें कोई खास सहानुभूति नहीं मिलती। दूसरी ओर, पुराणपन्थी आलोचक उन पर जमकर प्रहार करते हैं।

इस बीच अगर किसी शोधार्थी ने शोध की धुन मे उन पर विचार भी किया, तो बडी ही लचर शैली म ।

राहुल की मूल चिन्ता अपने समय और समाज को समझने तथा भविष्य की दिशा निर्धारित करने की है । इसके लिए व इतिहास की व्यापक यात्रा करत हैं क्योकि अतीत को समझे बिना वतमान और भविष्य को नही समझा जा सकता है । राहुल के समावश सम्पूण लेखन के केन्द्र म इतिहास है । कहानी हो या उपन्यास, जीवनी हो या संस्मरण, यात्रा वत्तान्त हो या धम दशन सम्बन्धी लेखन—इन तमाम सन्दर्भों मे इतिहास-यात्रा सम्पन्न की गयी है । साहित्येतिहास और समाज के इतिहास लेखन के रूप मे तो राहुल की इतिहास चिन्ता प्रकट हुई ही है ।

राहुल ने रचनात्मक लेखन, हिन्दी के प्राचीन रचनाकारा और रचनाओ के विश्लेषण, हिन्दी और उसकी लोक भाषाओ के विवेचन, भारत और अन्य मध्य एशियाई देशा के इतिहास के कुछ महत्वपूण अध्याया के विवेचन आदि विभिन्न लेखकीय कर्मों के द्वारा इतिहास की व्यापक और बहुआयामी यात्रा की है । मैंने इन इतिहास-यात्राओ की प्रामाणिकता, विशिष्टता, मौलिकता और प्रासगिकता के विवेचन की कोशिश की है । विषय प्रतिपादन को बोधगम्य और सरल बनाने के लिए विभिन्न विचार बिन्दुओ को उप शीषका के अन्तगत रखकर विवेचित किया गया है । यद्यपि राहुल की इतिहास-यात्रा विभिन्न रूपा तथा विभिन्न सन्दर्भों म सम्पन्न की गयी है और उनका विवेचन भी विभिन्न अध्याया और उपशीषका के अन्तगत किया गया है, लेकिन इसका यह अथ नही कि राहुल की इतिहास यात्रा भानुमती का पिटारा है । वस्तुत राहुल की इस बहुआयामी इतिहास यात्रा म एक वैचारिक सगति है । उनके पास एक सश्लिष्ट इतिहास दृष्टि है जो विभिन्न रूपा म तथा विभिन्न स्तरो पर व्यक्त हुई है ।

राहुल एक ऐसे साहित्यकार विचारक है जो एक सही विश्वदृष्टि के लिए सम्पूण जीवन सतत सघष करते हैं, विचार मथन का एक अनवरत सिलसिला कायम रखते हैं । तभी तो एक सन्यासी के रूप म अपना सामाजिक जीवन शुरू कर चुक नही जात । वे आय समाज तथा बौद्ध-दशन म भी अपनी आस्था व्यक्त करते हैं पर एक वैचारिक चेतना और समग्र विश्व दृष्टि के लिए अनवरत आत्म-सघष करनवाले राहुल को अन्तत मार्क्सवादी दशन ही एक सही वचारिक फलक प्रदान करता है । 1938 40 तक आते-आते राहुल मार्क्सवाद मे पूणत अपनी आस्था व्यक्त करते हैं और इससे सैद्धान्तिक औजार ग्रहण कर इतिहास यात्रा म प्रवत्त होत है ।

राहुल इतिहास को वग-सघष के रूप म देखते हैं और इसके माध्यम स निरन्तर विकासोन्मुख मानव समाज का अध्ययन करत हैं । इस सघष म उन्होंने हर समय निम्न वग या उसके राजनीतिक सामाजिक साहित्यिक प्रवक्ताओ का पक्ष लिया है । वस्तुत राहुल की इतिहास दृष्टि अभिजनवाद विरोधी है । यह अभिजनवाद विरोध रचनात्मक इतिहास-यात्रा, साहित्येतिहास-यात्रा और समाज धम व दशन की इतिहास-यात्रा—इन सभी सन्दर्भों म दृष्टिगत होती है । इतिहास-यात्रा म इन विभिन्न रूपो म अभिजनवाद विरोध विभिन्न रूपा म तथा विभिन्न स्तरा पर व्यक्त हुआ है ।

राहुल की इतिहास दृष्टि के निर्माण म भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन, प्रगतिशील आन्दोलन और विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। व स्वय इन राजनीतिक-सास्कृतिक आन्दालनो से गहरे स्तरो पर जुडे रहे हैं। उन्हाने इन आन्दालना स प्रेरित और प्रभावित होकर इतिहास-यात्रा की दृष्टि निर्धारित की है। राहुल ने विभिन्न रूपा मे इतिहास-यात्रा करत हुए सामन्तवादी साम्राज्यवादी मूल्या का विरोध और मानवतावादी जनवाद मूल्यो का समथन किया है। वस्तुत इस विरोध और समथन की सहधर्मिता उपर्युक्त राजनीतिक-सास्कृतिक आन्दोलना से है।

राहुल की रचनात्मक इतिहास दृष्टि और साहित्येतिहास दृष्टि क विवचन के सन्दभ म साहित्य मूल्याकन की रूपवादी तथा विधेयवादी दृष्टिया से बचने की कोशिश की गयी है और साहित्य की अस्मिता का ख्याल रखा गया है। साथ ही, इसी मानदण्ड से राहुल की इतिहास दृष्टि को परखने की कोशिश की गयी है। राहुल साहित्य का समाज की सापेक्षता मे देखने-परखने की सिफारिश करत हैं, लेकिन साथ ही उसकी सापेक्ष स्वायत्तता या अस्मिता की भी वकालत करत हैं। वे साहित्य को समाज म निःशप नही कर देत।

राहुल एक एस साहित्यकार विचारक हैं, जिनम शब्द और कम की अद्भुत एकता दृष्टिगत होती है। उन्होंने साधारण जनता क लिए लेखन ही नही किया, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक सघष भी किया। उन्होंने सिफ इतिहास-लेखन ही नही किया बल्कि स्वय वस्तुगत रूप स इतिहास का निर्माण भी किया। किसान आन्दालन म राहुल किसान सभा की ओर से कूदत हैं। एक सन्यासी सघष से, इतिहास स रूबरू होता है। जमीदार की लाठी फटाक से सन्यासी के घुटे हुए सिर पर पड़ती है। लाल लहू माटी पर बहने लगता है। बिहार के किसान आन्दोलन म काम करने वाले बहुत सार कायकर्त्ताओ की स्मृति म 'फिरगिया' क रचयिता प्रिंसिपल मनारजन की ये पक्तियाँ अभी भी ताजा हैं—

> "राहुल के सर से खून बहे।
> फिर क्या यह खून उबल न उठे?"

यही शाणित की धारा राहुल के शब्द और कम की घनिष्ठता का प्रमाण है। भारत क जनवादी साहित्यकारो विचारको का राहुल की रचनाएँ अकूत पाथेय प्रदान करती रही हैं। य जनवादी साहित्यकार विचारक आज भी राहुल के लेखकीय और राजनीतिक-सामाजिक सघर्षों स सीखत हुए नय कत्तव्यो का सम्यक निर्धारण और वस्तुगत रूप से इतिहास निर्माण की प्रक्रिया मे सहयोग कर सकते हैं।

यह पुस्तक हिन्दी के प्रख्यात आलोचक विचारक डॉ मैनेजर पाण्डेय के निर्देशन मे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की पी एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। डॉ पाण्डेय ने हमेशा शोध के दरम्यान सत्य क सन्धान क लिए खतरे तक उठाने के लिए प्रोत्साहित किया और उसी का सुफल है कि शोध प्रबन्ध का रोचक और सृजनात्मक होना सम्भव हुआ। शोध-काय के सन्दभ म डॉ पाण्डेय के मूल्यवान सुझाव और सहयाग के लिए आभार व्यक्त कर अपने सम्बन्ध को औपचारिक नही बनाता

चाहता। उनका सान्निध्य मेरी सत्य लालसा के लिए पाथेय ही नही, वरन् एक उकसावा भी है जो कहता है—

"अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोडने होंगे ही मठ और गढ सब।
पहुँचना होगा दुगम पहाडो के उस पार" (मुक्तिबोध)

चन्द्रभानु प्रसाद सिंह

क्रम

1

रचनात्मक साहित्य मे इतिहास-दृष्टि

इतिहास की व्यापक रचनात्मक यात्रा

राहुल साकृत्यायन का इतिहास से बेहद लगाव रहा है। उनके लेखन के केन्द्र म इतिहास है। उन्होने विशुद्ध इतिहासकार की तरह इतिहास-यात्रा करने के अलावा अपने अधिकाश सजनात्मक साहित्य मे भी इतिहास की रचनात्मक यात्रा की है। कहानी हो या उपन्यास, जीवनी हो या यात्रा वत्तान्त—इन तमाम विधाओ के सन्दभ म राहुल कमोबेश इतिहास यात्रा करते हैं। यह रचनात्मक इतिहास-यात्रा विशेषत भारत और स्फुट रूप से कतिपय अन्य एशियाई देशा के सन्दभ मे सम्पन्न की गयी है। राहुल की इस इतिहास-यात्रा का मुख्य उद्देश्य वग सघष के माध्यम स निरन्तर विकासोन्मुख मानव समाज का अध्ययन करना और प्रकारान्तर से भविष्य की दिशा का सकेत करना है। उन्होन अपने एतिहासिक उपन्यासा और कहानियो मे वग-सघष की प्रक्रिया और मानव समाज के ऐतिहासिक विकास के विभिन्न पहलुओ का चित्रण किया है। उनके कथा साहित्य मे एक ओर सामाजिक विपमता और मानव-जीवन की जटिल वास्तविकता पूरी समग्रता मे चित्रित की गयी है तो दूसरी ओर सामाजिक विकास की प्रक्रिया मे अपन जीवन को बेहतर बनाने के लिए सघषशील सामान्य मनुष्य की अदम्य जिजीविषा व्यक्त हुई है। इस सन्दभ म 'वोल्गा से गगा' उल्लेखनीय है। इसमे लगभग 6000 ई० पूव से लेकर 20वी सदी के पूर्वाद्ध तक के मानव समाज (भारतीय समाज और आय जाति का विशिष्ट मॉडल ग्रहण करते हुए) के एतिहासिक विकास की प्रक्रिया को बीस कहानियो के रूप मे चित्रित किया गया है। ये कहानियाँ मानव समाज के विकास को विभिन्न व्यवस्थाओ मे वग-सघष के इतिहास के रूप मे व्यक्त करती हैं। राहुल की दिवोदास', 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' आदि औपन्यासिक कृतियाँ इस विकास के बीच की महत्वपूण कडियो की किंचित विशद् व्याख्या करती हैं।

बहुआयामी इतिहास यात्रा

राहुल की इतिहास-यात्रा बहुआयामी है। यदि एक आर उन्हान सम्पूण भारतीय परिदृश्य को सामने रखकर अतीत का पर्यालाचन किया है, ता दूसरी आर कतिपय जनपदा के इतिहास पर भी दप्टिपात किया है। 'कनैला की कथा' म 1300 ई० पूव स लेकर 1957 ई० तक के कनला के जन जीवन का इतिहास नौ कहानिया के रूप म चित्रित हुआ है। य कहानिया विभिन्न काल खण्डा मे कनला गाव की भिन भिन जीवनस्थितिया का चित्रित करती है। लेखक न एतिहासिक तथ्या की रोशनी म कनैला म 1300 ई० पूव के आस पास रहनवाली किरात, निपाद आर दमिल जातिया की जिन्दगी से लकर स्वाधीनता आदोलन क प्रचार-प्रसार तक का बडी सफलतापूवक चित्रित किया है। 'सतमी के बच्चे' की एकाधिक कहानिया म भी जनपदीय इतिहास दप्टि की छोक मिलती है। राहुल द्वारा स्वतन्त्र रूप स किए गये इतिहास लखन के क्रम म भी जनपदीय दप्टि का आग्रह दिखायी पडता है। इस सदभ म दार्जेलिग परिचय, 'कुमाऊ', गढवाल', 'जौनसार दहरादून' आदि कृतिया उल्लेखनीय हैं। 'दार्जेलिंग परिचय' म विभिन्न काल खण्डा म दोर्जेलिंग नगर की अवस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। कुमाऊ' म पवतीय जीवन की जटिलताआ का वणन करत हुए लेखक न कुमाऊं के प्राचीन इतिहास और आधुनिक परि दश्य का प्रामाणिक चित्रण किया है। 'गढवाल' म वहा की एतिहासिक भौगोलिक परि स्थितियो का चित्रण हुआ है। जौनसार देहरादून' म प्रागतिहासिक काल से लेकर ब्रिटिश शासन और भारत के गणराज्य बनने के बाद के देहरादून के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है।

भारतीय इतिहास की यूरोपीय व्याख्या और राहुल

राहुल साकृत्यायन ने अपनी रचनात्मक इतिहास यात्रा के जरिय भारतीय इतिहास को एक नय तेवर मे प्रस्तुत किया है। इसका अदाजा तब अच्छी तरह लगाया जा सकता है जब राहुल के समसामयिक या पूववर्ती यूरोपीय इतिहासकारो की भारत के सदभ म व्यक्त धारणाआ पर दप्टिपात करें। यूरोप की कल्पना म भारत एक लम्बे अर्से तक बेहिसाब सम्पत्ति और अलौकिक घटनाआ का एक अविश्वसनीय देश रहा, जहा बुद्धिमान व्यक्तियो की सख्या सामान्य से कुछ अधिक थी। जमीन खोदकर साना निकालनवाली चीटियो से लेकर वना म नग्न रहनवाले दाशनिका तक सब उस चित्र के अग थे जो भारतीयो का लेकर प्राचीन यूनानियो के मन म बसा हुआ था और यह चित्र कई शता ब्दियो तक एसा ही बना रहा। उन्नीसवी शताब्दी म जब यूरोप न आधुनिक युग मे प्रवेश किया तो यह रवया बदलना शुरू हो गया और कई क्षेत्रा म भारतीय सस्कृति के प्रति उत्साह प्राय उसी अनुपात म कम हो गया जितना पहल उत्साह का अतिरेक था। अब यह पाया गया कि भारत म कोई एसी विशेषता नही थी जिसकी नवीन यूरोप सरा हना करता। विवेकयुक्त विचार और व्यक्तिवाद के मूल्या पर स्पष्टत यहाँ कोई बल नही

था। भारत की सस्कृति गत्यवरुद्ध सस्कृति थी और इसे अतीव तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाने लगा। यह प्रवृत्ति भारतीय वस्तुओ के प्रति मैकाले के तिरस्कार मे शायद सर्वोत्तम ढग से मूर्तिमान हुई है। भारत की राजनीतिक सस्थाओ का जिनकी कल्पना अधिकाशतया महाराजाओ और सुल्तानो के शासन के रूप मे की गयी थी निरकुश और जनमत के प्रतिनिधित्व से सर्वथा विच्छिन्न कहकर तिरस्कृत किया गया।

यूरोपीय विद्वानो के बीच से एक विरोधी प्रवृत्ति का जन्म हुआ। इन विद्वानो ने भारत की खोज अधिकाशतया उसके प्राचीन दर्शन और सस्कृत भाषा मे सुरक्षित उसके साहित्य के माध्यम से की थी। इस प्रवृत्ति ने जान बूझकर भारतीय सस्कृति के आधुनिक और अनुपयोगितावादी पक्षो पर बल दिया जिनमे तीन हजार से भी अधिक वर्षों से अक्षुण्ण रहनेवाले धर्म के अस्तित्व का जयगान था और यह समझा गया था कि भारतीय जीवन पद्धति आध्यात्मिकता और धार्मिक विश्वास की सूक्ष्मताओ से इतनी अधिक सम्पृक्त है कि जीवन की पार्थिव चीजो के लिए वहाँ कोई अवकाश ही नही है। जर्मन रोमैण्टिकवाद भारत के इस स्वरूप के समर्थन मे अत्यधिक आग्रहशील था और यह आग्रहशीलता भारत के लिए उतनी ही क्षतिकारक थी जितनी मैकाले द्वारा भारतीय सस्कृति की अवहेलना। भारत अब यूरोपवासियो के लिए रहस्यात्मक प्रदेश हो गया, जहाँ अत्यन्त साधारण क्रिया कलापो मे भी प्रतीकात्मकता का समावेश किया जाता था। वह पूर्व की आध्यात्मिकता का जनक था और सयोगवश उन यूरोपीय बुद्धिजीवियो का शरण स्थल भी जो अपनी स्वय की जीवन पद्धति से पलायन करना चाह रहे थे। मूल्यो का एक द्वैत स्थापित किया गया, जिसमे भारतीय मूल्यो को 'आध्यात्मिक' और यूरोपीय मूल्यो को 'भौतिकवादी' कहा गया किन्तु इन कथित आध्यात्मिक मूल्यो को भारतीय समाज के सन्दर्भ मे देखने का प्रयास बहुत कम हुआ। अगर ऐसा होता तो कुछ विक्षुब्ध करनेवाले परिणाम हो सकते थे।

उन्नीसवी शताब्दी मे भारत के साथ सबसे ज्यादा सीधा सम्बन्ध ब्रिटिश प्रशासको का था और शुरू मे भारत के गैर भारतीय इतिहासकार अधिकाशतया इसी वर्ग के लोग थे। फलस्वरूप शुरू के इतिहास प्रशासको के इतिहास थे जिनमे मुख्यतया राजवशो और साम्राज्यो के उत्थान और पतन का विवरण होता था। भारतीय इतिहास के नायक राजा थे और घटनाओ का विवरण उन्ही से जुडा हुआ होता था। अशोक चन्द्रगुप्त द्वितीय या अकबर जैसे अपवादो को छोडकर, भारतीय शासक का आदर्श रूप निरकुश राजा था, जो अत्याचारी था और अपनी प्रजा की भलाई मे जिसकी कोई दिलचस्पी नही थी। जहाँ तक वास्तविक शासन का सवाल है, अन्तर्निहित विचार यह था कि इस उप महाद्वीप के इतिहास मे जितने शासन आज तक हुए हैं ब्रिटिश प्रशासन उन सबकी तुलना मे श्रेष्ठ था।

वस्तुत उपर्युक्त इतिहासकारो की दृष्टि शासकवर्गीय थी। इन शासकवर्गीय इतिहासकारो ने सस्थाओ के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान नही दिया अशत जिसका कारण यह विश्वास था कि उनमे कोई बडा परिवर्तन नही हुआ। यह ऐसा विचार था जिसने इस सिद्धान्त का भी पोषण किया कि भारतीय सस्कृति मुख्य रूप से भारतवासियो के आलस्य और

जीवन के प्रति उनके निराशापूर्ण तथा भाग्यवादी दृष्टिकोण के कारण अनेक शताब्दियों तक अवरुद्ध एवं अपरिवर्तनशील रही है।[1] निस्सन्देह यह अतिशयोक्ति है। शताब्दियों तक वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धों, कृषि व्यवस्थाओं या भारतीयों के उत्साहपूर्ण व्यापारिक कार्य-कलापों का सतही विश्लेषण भी किया जाय तो उससे और चाहे किसी बात का भी संकेत मिलता हो, गत्यवरुद्ध सामाजिक-आर्थिक स्थिति का संकेत कदापि नहीं मिलता। यह सच है कि कुछ स्तरों पर भारत में तीन हजार वर्ष से अबाध सांस्कृतिक परम्परा चली आ रही है, लेकिन इस निरन्तरता को जड़ता समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।

राहुल साङ्कृत्यायन ने इसी जाकड़, अवैज्ञानिक तथा पूर्वाग्रह युक्त इतिहास लेखन की पृष्ठभूमि में इतिहास-यात्रा की। यह यात्रा कितनी चुनौती भरी थी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। राहुल ने इस शासकवर्गीय अवैज्ञानिक इतिहास दृष्टि की टाट उलटकर रख दी। उन्होंने भारतीय इतिहास की प्रवहमानता को रेखांकित किया। इस संदर्भ में काशी प्रसाद जायसवाल जैसे इतिहासकारों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

नदी और यात्रा इतिहास के प्रतीक

'इतिहास' मानवीय विकास-यात्रा की प्रवहमानता को रेखांकित करता है। वह अतीत का इतिवृत्त प्रस्तुत करनेवाला अनुशासन नहीं है। उसकी मूल चिन्ता उस मानवीय प्रयत्न को उजागर करने की रहती है जो नदी की तरह अविरल प्रवहमान है, यायावर की तरह अविश्रान्त अपने पथ पर अग्रसर है। इस ही इतिहास की प्रवहमानता कहते हैं। इतिहास की प्रवहमानता को 'नदी' तथा 'यात्रा' इन दो शब्दों के द्वारा प्रतीकात्मक रूप में स्पष्ट किया जाता रहा है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने वसीयतनामा (विल एण्ड टेस्टामेण्ट) में गंगा की उच्छल धारा की तुलना इतिहास की प्रवहमानता से की है। राहुल ने सबसे व्यापक इतिहास यात्रा 'वोल्गा से गंगा' में की है। यहां फिर इतिहास की प्रवहमानता को प्रतीकित करती दो नदियां हैं। यह और बात है कि आर्य वोल्गा तट से चलकर गंगा की उपत्यका में आये। लेकिन कहीं-न-कहीं इस शीर्षक के चुनाव के पीछे राहुल इतिहास की प्रवहमानता को भी प्रतीकित करना चाहते हैं। यही स्थिति कुर्तुल एन हैदर की कृति 'आग का दरिया' और शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' की कृति 'बहती गंगा' में भी दृष्टिगत होती है। ध्यातव्य है कि ये कृतियां एतिहासिक हैं और यहाँ भी इतिहास की प्रवहमानता को प्रतीकित करती नदी की धाराएँ हैं। 'बहती गंगा' में सत्रह कथा तरंगों के माध्यम से गंगा-तट स्थित काशी के दो सौ वर्षों—सन 1750 से 1950 तक के जीवन प्रवाह की झांकियां देने का नया प्रयोग किया गया है। पूर्वापर के बंधनों से प्रायः मुक्त, अपना अभीष्ट व्यक्त करने में स्वतन्त्र, इन कहानियों को परिच्छेद 'अध्याय आदि न कहकर कथा सरित्सागर के समान 'तरंग' कहा गया है क्योंकि 'बहती गंगा' की तरंगें ही हो सकती हैं। धारा-तरंग न्याय के अनुसार तरंगें अपनी-अपनी स्वतन्त्रता का अस्तित्व रखती हुई भी धारा का निर्माण करती

हुई उसे अमर करती हैं। ये कथा-तरगें काशी नगरी की जीवन धारा का बनाती हैं—काशी नगर स्वय इस उपन्यास का नायक है—और इन कहानियो म आये विभिन्न घटना पात्र उसके जीवन-विकास के क्रमिक अभिव्यक्त स्वरूप हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है कि यात्रा भी इतिहास की प्रवहमानता को प्रतीकित करती है और राहुल के ऐतिहासिक उपन्यास यात्रात्मक हैं। 'सिह सेनापति' 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' के सभी प्रधान पात्र—सिह कपिल जय, शाहकवात (तथा उसके मजदयी साथी)—यात्रा प्रेमी हैं और यात्राएँ करते हैं। 'विस्मृत-यात्री' का नामकरण स्वय इस बात का सूचक है कि इसका नायक यात्री है। ये सभी पात्र एक यात्री की साहसी प्रवृत्ति से सम्पन्न हैं। और, अपनी साहसिक यात्रा के क्रम मे इतिहास की भी यात्रा करते हैं। स्वय राहुल भी आजीवन घुमक्कड रहे। घुमक्कडी उनके लिए जीवन का धर्म बन गया था और 'जयतु जयतु घुमक्कड पन्था' उनका उद्घोष था। राहुल ने घुमक्कडी को विश्व की सब श्रेष्ठ वस्तु स्वीकार किया है। यह उनके किसी बड़े योग से कम सिद्धिदायिनी नही थी। उनकी मान्यता थी, "मेरी समझ म दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कडी। घुमक्कड से बढकर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नही हो सकता।"[2] यायावर लेखक राहुल ने "निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधि निषेधः" शकराचार्य के इस वाक्य को मूल मन्त्र मानकर आजीवन घुमक्कडी धर्म को निभाया। यह घुमक्कडी उनके लिए काव्यरस अथवा ब्रह्मानन्द से किसी भी प्रकार कम नही थी। इस रस के लिए वे आजीवन पिपासु रहे। इसी यायावरी ने उन्हें देश और विदेश की यात्राओ के लिए प्रेरित किया। और, इस क्रम मे उन्होने इतिहास लेखन के निमित्त समिधा एकत्रित की। इस प्रकार 'यात्रा' सिर्फ प्रतीकात्मक स्तर पर ही इतिहास की प्रवहमानता का सूचित नही करती बल्कि इतिहास लेखन का आधार भी प्रदान करती है।

रागेय राघव की औपन्यासिक कृति 'महायात्रा गाथा' म भी 'महायात्रा' इतिहास की प्रवहमानता को प्रतीकित करती है। इस बहद्काय कृति म भारतीय इतिहास और सस्कृति की आदिकाल से लेकर पृथ्वीराज तक की व्याख्या की गयी है। इसमे सभ्यता-सस्कृति के विकास के प्रमुख प्रकाशन ध्येय के अनुकूल राजनीतिक परिस्थितियो की अपेक्षा अन्य सास्कृतिक परिस्थितियो का अकन अधिक हुआ है। इसके विपरीत राहुल की इतिहास-यात्रा मे राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियाँ प्रमुख स्थान रखती हैं।

राहुल की इतिहास-दृष्टि ऐतिहासिक भौतिकवादी

राहुल ने ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि से इतिहास की रचनात्मक यात्रा की है। लेकिन उन्होंने अपने लेखकीय जीवन के प्रारम्भ से ही ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि के तहत लेखन नही किया। 1924 में राहुल को मार्क्सवाद और रूसी क्रान्ति से किस तरह और कितना परिचय था यह उन्ही की जुबानी सुनिए, " 1918 और 1919 ई० मे रूसी क्रान्ति की जो थोडी-बहुत खबरें गलत या सही हिन्दी-पत्रो मे निकलती उनमें कल्पना की चमक-मिर्च लगाकर मैंने अपने मन म एक साम्यवादी दुनिया की सृष्टि कर ली थी। उसी

दुनिया को मैं कागज पर उतारना चाहता था। साम्यवाद का सैद्धान्तिक ज्ञान उस समय मेरे पास कुछ नही था, मैंने तो मार्क्स का नाम भी नही सुना था, इसलिए मेरा साम्यवाद उटोपियन साम्यवाद था मुझे व्यावहारिक कठिनाइयो का कोई पता नही था। अभी मैं नही समझ पाया था कि साम्यवाद के वाहक साधारण मजदूर और किसान हैं, जिन्हें अक्षर से भी सरोकार नही है। किस तरह साम्यवाद भारत म स्थापित हो, इसे संस्कृत श्लोको मे लिखना शुरू किया। बक्सर की पहली जेल-यात्रा म जिस कथा को मैंने संस्कृत काव्य के पाच सर्गों तक पहुँचाया था, अब उसे बेकार समझ उसकी जगह मैंने हजारीबाग म 'बाईसवी सदी' लिखी। बाईसवी सदी को उपन्यास कह लीजिए या बडी कहानी या समाजवादी उटोपिया, वही मेरा पहला कथात्मक ग्रन्थ है।"[3] राहुल के इस वक्तव्य से मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति एक अकह जिज्ञासा और लगाव प्रकट होता है। साथ ही इस विचारधारा के ज्ञान का कच्चापन भी प्रकट है। वस्तुत राहुल एक ऐसे साहित्यकार विचारक हैं जो एक सही विश्व दृष्टि के लिए सम्पूर्ण जीवन सतत सघर्ष करते रहत हैं विचार मन्थन का एक अनवरत सिलसिला कायम रखते हैं। इसीलिए तो अपना सामाजिक जीवन एक सन्यासी के रूप मे शुरू कर ही चुक नही जाते। वे आर्य समाज तथा बौद्ध दर्शन की ओर भी उन्मुख होते हैं, पर एक वैज्ञानिक चेतना और समग्र विश्वदृष्टि के लिए अनवरत आत्म सघर्ष करनेवाले राहुल को अन्तत मार्क्सवादी दर्शन ही एक सही वैचारिक फलक प्रदान करता है।

राहुल ने 1937 ई० मे सोवियत रूस की दूसरी यात्रा के दौरान मार्क्सवाद और भौतिकवादी दर्शनो का गहरा अध्ययन किया और उससे गहरे स्तरो पर प्रभावित हुए। इसके बाद ही वे भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन से सक्रिय रूप स जुडे और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की बिहार राज्य कमेटी के गठन में महत्वपूर्ण पहलकदमी की। राहुल के इस वैचारिक विकास का गहरा असर उनकी इतिहास यात्रा पर पडा है। उन्होने ऐतिहासिक भौतिकवादी नजरिये से इतिहास का पर्यालोचन शुरू किया। और इसका सम्यक प्रतिफलन 'वोल्गा से गगा' और उसके बाद लिखी जानेवाली रचनाओ के रूप मे हुआ।

ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज के विकास और परिवतन के नियमो को बताता है। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज के भीतर उत्पादन की भौतिक शक्तियो का उत्पादन के तत्कालीन सम्बन्ध सम्पत्ति के सम्बन्ध जिनके भीतर कि अभी तक काम होता चला आया था—के साथ टक्कर होती है। अब तक जो बातें उत्पादन शक्तियो मे विकास का रूप या सहायक थी वही अब उसकी बेडी बन जाती हैं। तब सामाजिक क्रान्ति का समय आता है। आर्थिक नीव (आधार) बदल जाती है जिसके साथ समाज का ऊपरी विशाल ढाँचा (अधिरचना) परिवर्तित हो जाता है।[4] आर्थिक नीव (आधार) के परिवतन से समाज के ऊपरी विशाल ढांचे (अधिरचना) म इसलिए परिवतन होता है, क्योकि समाज का ऊपरी विशाल ढाँचा आर्थिक नीव के अनुरूप होता है। राज्यीय सस्थाएँ, कानूनी धारणाएँ कला और धर्म सम्बन्धी विचार समाज का ऊपरी विशाल ढाँचा या अधिरचना है। ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि इतिहास-लेखन के क्रम म इसी उत्पादन की भौतिक शक्तियो व उत्पादन सम्बन्ध म बीच के टक्कर स आर्थिक नीव म परिवतन और इसके

फलस्वरूप समाज के ऊपरी विशाल ढाँचे मे परिवतन के अध्ययन का आग्रह करती है। वस्तुत विकास का मूल इन्ही उत्पादन शक्तियो और उत्पादन सम्बन्धो के सघष मे निहित है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद के नियम उसी तरह वस्तुगत अर्थात मानव चेतना से स्वतन्त्र हैं जिस तरह प्रकृति के नियम हैं। व भी प्रकृति के नियमा की भाँति ज्ञेय हैं और मनुष्य द्वारा अपने व्यावहारिक काय-कलाप मे प्रयुक्त होत है। पर सामाजिक जीवन के नियमो और प्रकृति के नियमो म सारभूत अन्तर हैं। प्रकृति के नियम अन्धी स्वत स्फूत शक्तियो की क्रिया का प्रतिबिम्बित करते हैं। पर सामाजिक जीवन के नियम सदा ऐस बुद्धियुक्त व्यक्तियो की क्रियाशीलता के माध्यम से अभिव्यजित होते हैं जो अपने सामने निश्चित लक्ष्य रखते हैं और इनकी सिद्धि के लिए कायरत होते हैं।

राहुल साकृत्यायन ने 'वोल्गा से गगा', 'जय यौधेय', 'सिह सेनापति', 'दिवोदास' आदि कृतियो मे इसी ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि से भारतीय इतिहास की रचनात्मक यात्रा की है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि राहुल ने इन रचनाओ मे वग सघष की प्रक्रिया और मानव समाज के ऐतिहासिक विकास के विभिन्न पहलुओ का चित्रण किया है। उन्होंने आदिम समाज से लेकर आधुनिक पूजीवादी युग तक की विकास-यात्रा का विराट आयाजन किया है।

विकास का वैभिन्य

ध्यातव्य है कि भारत म और भारत के बाहर भी सभी जातियो का विकास समान गति से और समान समय मे नही हुआ है। जिस समय आय जाति भारतीय उपमहाद्वीप के सीमान्त पर पहुँची तब तक वह पितृसत्तात्मक समाज की स्थिति मे ही पहुँच पायी थी, जबकि यहा की पूववर्ती आर्येत्तर जातियाँ सामन्तवाद की स्थिति मे पहुँच चुकी थी, जिसका प्रमाण सिन्धु घाटी की सभ्यता है। उनमे नागर सभ्यता, शासन-तन्त्र आदि का पूण विकास हो चुका था। दूसरी ओर नाग, कोल, किरात आदि जातिया विकास की दृष्टि से आर्यों से भी पीछे थी। स्वय आय जाति के विभिन्न कबीला मे विकास गति भिन्न भिन्न रही हैं। इन विभिन्न जातिया के आपस मे सम्पर्कित होने पर इनकी अपनी-अपनी विकास की पूववर्ती *गति मे परिवतन भी हुआ है। पर विकास के नियम मे कोई परिवतन नही होता।* हरेक जाति को विकास के एक निश्चित क्रम या विकास की एक अवस्था विशेष से गुजरना ही पडा है। दूसरे शब्दो मे, प्रत्येक जाति को मातृसत्ता पितसत्ता, सामन्तवाद, पूजीवाद —इन अवस्थाओ से गुजरना ही पडा है और भविष्य मे साम्यवाद की अवस्था मे जाना ही पडेगा। एकाधिक देश तो इस अवस्था मे चले जाने का दावा भी करने लगे हैं। दूसरी ओर अभी भी बहुत सी जातियाँ कबीले के रूप म या सामन्ती युग मे निवास कर रही हैं। उन्हें विकास की उपर्युक्त शेष मजिलें तय करनी हैं।

बहरहाल विकास के इस वभिन्य को राहुल न 'वोल्गा से गगा' तथा अन्य कृतियो म यत्र-तत्र दिखाया भी है। पर विकास की प्रक्रिया और स्वरूप क स्पष्टीकरण की मूल

चिन्ता के कारण राहुल ने केवल भारतीय सन्दर्भ में आर्य जाति के विकास को ही क्रमिक रूप से प्रस्तुत किया है। यह स्थिति आदिम समाज से लेकर सामंती युग तक की विकास यात्रा को दर्शाने के क्रम में विशेष रूप से दृष्टिगत होती है। भगवतशरण उपाध्याय और रांगेय राघव ने भी भारतीय इतिहास की रचनात्मक यात्रा की है। लेकिन उनके विवेचन की शैली में राहुल की-सी स्पष्टता नहीं है क्योंकि उन्होंने आर्य, अनार्य गणों पर स्फुट रूप से दृष्टिपात किया है। फलतः विकास प्रक्रिया का वैसा सूक्ष्म और स्पष्ट ज्ञान इन दोनों की कृतियों से नहीं होता जैसा कि राहुल की कृतियों से होता है।

मानव समाज का आदिम रूप : साम्यवाद

मानव समाज का सबसे सरल रूप उसकी आदिम अवस्था यानी जांगल मानव में मिलता है। जांगल मानव के पास साधन कम थे इसलिए उसे अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज पर भरोसा करना पड़ता था और इसीलिए जो कुछ भी थोड़ी-बहुत सम्पत्ति थी वह सामूहिक थी। यह 'करतलभिक्षा तरुतलवास'-जैसा जमाना था इसलिए संग्रह कम था सम्पत्ति कम थी। जो भी सम्पत्ति थी, वह सम्मिलित थी क्योंकि वह सम्मिलित श्रम से प्राप्त होती थी। इस अवस्था को आदिम साम्यवाद कहते हैं। इस आदिम साम्यवादी काल में उच्च नीच वर्ग नहीं थे, धर्म नहीं, यहाँ तक कि यूथ से व्यक्ति के अलग अस्तित्व का ख्याल भी नहीं था। वहाँ कमकर और कामचोर श्रेणियाँ न थीं। इसलिए न शोषण था और न उसे कायम रखने के लिए किसी एक वर्ग—शासक वर्ग—का शासन था। वि० अफनास्येव ने इस आदिम साम्यवाद के सैद्धान्तिक आधार की ओर इशारा करते हुए ठीक ही लिखा है कि आदिम साम्यवाद में उत्पादक शक्तियों का स्तर अत्यन्त नीचा था अतः उत्पादन सम्बन्ध भी तदनुरूप ही थे। वे उत्पादन के साधनों के समान स्वामित्व पर आधारित थे और इसलिए लोगों में सहयोग एवं पारस्परिक सहायता के सम्बन्ध थे। इन सम्बन्धों के पीछे यह तथ्य था कि आदिम औजारों से युक्त मानव प्रकृति की प्रबल शक्तियों के आगे एक साथ रहकर ही, सामूहिक रूप में ही टिक सकता था।[5] आदिम समाज में लोग समूहों में रहते थे। ये समूह थे—रक्त सम्बन्ध पर आधारित कबीले। सामूहिक भूमि पर वे सम्मिलित औजारों से साथ साथ काम करते थे उनके आवास सम्मिलित थे जिससे आंधी-तूफान और जंगली जानवरों से उनकी रक्षा होती थी। मेहनत का फल वे बराबर बराबर बाँट लेते थे।

आदिम मानव समाज मुख्यतः शिकार पर निर्भर था। पर इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी जीविका का यही एकमात्र साधन था, यद्यपि कुछ विचारक ऐसा मानते हैं। एंगेल्स ने भी लिखा है : 'पूर्णतः शिकारी लोग' जिनका वर्णन प्राय पुस्तकों में मिलता है —यानि वे लोग जो केवल शिकार के सहारे जीते थे वास्तव में कभी थे ही नहीं। यह सम्भव भी नहीं था क्योंकि शिकार से भोजन पाना बहुत ही अनिश्चित साधन होता है।[6]

यौन-सम्बन्धों की सामूहिकता

आदिम साम्यवादी समाज में स्त्री-पुरुष के बीच के यौन-सम्बन्ध में सामूहिकता थी। [illegible]
तरह का प्रतिबन्ध नहीं था। भाई-बहन, पिता पुत्री, माँ पुत्र—सभी [illegible]
सम्भोग का आनन्द ले सकते थे। इस एक तरह की यौन उच्छृंखलता ही [illegible]
यौन सम्बन्ध की इस सामूहिकता का कारण उत्पादन पद्धति [illegible]
जिसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है। कुछ विचारक इस यौन-[illegible]
पर नाक भौंह सिकोड़ते हैं और अविश्वास प्रकट करते हैं। [illegible]
आज विकास की आरम्भिक अवस्था में हैं, उनके यौन-[illegible]
साम्यवादी समाज में यौन-सम्बन्धों की सामूहिकता का [illegible]
भी अनेक आदिवासी कबीलों में माता पिता और उनकी [illegible]
इजाजत है। बैंक्रोफ्ट ने अपनी पुस्तक 'उत्तरी अमेरिका [illegible]
आदिवासी नस्लें,' 1975, खण्ड 1, में बताया है [illegible]
जलडमरूमध्य के कावियट लोगों में, अलास्का [illegible]
और ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका के अन्दरूनी [illegible]
जाता है। लेतूर्नो ने ऐसे तथ्यों से सम्बन्धित [illegible]
यनो, चिली के रहनेवाले कूकू लोगों, [illegible]
बारे में जमा की है। वस्तुतः अगम्यागमन [illegible]
उनकी सन्तान के बीच यौन-सम्बन्धों [illegible]
है कि परिवार के उन सबसे आदिम [illegible]
गमन की धारणाओं का—जो हमारी [illegible]
उल्टी हैं—अलग कर दें तो यौन-[illegible]
अनियन्त्रित ही कहा जा सकता है—[illegible]
नहीं लगे थे जो बाद में रीति [illegible]
होता कि यौन सम्बन्धों के मामले में [illegible]
पृथक युग्मों का अस्तित्व [illegible]

मातसत्ता का प्रयाग रूढ हो चुका है।

राहुल न मनुष्य की इस आदिम सामाजिक सरचना का चित्रण 'निशा' (वोल्गा से गगा) शीर्षक कहानी मे किया है। इस कहानी मे आय जाति से सम्बन्धित 361 पीढी पहले की कथा कही गयी है। उस वक्त हिन्द, ईरान और यूरोप की सारी जातिया एक कबीले के रूप म थी। मानवता का आरम्भिक काल था। यहाँ 'निशा' (कहानी की नायिका) के परिवार मे उत्पादन और उपभाग की सहभागिता दष्टिगत होती है। निशा (मा) अपने परिवार या वशज के केन्द्र मे है। पर यह केन्द्रीयता शोपणमूलक नही है। निशा के पति पुत्र व पुत्रियाँ (यौन सम्बन्ध की दष्टि से परस्पर पति-पत्नी) तमाम तरह के कार्यों मे समान भूमिका निभाते हैं। इन लोगा मे यौन सम्बन्ध बिलकुल ही निबन्ध है। वे लोग शिकार के क्रम मे ऐच्छिक सम्भोग का आनन्द उठाते हैं। पर परिवार म निशा (माँ) की केन्द्रीय अवस्थिति (मा पर आधारित वश परम्परा) के कारण यौन प्रसग म उसकी इच्छा सर्वोपरि है। इस सन्दभ मे एक विवरण पेश है—"माँ का सभी पुरुषो पर समान और प्रथम अधिकार था। अपने चौबीसे पुत्र और पति के चले जाने से उसे अफसोस न हुआ हो यह बात नही, किन्तु उस समय का जीवन अतीत से अधिक वतमान विद्यमान की फिक्र करता था। माँ के दो पति मौजूद थे, तीसरा चौदह साला तयार हो रहा था। उसके राज्य के रहते रहते बच्चो म से भी न जाने कितने पति की अवस्था तक पहुच सकते थे। माँ छब्बीस का पसन्द करती थी इसलिए बाकी तीन तरुणियां के लिए एक वह पचासा पुरुष ही बचा था।"[9] मा की छब्बीसे की पसन्दगी और इसके विपरीत तरुणियो के भाग मे पचासा पुरुष—ये दोना स्थितियाँ निशा (मा) की इच्छा के सर्वोपरि होने के प्रमाण हैं। इसी कारण मा और पुत्रिया म टकराव होना शुरू होता है। इस सघष को राहुल ने निशा और लेखा के जानलेवा सघष के माध्यम से स्पष्ट किया है। दोना एक-दूसरे का वाल्गा की धारा म डुबा देती हैं।[10] भगवतशरण उपाध्याय ने भी अपनी कहानी 'सवेरा' (सबेरा सघष गजन) म आदिम साम्यवादी समाज का एक चित्र पेश करते हुए इस सघष को चित्रित किया है। एक वरीय नारी का यह बात नागवार गुजरती है कि कोई कनीय नारी उसके मनोवाछित युवक से रास करे। वह कनीय नारी का भयानक खड्ड म ढकेलकर जान ल लेती है।[11]

मर्यादित यौन सम्बन्ध और मातृसत्ता का क्रमिक विकास

आदिम समाज की यह यौन अराजकता रक्त सम्बद्ध परिवार की अवधारणा आन पर मर्यादित होती है। यह परिवार की पहली अवस्था है। एगेल्स के अनुसार इस अवस्था म विवाह पीढियो के अनुसार यूथा म होता है। परिवार की सीमा के अन्दर सभी दादा दादियाँ एक-दूसरे के पति-पत्नी होते हैं। उनके बच्चा की यानि माताओ और पिताओ की यही स्थिति होती है। और उनके बच्चा से फिर समान पति-पत्नियो का एक तीसरा दायरा तैयार हो जाता है। इनके बच्चे—पहली पीढी के परपोते और परपोतियाँ—चौथे दायरे के पति-पत्नी होते हैं। इस प्रकार परिवार के इस रूप मे (हमारी आजकल की भाषा म)

केवल पूर्वज और वंशज, यानि माता पिता और उनके बच्चे एक-दूसरे के साथ विवाह के अधिकार तथा जिम्मेदारियाँ ग्रहण नहीं कर सकते। सगे भाई-बहन, पास के और दूर के चचेरे, फुफेरे, ममेरे भाई-बहन, सब एक-दूसरे के भाई-बहन होते हैं और ठीक इसीलिए वे एक-दूसरे के पति-पत्नी होते हैं। इस अवस्था में भाई-बहन के सम्बन्ध में यह बात शामिल है कि वे एक-दूसरे के साथ हस्ब मामूल सम्भोग करते हैं। ऐसे एक ठेठ परिवार में एक माता पिता के वंशज होंगे और फिर उनमें प्रत्येक पीढ़ी के ये वंशज सब के सब एक-दूसरे के भाई-बहन होंगे और ठीक इसी कारण वे सब एक दूसरे के पति पत्नी भी होंगे।[12]

वस्तुतः यह यूथ विवाह का परिवर्तित और मर्यादित रूप है। राहुल ने अपनी कहानी 'दिथा' और 'अमृताश्व' (वोल्गा से गंगा) में इस यूथ विवाह का चित्रण किया है। यौन-सम्बन्ध की स्वतंत्रता हमें उनमें ही दष्टिगत होती है। हाँ, कभी कभी पूर्ववर्ती अनमेल यौन-सम्बन्ध भी दृष्टिगत हो जाता है। एक दृश्य पेश है, "दिवा अपने तरुण पुत्र वसु के साथ आज नाच रही थी। दोनों नग्न मूर्तियाँ नृत्य के ताल में ही कभी एक दूसरे को चूमती, कभी आलिंगन करती कभी चक्कर काटकर भिन्न भिन्न नाट्य मुद्राएँ दिखातीं। सब जन जानता था कि आज उनको जन-नायिका का प्रेम-पात्र वसु बना है, वसु विजयी मद मत्त माता के प्रेम को ठुकराना नहीं चाहता था।"[13] यह दृश्य माँ की प्रमुखता (जननायिका के रूप में) को जतलाता है।

वस्तुतः यौन-सम्बन्धों का यह परिवर्तन व्यवस्था परिवर्तन का लक्षण है। मानव आदिम कम्यून के आगे की सीढ़ी तय करता है। वह उसकी बर्बर अवस्था है। परिवार और उससे बने परिमित कम्यून से समाज आगे बढ़ता है, इसे ही जनसत्ता (कबीलाशाही) कहते हैं। जनसत्ता या जनयुग के शुरू के अधिकांश भाग में माँ का ही राज्य था। अधिकतर सम्पत्ति सामयिक होती थी, किन्तु जो थोड़ी बहुत परिवार की सम्पत्ति थी उसका उत्तराधिकारी पुत्र नहीं पुत्रियाँ होती थीं। जन, कबीला और उससे सम्बन्धित संस्थाएँ हर एक व्यक्ति के लिए पवित्र और अनुल्लंघनीय चीजें थीं। यह (जन) प्रकृति की तरफ से बनी लोकोत्तर संस्था भी समझी जाती थी। मानव का चिन्तन, वेदन, क्रिया सभी बिना किसी शर्त के उसके मातहत थी।

राहुल ने 'दिवा' (वोल्गा से गंगा) शीर्षक कहानी में इस समाज व्यवस्था को प्रतिबिम्बित किया है। यह आज से सवा-दो सौ पीढ़ी पहले के एक आर्य-जन की कहानी है। उस वक्त भारत, ईरान और रूस की श्वेत जातियों की एक जाति थी, जिसे हिन्दी स्लाव या शत वंश कहते हैं। बहरहाल 'दिवा' (कहानी की नायिका) जन-नायिका है। "जन एक जीवित माता का राज्य नहीं, बल्कि अनेक जीवित माताओं के परिवारों का एक परिवार एक जन है, यहाँ एक माता का अकंटक राज्य नहीं, जन समिति का शासन है, इसलिए यहाँ किसी निशा' को अपनी 'लेखा' को वोल्गा में डुबाने की जरूरत नहीं"।[14] दिवा तमाम तरह के कार्य व्यापारों में अग्रणी भूमिका निभाती है।

आर्थिक संरचना में परिवर्तन और मातृसत्ता का ह्रास

कालान्तर में नारी की यह भूमिका सीमित होती है। इसका कारण आर्थिक संरचना में बुनियादी परिवर्तन है। उत्पादक शक्तियाँ निरन्तर विकसित हो रही थी, यद्यपि विकास की गति बहुत ही मन्द थी। श्रम के औजार सुधारे सँवारे जाते रहे और दक्षता धीरे धीरे संचित होती गयी। पत्थर के औजारों से धातु के औजारों में संक्रमण उत्पादन क्षेत्र में बहुत बड़ी छलांग थी। नये औजारों अर्थात् लकड़ी के हल और धातु के फाल, कांसे या लोहे की कुल्हाड़ी आदि ने श्रम को अधिक उत्पादक बना दिया। अधिक बड़े पैमाने पर फसलें उगाना और पशुधन पैदा करना सम्भव हो गया। श्रम विभाजन की स्थिति आयी, पहला बड़ा सामाजिक श्रम विभाजन उस समय हुआ जब पशुपालन का धन्धा खेती-बारी से पृथक हो गया। श्रम विभाजन नारी पुरुष के सन्दर्भ में भी हुआ। पुरुष के जिम्मे खेती बारी व पशुपालन आया और नारी के जिम्मे घर का काम, क्योंकि वह पहले से ही वहाँ केन्द्रीय भूमिका निभाती थी। और यही सम्पूर्ण मानवीय क्रिया व्यापार का प्रस्थान बिन्दु था। इसलिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण भी था। किन्तु यही नारी का अपनी प्रधानता से च्युत करने का कारण बनी, क्योंकि स्त्री का काम पुरुष के जीविकार्जन के नये काम—पशु पालन और उसके उपयोग के सामने नगण्य सा था। पशुपालन मुख्यतः रखता था, अपने परिमाण और उपयोगिता के अधिक होने से, जबकि घर के भीतर का काम उसका परिशिष्ट मात्र था।[15] पुरुष ने उत्पादन में प्रधान स्थान ग्रहण किया, उसके साथ परिवार में पुरुष के एकाधिपत्य होने की सारी रुकावट दूर हो गयी। स्त्री की प्रधानता—मातृसत्ता समाप्त हुई, और पुरुष की प्रधानता—पितृसत्ता का निष्कण्टक राज्य कायम हुआ। जन नायिका की जगह जन नायक आये जिसे महापितर कहा गया।

पितृसत्ता की स्थापना और वर्ग भेद

सारतः नारी-पुरुष के उत्पादन सम्बन्धों के परिवर्तन के फलस्वरूप मातृसत्ता खत्म हो पितृसत्ता स्थापित होती है, जिसके साथ यही नहीं कि स्त्री का स्थान समाज में हीन हो जाता है बल्कि वर्गहीन मानव समाज में वर्ग भेद और शोषण आरम्भ हो जाता है। साथ ही इसे बरकरार रखने के लिए राज्य की अवधारणा भी सामने आती है। 'भागो नहीं (दुनिया को) बदलो' का कथावाचक भैया बड़ी सरलता से इस परिवर्तन को बतलाता है 'जोंकें तब पैदा हुई जब पशुओं को पालके मरद धन वाला बन गया वह महापितर बन गया और दूसरों की कमाई उसे मुफ्त में मिलने लगी।'[16] जोंक का अर्थ शोषक वर्ग से है।

राहुल ने अपने एक पात्र अमृताश्व (अमृताश्व कहानी का एक प्रमुख पात्र) के द्वारा महापितर के चरित्र को उद्घाटित करते हुए लिखा है, 'अब अमृताश्व अपने कुरु ग्राम का महापितर था। उसके पास पचासों घोड़े, गायें तथा बहुत सी भेड़-बकरियाँ थीं। उसके घोड़े और मधुरा रेवड़ और घर का काम देखते थे। ग्राम के दरिद्र-कुलों के कुछ आदमी भी उसके यहाँ काम करते थे—नौकर के तौर पर नहीं, घर के एक व्यक्ति के

तौर पर। एक कुरु को दूसरे कुरु से समानता का बर्ताव करना पड़ता। अमृताश्व के चलते फिरते ग्राम में पचास से ऊपर परिवार थे। आपसी झगड़ो, मामला मुकदमा का फैसला महापितर को ही देखना पड़ता। फिर पानी रास्त और दूसरे सार्वजनिक कामों का सचालन भी महापितर करता और युद्ध म—जो सदा सिर पर बैठा ही रहता—सेना का मुखिया बनना तो महापितर का सबसे बड़ा कर्तव्य था। वस्तुत युद्धों म सफलता ही आदमी को महापितर के पद पर पहुँचाती है।[17] वस्तुत अमृताश्व राजा का आदिम रूप है।

ध्यातव्य है कि वैयक्तिक सम्पत्ति के बढ़ाने की घुड़दौड़ में महापितरों का सबसे ज्यादा सुभीता थी। वह पशु, खेती सम्पत्ति अर्जन के सभी साधनों का अधिक रखते थे। जिनके पास पशु न थे, जिनके पास खेत न थे उन्हें खाना-कपड़ा दे अपने काम म लगा सकते थे और उनके श्रम का फल भी अपने लिए उपयुक्त कर सकते थे।

इस तरह उपज को बढ़ा, नयी सम्पत्ति जमा कर अमीरों का एक वर्ग कायम हो गया, जो अपने आर्थिक प्रभाव के बल पर राजनीतिक शक्ति को खानदानी रूप देन के लिए प्रयत्नशील होन लगा। अब एक जन म एक गोत्र के होने से वह पुरानी समानता, वह पुराना बन्धुत्व नहीं रह सकता था, अब साफ एक ओर अमीर शासक वर्ग और निर्धन शासित वर्ग बनता जा रहा था। पहले शासन यन्त्र जनता के जीवन के हर एक क्षेत्र का ऐसा अभिन्न अंग था कि वह उससे अलग नहीं किया जा सकता था लेकिन अब वह अलग हो महापितर में केन्द्रित हो गया। राज्य के विकास का कारण महापितर की इसी अवस्थिति म निहित है क्योंकि राज्य की अवधारणा जिन परिस्थितियों के शमनार्थ प्रकट हुई वे तैयार हो रही हैं। एंगेल्स न इस अवस्था को सैनिक लोकतन्त्र कहा है। "सैनिक लोकतन्त्र इसलिए कि युद्ध करना और युद्ध के लिए संगठन करना जन जीवन का एक नियमित अंग बन गया था। अपनी पड़ोसी जाति की दौलत देखकर जनता लालच करने लगती थी और दौलत हासिल करना इसके लिए जीवन का एक मुख्य उद्देश्य बन गया था।" युद्धोपरान्त लूट के माल में सेनानायक (महापितर) का विशेष हिस्सा हुआ करता था।

राहुल ने 'दिवोदास' म इस अवस्था का चित्रण किया है। इस उपन्यास का सम्बन्ध 12वीं 13वीं शताब्दी ईसा पूर्व म सप्तसिन्धु म आर्यों तथा अनार्यों के मध्य हुए क्षेत्र विस्तार सम्बन्धी संघर्ष से है। इस संघर्ष में पुरुराज पुरुकुत्स किरातों की सात पुरियों का ध्वंस करता है और तृत्सु दिवोदास पणियों को परास्त करने के पश्चात किरातों की एक सौ पुरियों का ध्वंस करता है।

महापितर और राज्य की उत्पत्ति

बहरहाल, लूट मार के युद्धों ने महापितर की शक्ति बढ़ा दी। पहले आमतौर पर एक ही परिवार से उत्तराधिकारी चुने जाने की प्रथा थी, अब विशेषकर पितृसत्ता कायम हो जाने के बाद, वह धीरे धीरे वंशागत उत्तराधिकार के नियम म बदल गयी। शुरू में इस लोग

छूआछूत के बाद में ज्यादा ढाँचा खड़ा किया जाता गया और अन्त में यह अवधारणा कायम कर लिया गया। इस प्रकार ब्राह्मण बादशाहों और ब्राह्मण अभिजात वर्ग का गठजोड़ हो गया। इस तरह धीरे धीरे गोत्र व्यवस्था की मर्यादाएँ भी जड़ें जमाती गयीं, गोत्र बिरादरियाँ और कबीलों में ही उभार दी गयी और पूरी गोत्र व्यवस्था अन्त में एक विस्तृत ढाँचा बनकर बदल गया। अब मानवों का स्थान-स्थान पर युद्ध व्यवस्था बनाने वाले कबीलों के संगठन में अब यह तय हुआ संगठन का गया जो बहादुरों का गुट। और ... के लिए था। और नेतृत्व ही उनके निवास आदि का इन्तजाम था। कार्यों का बलन का साधन नहीं रह गये बल्कि खुद अपनी जनता पर शासन करने और अत्याचार करने वाले स्वतन्त्र निकाय बन गये। गोत्र-व्यवस्था एक ऐसे समाज के गर्भ में पैदा हुई थी जिसमें किसी तरह के अन्दरूनी विरोध नहीं थे और यह केवल ऐसे ही समाज के योग्य थी। जनमत के सिवा उसके पास दबाव डालने का कोई और साधन न था। परन्तु अब एक नया समाज पैदा हो गया था जिसे स्वयं उसके अपने अस्तित्व की तमाम आर्थिक परिस्थितियों ने अनिवार्यतः स्वतन्त्र नागरिकों और दासों में, शोषक धनियों और शोषित गरीबों में बाँट दिया था और जो न केवल इन विरोधों में सामंजस्य लाने में असमर्थ था, बल्कि जो अनिवार्यतः उन्हें अधिकाधिक पराकाष्ठा पर पहुँचा रहा था। ऐसा समाज या तो इस हालत में जीवित रह सकता था कि ये वर्ग बराबर एक-दूसरे के खिलाफ खुला संघर्ष चलाते रहें या फिर इस हालत में कि एक तीसरी शक्ति का शासन हो जो देखने में, आपस में लड़नेवाले वर्गों के ऊपर मालूम पड़े, उनके खुले संघर्ष को न चलने दे और ज्यादा-से-ज्यादा उन्हें केवल आर्थिक क्षेत्र में और वह भी तथाकथित कानूनी ढंग से वर्ग संघर्ष चलाने की छूट दे। गोत्र व्यवस्था की उपयोगिता समाप्त हो चुकी थी। श्रम विभाजन तथा उसके परिणामस्वरूप समाज के वर्गों में बँट जाने से वह ध्वस्त हो गयी। उसका स्थान राज्य ने ले लिया।

पितृसत्ता या जन-युग में अतिरिक्त तथा उपयोगी वस्तुओं का विनिमय होने लगा था, किन्तु अब सामूहिक स्वार्थ की जगह वैयक्तिक स्वार्थ स्थापित हो गया था, इसलिए हर एक की इच्छा होती थी कि जल्द नष्ट होनेवाली चीजों को देकर चिर स्थायी चीजें तथा थोड़ी दाम की चीजों को देकर ज्यादा अच्छी चीजें खरीदी जायें, ऐसी चीजें ली जायें, जो देर तक सुरक्षित रखी जा सकें तथा आवश्यकता पड़ने पर जिन्हें भोग सामग्री से बदला जा सके। लेकिन विनिमय का काफी प्रचार हो जाने पर भी एक उत्पादक अपनी चीज को सीधे दूसरे उत्पादक से बदलता था। अभी बीच के बनिया वर्ग की सृष्टि नहीं हुई थी।

अंध विश्वास का पल्लवन

पितृसत्ता काल में अलौकिक शक्तियों—देवता, भूत प्रेत आदि की अवधारणा पल्लवित हुई। यही अवधारणा आगे चलकर सामन्ती युग में धर्म के रूप में विकसित हुई। अलौकिक शक्ति की अवधारणा या धर्म शोषण मूलक समाज की विशेषता है। शासक वर्ग इस धारणा को बरकरार ही नहीं रखता, बल्कि उसके प्रचार प्रसार में योग देता है, क्योंकि वह

इसकी आड़ में अपने शोषण की प्रक्रिया को बरकरार रख सकता है। इसलिए महापितर इसमें गहरी दिलचस्पी लेने लगे। "कबीलों के शासक या पितर अब धर्म पुरोहित का भी काम करने लगे थे। अपने खाली समय और दिमाग को और कामों के साथ जमा होती वैयक्तिक सम्पत्ति की रक्षा के लिए इस्तेमाल करने का यह अच्छा मौका था। पितर पुरोहित बन साधारण जनता और देवता के बीच 'बिचवई' बना। देवता अक्सर उसके सिर पर आकर भी बोलने लगा था और इस प्रकार वह देव-सन्देश-वाहक बन चुका था। अब उसके पद के पीछे देव शक्ति सहारा देने लगी थी। वैयक्तिक सम्पत्ति और उसका प्रभुत्व देवता का वरदान था। भला मरणधर्मा मनुष्य देव-आत्मा के खिलाफ जाने की हिम्मत कैसे करता? "राजा विष्णु का अंश है"—इस कल्पना का प्रथम सूत्रपात यहीं से आरम्भ हुआ। शताब्दियों सहस्राब्दियों के जबदस्त देववाद और धर्म प्रचार के अनन्तर आज जो वैयक्तिक सम्पत्ति के औचित्य को साबित करने के लिए वातावरण तैयार हुआ है, वह स्वाभाविक ही था।"[18]

राहुल की अपेक्षा भगवतशरण उपाध्याय ने अपनी कहानी उदय' (सवेरा-संघर्ष-गर्जन) में अलौकिक शक्तियों तथा अंधविश्वासों की धारणा के विकास का स्वाभाविक चित्रण किया है। राहुल अपनी धारणा को प्रकट करने में अति उत्साह का परिचय देते हैं, जबकि भगवतशरण उपाध्याय मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रण करते हैं। उदय' में 'मुलना' की असामयिक और अस्वाभाविक मृत्यु सृष्टि को रहस्यमयी बना देती है। प्रकृति की प्रत्येक गतिविधि से शंका की जाने लगती है। किसी पारलौकिक सर्वशक्तिमान सत्ता में विश्वास जमता है। 'हिडिम्ब' अग्रणी भूमिका निभाकर इस विश्वास को और दृढ़ कर देता है।[19]

पितृसत्ता से सामन्ती युग में संक्रमण

कहना न होगा कि विकास की यह अवस्थिति सामन्ती युग की पूर्व पीठिका को प्रतीकित करती है। यद्यपि राहुल पितृसत्तात्मक युग के बाद दास युग की चर्चा करते हैं। इस सन्दर्भ में फ्रेडरिक एंगेल्स के विचार भी इसी की पुष्टि करते हैं। दोनों दास प्रथा का उद्गम युद्ध-बन्दियों से मानते हैं। राहुल लिखते हैं, " श्रम की माँग से एक और भारी परिवर्तन हुआ, अभी तक अपने पराजित शत्रुओं को या तो मारकर खा जाया जाता था या मार डाला जाता था, युद्ध बन्दी बनाने का रिवाज न था। उसी तरह युद्ध में शत्रुओं को मार डालने से उसे बन्दी बनाकर उससे काम लेने में ज्यादा फायदा था। इस प्रकार पितृसत्ता काल में दासता का प्रारम्भ हुआ और आगे चलकर अब दास और स्वामी के दो वर्ग कायम हो गये।'[20] आगे लिखते हैं कि उस युग में कृषि, गृह शिल्प धातु शिल्प सभी में काम करने वाले आदमियों की माँग थी। सम्पत्ति के उत्पादन के लिए साधन मौजूद थे हाथों की जरूरत थी। ऐसी अवस्था में दास प्रथा का आविष्कार हुआ।[21] राहुल की दृष्टि में बर्बर हिन्दी-आर्यों को स्वात से सिन्धु-उपत्यका में (1800 ई० पूर्व में) दाखिल होते ही वहाँ की सभ्य जाति से मुकाबिला करना पड़ा और पराजितों को अपना दास' (गुलाम) बनाकर

यह स्वयं दासता युग में प्रविष्ट हुए।[22] भारत राहुल की दृष्टि में दास प्रथा उत्पादन की एक पद्धति रही है। यह तथ्य 'पुरुहूत' (वोल्गा से गंगा) की 'रोचना' के इस कथन से भी प्रमाणित होता है "एक और भारी पाप बाबा। मद्र और पर्शु कहीं से आदमी पकड़ लाते हैं, उनमें अयः घड़ग अयः-कुठार बनवाते हैं। वे बड़े चतुर शिल्पी हैं बाबा! किन्तु मद्र पशु उन्हें पशु की तरह जब चाहते हैं रखते हैं, जब चाहते बेच देते हैं। खेती का काम, कम्बल बुनने का काम और क्या क्या दूसरे काम ये लोग इन्हीं पकड़कर रखे लोगों—जिन्हें वे दास कहते हैं—से कराते हैं।"[23]

लेकिन भारतीय सन्दर्भ में उत्पादन की एक विशेष पद्धति के रूप में दास प्रथा नहीं रही है। पश्चिमी समाज में अवश्य इसकी अवस्थिति रही है। रिस डेविड्स ने भी कहा है कि दास प्रथा के उस बाद वाले विकास की बात हम यहाँ नहीं सुनते जिसमें कि यूनान की खानें, रोमन राज्य की बड़ी रियासतें या गुलामों के ईसाई मालिकों के बड़े-बड़े खेत कष्ट और उत्पीड़न के दृश्य बन गये थे।"[24] डा० रामविलास शर्मा भी भारतीय सन्दर्भ में दास प्रथा की अवस्थिति से इनकार करते हैं। उनका कहना है कि रक्त सम्बन्ध पर आधारित जन व्यवस्था से सीधे सामन्ती व्यवस्था की ओर संक्रमण वैदिक साहित्य में बहुत अच्छी तरह देखा जा सकता है।[25] पर इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि यहाँ दास थे ही नहीं। दास थे, इसका प्रमाण भारत का प्राचीन साहित्य है। ऋग्वेद (8, 56, 3) में दान की अन्य वस्तुओं के साथ सौ दासों का भी उल्लेख है। ऋग्वेद (8, 19, 36) में त्रसदस्यु पचास युवतियाँ दान करते हैं। पाण्डुरंग वामन काणे का मानना है कि सम्भवतः इसका अर्थ दासियों का दान है।[26] तैत्तरीय संहिता (7, 5, 10, 1) में सिर पर कलश रखे हुए दासियों के नाचने गाने का उल्लेख है। तैत्तरीय संहिता (2, 2, 6, 3) में दास के दान की बात भी कही गयी है। ऐतरेय ब्राह्मण (39, 8) में राजा अपने पुरोहित को दस हजार दासी देता है। कठोपनिषद में नचिकेता को दासियों द्वारा आकृष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि सांसारिक ऐश्वर्य में गाय, घोड़े, हाथी, सोना, पत्नियाँ, दास, खेत और घर है। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि यहाँ दासों की अवस्थिति थी। लेकिन उत्पादन की एक विशेष पद्धति के रूप में दास प्रथा नहीं थी। दास महापितर या कुलपति के परिवार का अंग बनकर उसके अन्य सदस्यों के साथ काम करते थे।

वस्तुतः पितसत्ता युग का विकास सामन्ती युग के रूप में होता है। इस सामन्ती युग का आरम्भ वैदिक काल में माना जाता है। इस युग का आगमन 'दिवोदास' में और चरम विकास 'सिंह सेनापति' तथा 'जय यौधेय' में चित्रित किया गया है। 'वोल्गा से गंगा' में तो इसके आगमन से पर्यवसान तक को समेटा ही गया है। एंगेल्स के अनुसार उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार, छोटे पैमाने की पैदावार का आम चलन, खेती में चाहे स्वाधीन किसान हो चाहे अर्द्धदास हो उत्पादन के साधनों पर उसका भी व्यक्तिगत अधिकार सामन्ती व्यवस्था की विशेषताएँ हैं। ये विशेषताएँ भारत के सामन्ती समाज में भी मिलती हैं। कुछ लोग भ्रमवश सामन्ती व्यवस्था में भूमि के सन्दर्भ में राजा या सामन्त का एकाधिपत्य मानते हैं। पर यह गलत है। डा० रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि सामन्ती व्यवस्था में यह आवश्यक नहीं है कि भूमि पर राजा या सामन्त का व्यक्तिगत

अधिकार हो। यूरोप और इग्लैण्ड म भूमि पर साम ता का व्यक्तिगत अधिकार वैसे ही न था जैसे भारत मे। जिस भूमि को 'प्रजा' जोतती थी, उस पर प्रजा का ही अधिकार था, सामन्त की अपनी भूमि की बात दूसरी है।[27] वस्तुत भूमि के सन्दभ मे सामन्त और उसकी प्रजा के परस्पर वग विरोध का कारण यह था कि सामन्त प्रजा की रक्षा के नाम पर उससे तरह तरह के कर वसूल करता था और उससे अनक अवसरो पर बेगार कराता था।

गणतन्त्र बनाम राजतन्त्र

साम ती युग के पूर्वार्द्ध तक दो प्रकार की शासन प्रणालिया दृष्टिगत होती है—गणतन्त्रात्मक और राजत त्रात्मक। सामन्त पितृसत्ताक समाज के शासक पितरो के विकसित रूप थे और पितसत्ता के अ तिम चरण से ही प्रजातन्त्र और राजतन्त्र दोना प्रकार के शासनो का विकास हुआ। इस गणत त्रात्मक व्यवस्था को आधुनिक अर्थों म नही समझना चाहिए। आधुनिक गणत त्र की तुलना म उसकी बहुत सारी सीमाएँ थी। गणत त्रो के नता धनी खानदान के थे। "प्रजात त्रो मे ऐसे खानदानो का पता आथे स, वैशाली, कपिलवस्तु सभी जगह मिलता है।"[8] साथ ही ये प्रजात त्र रक्त सम्ब धो पर आधारित थ। एसी स्थिति मे उसमे व्यापकता का सवथा अभाव दृष्टिगत होता है।

साम ती युग म इन दानो प्रकार की व्यवस्थाओ मे सघष हुआ। इस सघष का आर्थिक कारण था। एक लम्बे सघष के बाद गणत त्र मटियामट हुआ और निरकुश राज त त्र का एकछत्र राज्य हुआ। राहुल ने 'वोल्गा स गगा', 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' मे इन दो व्यवस्थाओ के सघष का विशद् चित्रण किया है। 'सिंह सेनापति' म वशाली गणतन्त्र और मगध के बीच का सघष के द्रीय महत्व का है। 'सिंह' के कुशल नतत्व म वैशाली मगध से टकराता है। अ तत वैशाली की विजय होती है गणत त्रात्मक व्यवस्था की विजय होती है। 'जय यौधेय' मे मगध और यौधेय गणतन्त्र के बीच का सघष चित्रित हुआ है। इन दोना के बीच टक्कर एक लम्बे अन्तराल से दो बार होती है। पहल सघष म यौधेय अपनी अस्मिता की रक्षा कर पाते हैं। पर दूसरे सघष म मगध साम्राज्य की विशाल वाहिनी यौधेय को मटियामेट कर देती है। यौधेय गण का सनानायक जय इन दोना सघर्षो मे अपन इस्पाती व्यक्तित्व का परिचय देता है। जय मगध सम्राट च द्रगुप्त विक्रमादित्य का मामा और बाल सखा है। वह अपने इस सम्ब ध का फायदा उठाकर राज भोग कर सकता था और इस तरह का प्रस्ताव भी कई बार आया। लेकिन अपने गण की रक्षा क लिए वह इस सम्ब ध को ताक पर रख देता है। वह जान की बाजी लगाकर युद्ध करता है। अन्तत उसका प्राणा त युद्ध-क्षेत्र मे ही हो जाता है। गणतन्त्र और राजत त्र के बीच चलनेवाले सघर्षो म यह सघष अन्तिम और महत्वपूण है। इसके बाद तो एक छत्र राजतन्त्र का शासन हो जाता है।

राहुल ने राजत त्र की अपेक्षा गणतन्त्र को श्रेयस्कर माना है। इसका कारण यह है कि गणत त्र में अपेक्षाकृत सामन्ती मूल्य और नतिकता का अभाव दृष्टिगत होता है। राहुल का प्रिय पात्र 'सिंह' कहता है—'प्यारी रोहिणी! राजत त्र नर-नारियो का ब दी-

गृह है। वहाँ राजा के सामने किसी मनुष्य का मान मूल्य नहीं। वहाँ नारीत्व क्रीड़ा और कामुकता के लिए खिलौना है। वहाँ स्वतन्त्र मानव के लिए कोई स्थान नहीं।"[29] सिंह राजतन्त्र से उसमें पल्लवित-पुष्पित हो रहे नारी सम्बन्धी सामन्ती मूल्यों के कारण घृणा करता है। दूसरी ओर वह गणतन्त्र का प्रशंसक है क्योंकि वह नारी की जीवन व्यवहारों में सहभागिता को स्वीकारता है।

राजतन्त्र की अपेक्षा गणतन्त्र में वर्ग भेद कम दिखायी पड़ता है। यद्यपि इसके नेतागण धनाढ्य और कुलीन घरानों के हुआ करते थे। बावजूद इसके सामान्य जीवन व्यवहार में आभिजात्यपन दृष्टिकोण नहीं होता। जय अपने यौधेय गण की चर्चा करते हुए कहता है, "पाटलिपुत्र के राजप्रासाद में सम्मान था, लेकिन भय के साथ। एक कौड़ी से अधिक ऐसे आदमी नहीं थे, जिससे मैं बराबरी से मिल सकता। अग्रोदका में हमारे एक हजार यौधेय घर थे। यद्यपि किसी के घर में कुछ अधिक धन था, व्यापार से कुछ अधिक आमदनी हो जाती थी, किसी किसी के घर में दासी, चूरे या गारे दाम दासी भी थे और कितनों को सारा काम अपने हाथों करना पड़ता था, तथापि ये हजार घर सभी समान थे। एक घर में खाना रहने पर दूसरा घर भूखा नहीं रह सकता था। एक घर में मदिरा रहने पर दूसरे का कंठ तर हुए बिना नहीं रह सकता था। उसमें दान कृतज्ञता का सवाल नहीं था। हरेक यौधेय अपने किसी बन्धु के आहार विहार में अपना नैसर्गिक अधिकार समझता था। मेरी चाचियां कम किन्तु भाभियां ज्यादा थीं। मैं जब अग्रोदका जाता तो शायद ही किसी दिन अपने घर खाने पाता। तेरह चौदह साल का हो जाने पर जब नाच गान में अपने कौशल को दिखलाने लगा, तो मेरी सभी भाभियाँ अपने आँचल में मुझे बाँधने के लिए होड़ लगाने लगीं। कितना अपार स्नेह उनमें था? पिता का एक मात्र पुत्र होने से मेरी सगी भाभी नहीं थी, किन्तु यौधेयों में सभी भाभियाँ सगी भाभियां होतीं, क्योंकि सभी यौधेय एक ही वंशधर का खून अपने रगों में दौड़ता अनुभव करते। खेती की उठती या परती सारी भूमि सारे वंश की समझी जाती और जोतते वक्त साधन के अनुसार लोगों में खेत बांटा जाता। हर साल जाते हुए खेत फिर सारी यौधेय बिरादरी के बन जाते और अपने हक के कारण नहीं, बल्कि परिवार के होने से खेत मिलता, इससे भी यौधेय अपने को एक घर का सगा भाई समझते हैं। अग्रोदका ही नहीं रोहितकी, खण्डिला, श्रीमाल ओस आदि सभी नगरों और गांवों के यौधेय एक दूसरे को सगे भाई की दृष्टि से देखते।"[30]

राजतन्त्र की स्थिति इसके ठीक विपरीत है। इसके केन्द्र में राजा है। "भोग में उसे अधिक स्वच्छन्दता होती है, वह देश का सबसे धनी आदमी होता है। बिना व्यापार के उसके पास दुनिया भर की श्री चली आती है। उसके पास सबसे अधिक कर्मान्त (खेती) होता है। वह सबसे अधिक दास दासियों का स्वामी होता है। नित नयी-नयी तरुण सुन्दरियों से वह अपने अन्तःपुर को भरता रहता है।"[31] गणतन्त्र रक्त सम्बन्ध पर आधारित एक जन का सम्प्रभु लोकतान्त्रिक संगठन होता है। राजतन्त्र की संरचना इससे एकदम भिन्न होती है। 'राजा केवल एक जन (जाति) के ऊपर तक ही अपने शासन को सीमित रख कभी सुरक्षित नहीं रह सकता। जिस प्रकार गण के लिए दूसरे जन पर शासन

करना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार राजा के लिए केवल एक जन पर शासन करना सम्भव नहीं है। राजा का शासन करने के लिए अनेक जन चाहिए, जिससे वह एक के विरुद्ध दूसरे की सहायता ले सके। उसे दासों का समाज चाहिए, जिसमें एक जन के भीतर भी अपने सहायक ढूंढ सके। स्वयं एक जन को भी राजा ताड़ फाड़ करके रखते हैं। उत्तरापथ के गणों में ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य आदि भेद नहीं देखे जाते। उनके यहाँ देवताओं की पूजा-प्रार्थना के लिए कोई अलग समुदाय निश्चित नहीं है किन्तु यहाँ इन राजाओं के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि भेद बनाये गये हैं। यह भी राजा के स्वेच्छाचारी शासन के सुभीते के लिए किया गया है।"[32]

राहुल ने 'मानव समाज' में प्रजातन्त्र और राजतन्त्र में फर्क करते हुए लिखा है, "जहाँ प्रजातन्त्र के सामन्तों को शासक बनने के लिए धन और खानदान के अतिरिक्त जनता की सम्मति—जो बहुत कुछ उक्त दोनों बातों से मिल सकती थी—की भी जरूरत पड़ती थी और सामन्त वर्ग में समानता का बर्ताव रखना पड़ता था, वहाँ राजतन्त्र में एक खानदान को सर्वोपरि मान लिया जाता था और उसके लिए वोट आदि का झगड़ा न था।'[33] तत्कालीन सन्दर्भों में इस दृष्टिकोण से गणतन्त्र को प्रगतिशील कहा जा सकता है। सारतः तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में राहुल गणतन्त्र को श्रेयस्कर मानते हैं। इसीलिए गणतन्त्र बनाम राजतन्त्र के संघर्ष में उनकी सहानुभूति गणतन्त्र के प्रति है। और यह वाजिब भी है।

इन श्रेयस्कर गुणों के बावजूद गणतन्त्र का विनाश होता है। कहना न होगा कि इसमें राजतन्त्र की साम्राज्यलिप्सा एक महत्त्वपूर्ण कारण है। गणतन्त्र की सीमाएँ भी उसके विनाश का कारण रही हैं लेकिन राजतन्त्र प्रभावी भूमिका अदा करता है। इस सन्दर्भ में बनिया वर्ग उसकी मदद करता है। यह वर्ग सामन्ती युग में ही अस्तित्व में आता है। वणिक-समाज चाहता है कि राज्य की सीमाएँ छोटी न होकर बड़ी होवें, जिससे अव्याहत गति से व्यापार हो सके।

कुछ विद्वान गणतन्त्र के विनाश में राजतन्त्र की भूमिका नहीं मानते। डा० काशी प्रसाद जायसवाल इस सन्दर्भ में गणों के आन्तरिक कलह को मुख्य कारण मानते हैं। डा० रामविलास शर्मा ने भी यही मत प्रतिपादित किया है। डा० शर्मा ने अपनी धारणा को पुष्ट करने के लिए 'महाभारत' के शान्तिपर्व के इन दो श्लोकों को उद्धृत किया है—

"निग्रह पण्डितै कार्य्यो भिप्रमेव प्रधानत ।
कुलेपु कलहा जाता कुलवृद्धैरूपेक्षिता ।।
गोत्रस्य नाशकुर्वन्ति गणभेदस्य कारकम् ।
अभ्यन्तरभय रक्ष्यमसार ब्राह्यतो भयम ।।"

कुलों में कलह हो और कुलवद्ध उसकी उपेक्षा करते रहें तो इससे गोत्र का नाश होगा और गण टूट जायगा। डा० रामविलास शर्मा का इस सन्दर्भ में कहना है कि जो विद्वान यह समझते हैं कि सम्राटों की राज्य लिप्सा से गण टूट गये, वे कुलों की कलह के भय पर ध्यान दें।[34] गणों को भंग करने का श्रेय चाणक्य या चन्द्रगुप्त मौर्य या किसी ... सम्राट को देना उचित नहीं।[35]

बहरहाल, गणतन्त्र के विनाश का मुख्य कारण उसके आन्तरिक कलह को मानना और राजतन्त्र को बिल्कुल बेदाग बताना तर्कसंगत और प्रामाणिक नहीं है। सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि दुनिया के दूसरे भागों के इतिहास में भी पुराने गणतन्त्र के विनाश के पीछे राजतन्त्र की साम्राज्यलिप्सा काम करती है। वस्तुतः डा० जायसवाल और डा० शर्मा के विचार एकांगी हैं। डा० शर्मा तो नियतिवादी अन्दाज में विश्लेषण करते हैं, "ये गण राज्य अपने विकास की उस मंजिल तक पहुँच गये थे जहाँ आन्तरिक वर्ग भेद से उनके पुराने ढाँचे का टूटना अवश्यम्भावी था।"[36] विवेचन की यह नियतिवादी शैली अनुचित है। यह सही है कि गण में वर्ग भेद होने के कारण उसका पूर्ववर्ती ढाँचा कायम नहीं रह सकता था। उसे एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के दौर में टूटना ही था। लेकिन इस प्रक्रिया को तेज करने में 'केटेलिस्ट' का काम किया राजतन्त्र की साम्राज्यवादी नीति ने। इस तथ्य को नजरअन्दाज करना विकास प्रक्रिया की गलत समझ का द्योतक है। भगवतशरण उपाध्याय का चिन्तन भी राहुल के मेल में है। उन्होंने अपनी कहानी 'राष्ट्र भेद' (संवरा संघ गजन) में मगध की साम्राज्यवादी भेद नीति को उजागर किया है।

डा० रामविलास शर्मा का कहना है कि यह समझना कि राजाओं में तो दूसरों का राज्य हड़पने की लिप्सा थी और गणराज्य अपने-अपने प्रदेश में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति पर चल रहे थे, गलत है।[37] उन्होंने डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल के हवाले से बताया है कि लिच्छवि, मद्र, मालव और यौधेय गणों ने अपने प्रदेश का विस्तार किया था। अन्य देशों के इतिहास से भी इस तरह के गणों के परस्पर युद्ध और अपने प्रदेश को फैलाने की बात हम जानते हैं।[38] रांगेय राघव का भी गणराज्यों के बारे में कोई अच्छा ख्याल नहीं है। महायात्रा गाथा (भाग 2) में काशिराज्य का राजा अश्वसेन कुशस्थल (उन दिनों कौसल की राजधानी का नाम कुशस्थल था) के दूत से कहता है, "गण राज्यों ने कहते हैं तीन बार एकत्र होकर एकतन्त्रों को समाप्त करने की चेष्टा कर ली है किन्तु एकतन्त्र कभी पराजित नहीं हुए। गण भीषण दास प्रथा के अन्याय को जीवित रखते हैं। हम एकतन्त्रों में दासत्व का पाप समझा जाता है। वे कभी हमें समाप्त नहीं कर सकते।"[39] चतुरसेन शास्त्री ने वैशाली की नगरवधू में गणतन्त्र के शोषण पक्ष को उजागर किया है। इस सन्दर्भ में सोमप्रभ का यह उद्‌घोष द्रष्टव्य है— यह गणतन्त्र भी उसी भाँति गण शोषक है जैसे साम्राज्य। यहाँ भी दास हैं, दरिद्र हैं और यह निकम्मे मद्यप स्त्रैण सामन्त पुत्र हैं। ये सेट्ठिपुत्र हैं, आज ये कंकड़-पत्थर की भाँति अरब खरब के रत्न मणि अपने शरीर पर लादकर उन भूखे नंगे कृषकों का लूटने को कृषकों की सेना भेजकर यहाँ मदमस्त होने आये हैं।"[40]

वस्तुतः राहुल और उपर्युक्त विद्वानों का प्राचीन गणतन्त्र के बारे में नजरिया दो विपरीत ध्रुवों पर अवस्थित दृष्टिगत होता है। राहुल के विपरीत ये विद्वान प्राचीन गणतन्त्र को आक्रामक और शोषणमूलक मानते हैं। जिस गणतन्त्रात्मक व्यवस्था के नियमों को अपने जमाने के क्रान्तिकारी विचारक गौतम बुद्ध ने भिक्षु संघ पर लागू किया, उसे आक्रामक और शोषणमूलक मानना थोड़ा असम्भव लगता है। उसके मूल्यों का ह्रास हुआ। पर वह कभी इतना नहीं गिर गया कि उसे राजतन्त्र की तुलना में अपेक्षा

घृत अधिक आक्रामक और शोषणमूलक मान लें। राहुल की दृष्टि म गणतन्त्र आक्रामक नही रहा है। तभी तो 'सिंह सेनापति' का कपिल कहता है, " हम गणतन्त्रियो का लक्ष्य इससे (राजतन्त्र से—च० भा०) बिल्कुल उल्टा है हम न स्वय परतन्त्र होना चाहते हैं, न दूसरा को परतन्त्र करना चाहते है।"[41] दरअसल गणतन्त्र की सरचना की अपनी सीमा है। रक्त सम्बन्ध पर आधारित होने के कारण राजतन्त्र की तरह वह साम्राज्यवादी नही हो सकता। और, अगर किसी ने ऐसा किया, तो इतिहास साक्षी है कि उसका स्वरूप विनष्ट हो गया। राहुल का सेनापति सिंह कहता भी है, 'चाहने पर भी परतन्त्र नही कर सकते, क्योकि हमारी राज्य सीमा अपने खून पर निर्भर है। जहा लिच्छवि प्रजा नही है, वहा अपना शासन स्थापित करना हमारे लिए सपने की बात है।"[42] राहुल न मगध सम्राट बिम्बिसार के मुह से भी वैशाली के इसी असाम्राज्यवादी स्वरूप को स्पष्ट करवाया है—"लिच्छवि गण हैं, वह पराये देश का अपहरण नही करना चाहते, नही ता मैं समझता हूँ इस वक्त ऐसी स्थिति म थे कि चाहते तो सारे अग, मगध और पाठा का अपने अधीन कर हमारे राजवश का सहार कर डालते।"[43]

प्राचीन गणतन्त्रो का रक्त सम्बन्धो पर आधारित रहना जहाँ एक ओर उसे असाम्राज्यवादी बनाये रखा वही दूसरी ओर उसके आधार फलक को सीमित भी किया और राजतन्त्रात्मक व्यवस्था के मार्ग को प्रशस्त किया। गणतन्त्री पूर्वजा के खून के जबदस्त पक्षपाती थे। " गणो म जनसत्ता जरूर थी किन्तु वह सिर्फ सफेद आर्यो के लिए, उसके उसी जन के लिए जिसने उस जनपद का बसाया'। वहा आर्य जना का अनार्य जनो स द्वन्द्व था और दोना का दबान के लिए सिवाय शासक और शासित बनने के दूसरा रास्ता न था। इसके विरुद्ध राजतन्त्र इस द्वन्द्व को 'हटाने के लिए' दो प्रतिद्वन्द्वी वर्गो के ऊपर अपने को दोनो को एक दृष्टि स देखनेवाला—घोषित करता था। अनार्य जनो को उतना अधिकार न मिला, किन्तु गणतन्त्र की अपेक्षा राजतन्त्र से वह इसलिए सन्तुष्ट थे कि जनसत्ता चाहे उन्हे नही मिली, किन्तु आर्य जन भी तो उससे वचित किये गये।'[44]

वस्तुत गणतन्त्र का रक्त सम्बन्ध पर आधारित होना उसकी सबसे बडी सीमा थी और वही उसके विघटन का कारण भी बनी। गणतन्त्र की इस सीमा की ओर कुमार यौधेय भी इशारा करते हैं "यदि हमारी भूमि मे बस गये यौधेया के अतिरिक्त दूसरी जातियो को भी गण सस्था मे भाग लेने का अधिकार होता तो हमारी सैनिक शक्ति दूनी हो जाती। इसमें सन्देह नही। आज की अवस्था मे चेष्टा कामयाब नही होगी। हमारा गण हमेशा से रक्त सम्बन्धियो का रहा है। जो बात बहुत पुरातन काल से चली आयी है, उसको हटाने मे बडी दिक्कत होती है।"[45] डा० काशीप्रसाद जायसवाल, डॉ० रामविलास शर्मा आदि विचारको ने गणतन्त्र के ह्रास के सन्दर्भ मे गण के आन्तरिक कलह, उसकी आक्रामकता, वर्ग भेद आदि की चर्चा की, लेकिन इस तथ्य पर ध्यान नही दिया। इस दृष्टिकोण से राहुल का चिन्तन सर्वथा मौलिक और सन्तुलित है।

गुरुदत्त ने 'बहती रेता' मे लिखा है कि इस व्यवस्था (गण व्यवस्था) ने, राजनीतिक विचार से देश को अनेक छोटे छोटे देशा मे बाटने का कार्य किया। परिणाम यह हुआ कि आर्य एक जाति और भारत एक देश की भावना विलुप्त होकर अनेक मत-

मतान्तरो की सृष्टि हुई और लिच्छिवि, मागधी, मल्ल, किन्नर आदि अनेक जातियों और अनेक देशों की भावना जाग उठी।[46] फलतः विदेशी आक्रान्ताओं के सन्दर्भ में गणतन्त्र बड़ा ही अनुपयोगी और आत्मघाती सिद्ध हुआ। "शक्तिशाली विदेशी आक्रमण होने पर ये ठहर न सकते थे, विशेषकर इसलिए कि ये आपस में भी लड़ा करते थे।"[47] यह स्थिति खासकर सिकन्दर-सेल्यूकस के आक्रमण के समय हुई। इसीलिए राहुल का विष्णुगुप्त कहता है "मैं समझता हूँ, अब छोटे छोटे गणों का युग बीत गया, और बड़ा गण या संघ कायम करना सपना मात्र है, इसीलिए मैं समय की आवश्यकता को उचित कहता हूँ।"[48] विदेशी आक्रान्ता (सिकन्दर सेल्यूकस) जितना मजबूत है, "उसका मुकाबिला गणों के संघ से नहीं हो सकता, अनेक गणों की सीमा मिटाकर यदि एक महान गण बनाया जा सके, तो शायद सम्भव हो।"[49]

रांगेय राघव ने गणतन्त्र के इस पहलू को रेखांकित करते हुए एकतन्त्र का समर्थन किया है। *महायात्रा गाथा'* (भाग 2) में चन्द्रगुप्त कहता है—"गण व्यवस्था से प्रजा सन्तुष्ट नहीं है आर्य! व्यापारी तो स्पष्ट कहते हैं कि यदि यहाँ एक विशाल राज्य होता तो इस बर्बर (यवन सिकन्दर व सेल्यूकस) को सीमा पर ही मारकर भगा दिया जाता। नन्द का नाम ही सुनकर उसकी सेना के छक्के छूट गये। साहस ही नहीं हुआ कि आगे बढ़ती। ब्राह्मण कहते हैं कि इसीलिए वृष्टि गण के राजा कृष्ण ने युधिष्ठिर से राजसूय यज्ञ कराके देश को एक किया था कि बर्बर और म्लेच्छ न आ सकें। जब परस्पर फूट पड़ी थी तभी बर्बर आभीर आ घुसे थे।"[50]

बहरहाल सामन्ती युग में गणतन्त्र बनाम राजतन्त्र का संघर्ष एक महत्वपूर्ण और विचारणीय प्रसंग है। इससे सामन्ती युग का विकास रेखांकित किया जा सकता है। इन दोनों का संघर्ष दो विचारधाराओं और व्यवस्थाओं का संघर्ष है। गणतन्त्रात्मक व्यवस्था में खामियाँ थीं अन्तर्विरोध थे। उसका ह्रास सामन्तवाद के मध्याह्न में अपनी खामियों व अन्तर्विरोधों के कारण हो गया। इसके बावजूद वह सामन्ती युग की प्रगतिशील धारा था। उसमें सामन्ती मूल्य और नैतिकता का आग्रह भी था। लेकिन राजतन्त्रात्मक व्यवस्था की तुलना में कम था। राहुल ने इसकी खूबियों को उभारा है और खामियों की मर्मी आलोचना की है। प्राचीन गणतन्त्रात्मक व्यवस्था के प्रति राहुल के इस लगाव का राजनीतिक सांस्कृतिक कारण है, जिसकी चर्चा हम यथास्थल करेंगे।

धर्म-दर्शन सामन्ती समाज की उपज

सामन्ती युग में ही धर्म की अवधारणा सामने आती है। पितृसत्ता युग में भी प्राकृतिक शक्तियों और मृत पितरों से एक तरह के भय का संचार होता था। मनुष्य के इस प्रकार के भय का सम्मोह ही भूतों व देवताओं और कालान्तर में धर्म की सृष्टि का कारण हुआ। प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य इन भय भैरवों से बचने के लिए कुछ पूजा-बलि देता था। उस वक्त के मानव का धर्म यहीं तक सीमित था। किन्तु वर्ग समाज कायम हो जाने पर उस सीधे सादे धर्म में बहुत सी पेचीदगियाँ उठ खड़ी हुई। इन पेचीदगियों का कारण

मनुष्य का सरल भय न था, बल्कि अब शासक वग ने उस सरल विश्वास को अपन स्वाथ की रक्षा के लिए इस्तेमाल करना शुरू किया। और इस काम का सम्पादित किया धम शास्त्रकारो ने। यहाँ मनु और दूसरे धमशास्त्रकारा न राजा प्रजा क कत्तव्य पर खूब कलम दौडाई है और गौर से देखन पर यहाँ राजा और शासक वग के अधिकारो को पूरा करन के लिए अपन श्रम और जीवन का सबसे बडा भाग देना जहाँ साधारण जनता का कतव्य था, वहाँ उनके अधिकारा की तालिका म परजन्म और परलोक म पायी जानवाली चीजें ही ज्यादा हैं। शासक वग हित-साधन के सन्दभ म धमशास्त्रकारो की इस महती भूमिका के प्रतिदान मे उन्ह भोग की उन्मुक्त छूट मिली। प्राचीन साहित्य का उठाकर देखिए, कहीं वशिष्ठ और विश्वामित्र का राज सवाओ के उपलक्ष्य म भारी भारी दक्षिणाएँ या परिवार सहित सुखमय जीवन बिताते देखेंगे कहीं याज्ञवल्क्य जनक की हजार-हजार सुनहले रुपहले खुरोवाली गायो को दक्षिणा म हँकवा ले जाते हैं। दूसरे देशा म भी शासक वग न पुरोहित वग से समझौता कर अपने भोगा का कुछ भाग उन्हें दान दक्षिणा के तौर पर दिया। राहुल की दृष्टि मे यह वस्तुत शोषका को निर्विरोध तथा धमानुमोदित तौर पर शोषण जारी रखने के लिए रिश्वत से बढ़कर कोई चीज न थी।[4] इस सन्दभ म प्रवाहण (प्रवाहण कहानी का प्रमुख पात्र) का यह वक्तव्य द्रष्टव्य है—'राज्य को अवलम्ब देन ही के लिए यह हमारे पूवज राजाओ न वशिष्ठ और विश्वामित्र को उतना सम्मानित किया था। वह ऋषि, इन्द्र, अग्नि और वरुण के नाम पर लोगा को राजा की आज्ञा मानन के लिए प्रेरित करते थे। उस समय के राजा जनता म विश्वास-सम्पादन के लिए इन देवताओ के नाम पर बडे बडे खर्चीले यज्ञ करते थे। आज भी हम यज्ञ करते हैं और ब्राह्मणो को दान दक्षिणा देत हैं। यह इसलिए कि जनता देवताओ की दिव्य शक्ति पर विश्वास करे और यह भी समझे कि हम जो यह गन्धशाली का भात गो-वत्स का मधुर मास-सूप सूक्ष्म वस्त्र और मणि मुक्तामय आभूषण का उपयोग करते हैं वह सब देवताओ की कृपा है।[5] आगे चलकर तो यह धारणा प्रचारित की गयी कि राजा विष्णु का अश है। जय यौधेय इस पूरे प्रकरण की कलई खोलते हुए कहता है, 'मैं समझता हूँ, ईश्वर के विचार को फलान मे राजाओ का सबसे बडा हाथ है। पृथ्वी के परमेश्वर (राजा) का देखकर आकाश के परमेश्वर की कल्पना की गयी। आकाश के परमेश्वर की निरकुशता को बतलाकर पृथ्वी के परमेश्वर का निरकुश बताया गया। 'सब कुछ छोडकर अपन को परमेश्वर के हाथ म दे दो' यह सिद्धान्त काल्पनिक परमेश्वर के लाभ के लिए है।'[6]

दशन की भूलभुलैया

वस्तुत शोषक वग ने अपने अनुचित सम्पत्ति और भोगो को देवी-देवताओ की कल्पनाओ और उन पर आश्रित धम द्वारा उचित साबित करने की कोशिश की। कुछ समय तक वह चला, किन्तु फिर मनुष्य के ज्ञान मे विकास हुआ। वही धम सभी देशा और जातियो मे ध्रुव सत्य के तौर पर नही स्वीकार किए जाते थे। सन्देह पैदा होना स्वाभाविक था। इस

बुद्धि स्वातन्त्र्य को रोकने के लिए किसी उपाय की जरूरत थी और यही दर्शन के रूप में प्रकट हुआ। धर्म से अपने को जबदस्त समझने का जिसे अभिमान था, उस बुद्धि के सामने दर्शन के रूप में ऐसी भूल भुलैया तैयार की गयी जिससे निकलने का उसे रास्ता ही न मिले। राहुल का विचार है कि उसके (दर्शन के—ध०भा०) आरम्भिक निर्माण में सामन्तों का अपना सीधा हाथ रहा है—उपनिषद् के दर्शन के निर्माण में प्रवाहण, जनक अश्वपति कैकेय आदि राजाओं का जबदस्त हाथ ही नहीं रहा है, बल्कि यज्ञ-बलि का दक्षिणाओं के लोभ में अन्धे पुरोहित (ब्राह्मण) वर्ग का जब जनता के बढ़ते हुए अनुभव से उत्पन्न विश्वास दिखलायी नहीं पड़ता था, तब कर्मकाण्ड का कमजोर, ढोंगी कहकर ब्रह्म ज्ञान की भूल भुलैया तयार करनेवालों में सामन्तों (क्षत्रियों) का प्रधान हाथ था।[54] इस सन्दर्भ में सामन्त और पुरोहित की मूल मंशा को रेखांकित करती हुई लोपा गार्गी से कहती है —'तू बच्ची है, गार्गी। तू जानती है कि यह ब्रह्मवाद सिर्फ मन की उड़ान, मन की कलाबाजी है। नहीं गार्गी, इसके पीछे राजाओं और ब्राह्मणों का भारी स्वार्थ छिपा हुआ है। जिस क्षण यह ब्रह्मवाद पैदा हुआ था, उस समय इसका जन्मदाता (प्रवाहण—ध० भा०) मेरी बगल में सोता था। यह राज-सत्ता और ब्राह्मण सत्ता को दृढ़ करने का भारी साधन है—वैसे ही, जैसे कृष्णलोह (लोहे) का खड्ग, जैसे उग्र लेहितपाणि भट्ट।"[55]

प्रस्तुत प्रकरण में पुनर्जन्म की चर्चा भी अपेक्षित है। पुनर्जन्म की अवधारणा शासक वर्ग (जिसमें सामन्त और पुरोहित दोनों सम्मिलित थे) द्वारा अपने हित साधन के निमित्त किया गया सफल बौद्धिक प्रयास है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त पहले पहल उपनिषद् में दिखायी पड़ता है। यह वेद के परलोक में 'अमर' होने की जगह इसी लोक में आवागमन पर जोर देता है। वस्तुतः यह वर्ग विभक्त समाज के ढांचे को अक्षुण्ण रखने के लिए जबदस्त तरीका था। पुरोहितों को सोने चांदी की दक्षिणा दे देकर किये गये बड़े बड़े यज्ञों का फल यदि सिर्फ देवलोक में ही देखा जा सकता है तो वह काफी सन्तोष का विषय नहीं था। इसलिए कहा गया कि इसी लोक में जो किसी को महाधनी और महाभोगवाला देखते हो यह पूर्वजन्म की कमाई है। राहुल की दृष्टि में यह एक ढेले में दो चिड़िया मारना था—ब्राह्मणों की आमदनी के बड़े रास्ते दान और यज्ञ के फल को यहीं समाज में दिखलाना तथा समाज की असमानता को जायज करार देना। पुनर्जन्म के सिद्धान्त द्वारा पीड़ित वर्ग को बतलाया जाता था कि इसी जन्म को सब कुछ मत समझो, इसीलिए सामाजिक विषमता को हटाने दरिद्रता दूर करने की कोशिश मत करो। दरिद्रता सिर्फ भगवान की मर्जी से ही नहीं है, बल्कि इसके जिम्मेवार तुम्हारे अपने पूर्व कर्म हैं। तुम्हें दूसरे की सम्पत्ति को देखकर डाह नहीं करनी चाहिए। समाज में धनी निर्धन वर्ग शाश्वत हैं क्योंकि इसी द्वारा शुभ-अशुभ कर्मों का फल मिलता है। चट्टान से सर टकराने की जगह चाहिए कि तुम भी अच्छे अच्छे काम करो दान-पुण्य, यज्ञ याग करो, जिससे अगले जन्म में राजा या धनाढ्य कुल में जन्म ले तुम भी इन सारे भोगों के अधिकारी बनो।[56] सिंह सेनापति में आचार्य बहुलाश्व ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त की मूल मंशा को रेखांकित करते हुए ठीक ही कहा है ... जुलाहा ... इसी लोक में फिर फिर आकर पैदा होने की कल्पना ... । उसमें उनका ... स्वार्थ काम कर रहा था। वह उसके द्वारा इस संसार के

भीतर अपने अधिकारों भोगों का औचित्य साबित करना चाहते थे। यह दास-दासियों की दुनिया उनकी बनायी नहीं, बल्कि मनुष्य के अपने ही पहले कर्मों की बनायी है—यह था उनका अभिप्राय।'[57] इस पुनर्जन्म के सिद्धान्त के दुष्परिणामों का जायजा जय यौधेय के शब्दों में लीजिए "मैं भी परलोकवाद और पुनर्जन्मवाद को ऐसी ही तुच्छ स्वार्थान्धता और कायरता समझता हूँ। मैं सदा के लिए मर न जाऊँ, इस डर से मारे मरने के बाद भी जीवित रहने की कल्पना करूँ, यह कितना महँगा सौदा है? यदि पुनर्जन्म का विश्वास हाथ-पैर और मन को न बाँधे होता तो हजार में नौ सौ निन्यानवे जनता अपने सामने की परोसी थाली एक आदमी के सामने रखकर भूखा न मरती और न भूखे और नंगे रहने वालों की कमाई से, उनके खून और उनकी हड्डियों से बड़े बड़े प्रासाद तैयार होते।"[58]

ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष : शासकवर्गीय अन्तर्विरोध

बहरहाल, उपर्युक्त विवेचन का यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि पुरोहित (ब्राह्मण) और राजा या सामन्त (क्षत्रिय) में बराबर एकता ही रही। दोनों में संघर्ष भी हुए। क्षत्रिय दार्शनिकता का विस्फोट इसका प्रमाण है। यह संघर्ष तत्कालीन शासक वर्ग के अन्तर्विरोधों को प्रकट करता है। रांगेय राघव का ख्याल है कि 1200 ई० पूर्व के आसपास क्षत्रियों की दार्शनिकता प्रकट होती है। क्षत्रियों ने ब्राह्मणों से क्रमशः विद्रोह करके अपने गण बनाये। क्षत्रिय दार्शनिकता ब्राह्मणों की मर्यादा को सीमित करती है। इस सन्दर्भ में रांगेय राघव ने अपनी कृति 'महायात्रा : गाथा' (भाग-2) में गौतम (ये गौतम बुद्ध नहीं हैं—च० भा०) के अनुचिन्तन को प्रकट किया है—'ब्राह्मण की मर्यादा को क्षत्रिय शिथिल कर रहे हैं। तप को वे यज्ञ से श्रेष्ठ मानने लगे हैं।'[59] पर ब्राह्मण वाज कहाँ आनेवाले हैं। अयास्य का एक कथन पेश है। वह अश्वपति कैकय से कहता है—'राजा! पहले युग में यह एक ब्राह्मण वर्ण ही था। वह एक ही था। वह एक होने से बढ़ नहीं सका। उसने कल्याण रूप क्षत्रिय रचा। देवों में जितने रक्षक हैं, वे क्षत्र हैं। वे रक्षक इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु और ईशान हैं। यही कारण है कि क्षत्रिय के कर्म से श्रेष्ठ कुछ है ही नहीं। तभी तो राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण नीचे बैठकर क्षत्रिय की आराधना करता है। राजसूय में क्षत्रिय का पद ब्राह्मण से ऊँचा होता है क्योंकि वह रक्षा करता है। ब्राह्मण राज्य का यश क्षत्रिय में स्थापित कर देता है। ब्राह्मण ही क्षत्रिय की योनि है। परमता को पहुँचकर भी राजा अपने जन्म के कारण ब्राह्मण का आश्रित होता है।'[60] अयास्य ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को ब्राह्मण क्षत्रिय की परस्पर प्रशंसा में भी स्थापित करने की कोशिश करता है। एक लम्बे अर्से तक ब्राह्मण-क्षत्रिय की परस्पर श्रेष्ठता का दावा किया जाता रहा।

ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष : ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष का परवर्ती रूप

कुछ लोग गौतम बुद्ध को क्षत्रिय दार्शनिकता की चरम अभिव्यक्ति मानते हैं। और ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष को ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष का परवर्ती रूप मानते हैं। लेकिन गौतम बुद्ध के

चिन्तन को क्षत्रिय दार्शनिकों में निःशेष कर देना थोड़ा मुश्किल और असंगत लगता है। गौतम बुद्ध का चिन्तन शासक वर्ग को एक हद तक चुनौती देता है। ऐसी स्थिति में उनके चिन्तन को शासकवर्गीय अन्तर्विरोध और अन्तःसंघर्ष के अन्तर्गत परिगणित करना उचित नहीं है। लेकिन इतना तय है कि बौद्ध दर्शन अपने विकास काल में सामन्ती विचारधारा ब्राह्मणवाद से संघर्ष करता है। ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष का यह प्रगतिशील रूप है। कालान्तर में ईसा पूर्व दूसरी तीसरी शताब्दी के आसपास बौद्ध धर्म शासक वर्ग की छाँव में चला जाता है। इसके बाद उसका ब्राह्मण धर्म से जो टकराव होता है, उसे शासकवर्गीय विचार धाराओं के आपसी टकराव के रूप में देखा सकते हैं। कहना न होगा कि राजसत्ता का दामन थामने के कारण बौद्ध धर्म अकाल काल-कवलित हो जाता है, उसका सामन्तवाद विरोधी तेवर नष्टप्राय हो जाता है। पुष्यमित्र के आते आते ब्राह्मण धर्म फिर जाग उठा। ब्राह्मण धर्म की पुनः प्रतिष्ठा हुई। प्राचीन धर्मसूत्रों की नींव पर भार्गव ने मानव धर्म शास्त्र का निर्माण किया। योगसूत्रों की रचना कर पतंजलि ने तृप्ति प्राप्त की। अबके महाभाष्य की वरदट्टालिका की नींव खड़ी करने लगे। रामायण और महाभारत के इतिहास नवीन रसना से चमके। पाली पिछड़ी संस्कृत सिंची। पैशाची गयी देशभाषा आयी। संघ शरण छोड़ जनता यम शरण की ओर मुड़ी। याग होम का पुनरुद्धार हुआ। ब्रह्मघोष से मगध का वातावरण गूंज उठा। मुण्डित मस्तकों पर शिखा वैजयन्ती फहराने लगी। ब्राह्मण—क्षत्रिय—संघर्ष की यह पराकाष्ठा थी।[61] पुष्यमित्र इस संघर्ष में ब्राह्मणों का ध्वजवाही था। उसने मिलिन्द की राजधानी शाकल में घोषणा की— 'यो मे श्रवणशिरो दास्यति तस्याहं दीनारशतं दास्यामि – जो मुझे एक श्रवण मस्तक देगा उसे मैं सौ दीनार दूंगा।'[61]

इस ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष की पृष्ठभूमि में ब्राह्मणों की संघर्षशीलता और बौद्धों की वंचकता है। विदेशी आक्रान्ताओं के सन्दर्भ में बौद्धों ने वंचकता का परिचय दिया, जिसका प्रतिकार ब्राह्मणों ने किया। ब्राह्मण बौद्ध संघर्ष में ब्राह्मणों की विजय का कारण यवन शक आदि जातियों का आगमन और शासनारूढ़ होना भी है। सामन्ती शासन वर्णव्यवस्था पर आधारित था जिसमें क्षत्रियों के जिम्मे शासन था। इन नयी जातियों को ब्राह्मणों की जरूरत थी क्योंकि वे ही उन्हें क्षत्रिय बना शासनारूढ़ रहने का स्थायी आधार प्रदान कर सकते थे। ब्राह्मणों ने उन्हें म्लेच्छ कहने की भूल को समझा। उन्होंने नये-नये श्लोक गढ़े और कहा कि यह यवन, शक आदि विदेशी जातियाँ क्षत्रिय आर्य हैं ब्राह्मणों के दर्शन न होने से संस्कार भ्रष्ट हो गयी हैं। तथागत श्रावकों ने राजाओं का पल्ला पकड़कर धर्म की अभिवृद्धि चाही, लेकिन अब यह पासा ब्राह्मणों के हाथ में चला गया है। तथागत श्रावक मानव समानता की बात कर सकते थे, किसी को उच्च वर्ण ब्राह्मण ही दे सकते थे। इसलिए राजा सामन्त ब्राह्मणों के हाथ में चले गये।'[62]

वर्ण व्यवस्था : सामन्ती समाज की उपज

भारतीय इतिहास में वर्ण या जाति की अवधारणा सामन्ती समाज व्यवस्था की उपज है। पितृसत्ता काल के बाद आर्थिक नींव में हुए परिवर्तन के कारण यह अवधारणा सामने

आयी। सामन्ती युग के आरम्भिक चरण में श्रम विभाजन की बढ़ती हुई आवश्यकता ने इस अवधारणा को जन्म दिया। इसीलिए वर्ण पर जाति निर्भर थी। तब जाति बन्धन इतने कठोर नहीं हुए थे। लोग जातियाँ बदल सकते थे। जाति प्रथा का यह प्रगतिशील रूप है। यह कहना गलत है कि जाति प्रथा अकेले ब्राह्मण वर्ग ने बनाया। वस्तुतः सामन्ती युग के आरम्भिक दौर में जाति प्रथा में बँधा रहना प्रत्येक पेशेवाले के लिए लाभदायक था। जाति का यह रूप जिसमें अपनी अपनी पंचायतें मिलती हैं प्रारम्भिक श्रेणी (गिल्ड) विकास का ही एक रूप है। सामन्ती मूल्य और रीतियों के प्रखर विरोधी 'निराला' ने भी भारतीय समाज के विकास में जाति प्रथा के इस प्रगतिशील रूप तथा ऐतिहासिक भूमिका को रेखांकित किया है। वे एक विशेष दौर में वर्ण व्यवस्था की आवश्यकता स्वीकार करते हैं। लेकिन शासक वर्ग (सामन्त और पुरोहित) ने धर्म की तरह इस अवधारणा का भी अपने वर्ग हित में इस्तेमाल करना शुरू किया। जब सामन्तीय समाज का प्रगतिशील कार्य समाप्त हो गया और समाज व्यवस्था में नए गतिरोध उपस्थित हो गया तब प्रत्येक पेशे के आदमी को उसकी जाति में बाँध दिया गया। पुरोहित (ब्राह्मण) ने शासक वर्ग के हित का ध्यान में रखकर जाति विशेष के लिए नये अधिकार और कर्तव्य निर्धारित किये। उसे पुनर्गठित भी किया गया। क्षत्रिय शासन की बागडोर सँभालने लगे। ब्राह्मणों ने सामाजिक व्यवस्था देने की महती भूमिका स्वीकार की। वैश्यों के भाग में व्यापार पड़ा। शूद्र बेचारे के भाग्य में सेवा करना पड़ा था क्योंकि वे ब्रह्मा के पैर से पैदा हुए थे। शूद्र शोषण की दो पाटों के बीच पिसने लगा। 'शूद्रों पर उच्च वर्णों के सामूहिक नियन्त्रण के साथ राज्य सत्ता का नियन्त्रण भी था। वर्णगत विशेषाधिकार और अधिकारहीनता सामन्ती दण्ड विधान का आधार था।[64] शूद्रों को आर्थिक दृष्टि से भरपूर चूसा गया। मनु ने शूद्रों के लिए सबसे अधिक ब्याज की दर निर्धारित की। उन्होंने दो फीसदी ब्राह्मणों, तीन फीसदी क्षत्रियों, चार फीसदी वैश्यों और पाँच फीसदी शूद्रों के लिए दर निर्धारित की।

शोषणमूलक सामन्ती संरचना को बरकरार रखने के लिए वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति ब्रह्मा की सदिच्छा बतलायी गयी। वस्तुतः यह ब्राह्मणों की बुद्धि का ही कमाल है। आज के शासकवर्गीय विचारक भी इतनी दूर तक मार नहीं कर सकते।

वर्ण-व्यवस्था में जहाँ शूद्रों को ज्ञान विज्ञान से काटकर रखने की कोशिश की गयी। वेद सिर्फ उच्च वर्णों के लिए था। उसका अध्ययन शूद्रों के लिए दण्डनीय अपराध था। वेदपाठ को सुन लेने पर भी अमानवीय यातनाएँ दी जाती थीं। ऐसे ही एक प्रसंग की चर्चा रांगेय राघव ने अपनी कृति 'महायात्रा गाथा' (भाग 2) में की है। शूद्र वेद को सुनकर चुप चुप याद कर रहा था। 'कुण्डजठर' इस अपराध के दण्डस्वरूप उसके कान में पिघला हुआ सीसा डलवाता है। यह वर्णगत दमन की पराकाष्ठा है। डॉ० रामविलास शर्मा इस सन्दर्भ में भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं। उन्हें शूद्रों को ज्ञान विज्ञान से वंचित रखने की बात सत्य नहीं मालूम होती, "क्योंकि शूद्रों को दासों से भिन्न समाज का ही एक अंग माना गया है और अनेक स्थलों पर उनके ऐसे अधिकार स्वीकार किये गये हैं जो दूसरी नस्ल के दासों को साधारणतः नहीं दिये जाते।"[65] आप्टे ने भी उपनिषदों के सत्यकाम

जाबाल और जानश्रुति की कथा का हवाला देकर कहा है कि इससे मालूम होता है कि दर्शन का अध्ययन उनके लिए वर्जित न था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सोमयज्ञ में शूद्र का स्थान होता है। तैत्तरीय ब्राह्मण रथकार (उसकी गिनती शूद्रों में थी) के लिए यज्ञ के अग्नि स्थापित करने के सूत्र बतलाता है। डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने शूद्रों के स्वतन्त्र अस्तित्व की चर्चा की है। उन्होंने बौद्ध ग्रन्थों का विवरण देकर बतलाया है कि गहपति में वैश्य और शूद्र थे, जो स्वाधीन थे अपनी जमीन पर खेती करते थे, या व्यापार करते थे अपने कुटुम्ब के स्वामी गृहपति थे।[66] राजा का अभिषेक करनेवाला में शूद्र भी रहते थे। डा० जायसवाल प्राचीन निर्वाचन पद्धति के अवशेषों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि शूद्रों को स्पष्ट रूप से समाज का अंग माना जाता था। अन्य वर्णों के साथ राजा शूद्र वर्ण की भी पूजा करता था।[67]

बावजूद इसके वर्ण व्यवस्था के तहत शूद्रों के शोषण से इनकार नहीं किया जा सकता। दिक्कत यह है कि भारतवर्ष से सम्बन्धित जो भी प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें क्षेपकों की भरमार है। समय की आवश्यकता के अनुसार उनमें संशोधन परिवर्द्धन होते रहे। शूद्रों के अत्यधिक शोषण ने विद्रोह का मार्ग प्रशस्त किया और विद्रोह हुआ भी। इसके स्फुट प्रमाण भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में वर्णाश्रम धर्म की पुरानी संरचना को कायम रखना मुश्किल था। उसमें संशोधन परिवर्द्धन हुए। शूद्रों ने राहत की सांस ली। आप्टे, जायसवाल या रामविलासजी—सबों ने इस तथ्य को नजरअन्दाज कर दिया है। डा० जायसवाल ने तो बौद्ध साहित्य के आधार पर अपना निष्कर्ष दिया है। उसमें तो शूद्रों के साथ अपेक्षाकृत मानवीय व्यवहार मिलेगा ही, क्योंकि तब तक शूद्र जागरण के एक दौर से गुजर चुके थे। राहुल ने अपनी इतिहास यात्रा के क्रम में इस पूरे परिदृश्य को दृष्टिपथ में रखा है। उन्होंने वर्णगत विशेषाधिकार और अधिकारहीनता की चर्चा की है। इस सन्दर्भ में उपर्युक्त विद्वानों की अपेक्षा राहुल का दृष्टिकोण ज्यादा सन्तुलित है।

अन्तर्जातीय प्रेम पर रोक : वर्ण व्यवस्था का अभिशाप

बहरहाल, यह वर्ण व्यवस्था प्रेम जैसे शुद्ध हृदय व्यापार के प्रसंग में भी रोड़े अटकाती है। सामन्ती युग के पहले प्रेम नैसर्गिक रूप से फलता फूलता था। जाति धर्म कुछ भी उसकी सीमा को निर्धारित करने के लिए नहीं था। उसकी उच्छल धारा तरंगायित होती थी। सामन्ती युग में वर्ण उसकी सीमा निर्धारित करने लगा। एक वर्ण के भीतर ही उसकी गुंजाइश छोड़ी गयी—वह भी भौतिक अवस्थिति के अनुरूप। राहुल ने अपनी कहानी 'प्रभा' (वोल्गा से गंगा) में वर्ण व्यवस्था के जाल में छटपटाते नैसर्गिक भाव प्रेम का बड़ा ही प्रभावी चित्रण किया है। अश्वघोष और प्रभा के बीच नैसर्गिक प्रेम पनपता है। दुर्भाग्यवश अश्वघोष ब्राह्मण और प्रभा यवन कन्या है। इसलिए प्रभा कहती है

"तुम उच्च कुल के ब्राह्मण हो। यद्यपि मैं ब्राह्मणों के बाद उच्च स्थान रखनेवाले राजपुत्र यवन की कन्या हूँ तो भी कुलीन ब्राह्मण—जो माता पिता की सात पीढ़ियाँ तक की छान बीन किए बिना ब्याह नहीं करता—कैसे मेरे प्रेम का स्वागत करेगा ?"[68] अश्वघोष को

ममतामयी माँ (सुवर्णांगी) भी इस अन्तर्जातीय प्रेम को स्वीकृति दे म हिचकती है। पर सुवर्णांगी रूप, गुण और स्वभाव म आयरी प्रभा को देखकर पिघलती है, जैसा कि प्राय माँयें करती हैं। पर पिता वहाँ मानवाले जीव ठहरे। व कलाम कहते हैं, 'पुत्र ! हमारा शाण्डिल्य का श्रेष्ठ ब्राह्मण-कुल है। हमारी पचासा पीढ़िया स सिर्फ कुलीन ब्राह्मण कन्याएँ ही हमारे घर म आया करती हैं। आज यदि इस सम्बन्ध को तुम स्वीकार करते हो तो हम और हमारी आग आनेवाली सन्तान सदा के लिए जाति भ्रष्ट हो जायेंगे हमारी सारी मान मर्यादा जाती रहेगी।[63] वर्णव्यवस्था के शिकंजे म छटपटाते इस प्रेम का त्रासद अन्त होना है। प्रभा आत्महत्या कर लेती है। जाति-व्यवस्था ने नैसर्गिक भावनाओं को कितना कुण्ठित किया है इसका अन्दाज इस प्रसंग स लगाया जा सकता है।

वर्ण-व्यवस्था और विदेशी आक्रान्ता

इस वर्ण-व्यवस्था ने आपसी वैमनस्य को बढ़ावा दिया और पूरी सामाजिक संरचना को जड़ बना दिया। फलत विदेशी आक्रान्ता बार-बार भारतवर्ष को पदाक्रान्त करते रहे। इस व्यवस्था न विदेशी आक्रान्ताओं के खिलाफ संघर्ष की धार को कुन्द किया। खासकर भारतीय सामन्तवाद के ह्रासकाल म यह स्थिति आत्मघाती गाढ़ तक पहुँच गयी। 'चक्रपाणि'(वोल्गा से गंगा) कहानी म वैद्यराज चक्रपाणि कहते भी हैं 'यह पीढ़ियों का दोष है कुमार, जिसने सिर्फ राजपूतों को ही युद्ध की जिम्मेदारी दे रखी है। द्रोण और कृप जैसे ब्राह्मण महाभारत म लड़े थे, किन्तु पीछे सिर्फ एक जाति रा ।"[4] वैद्यराज चक्रपाणि के इस कथन से आत्मघाती जाति व्यवस्था की जड़ता का आभास होता है।

सामन्ती युग मे नारी द्वितीय श्रेणी की नागरिकता

सामन्ती युग म नारी की अत्यधिक दुर्गति हुई। पितसत्ता युग मे ही उसकी स्वतन्त्रता अपहृत की गयी, जिसकी चर्चा की जा चुकी है। सामन्ती युग मे पुरुष को धन या प्रभुता के बल पर अन्य नारियों के साथ सम्बन्ध जोड़ने की ही आजादी नही रही, बल्कि वह बहु विवाह करने के लिए स्वतन्त्र हो गया। स्त्री के लिए एकनिष्ठ विवाह प्रथा जो एक बार आरम्भ हुई, वह सारे सामन्तकाल म उसी तरह चली आयी। बहु विवाह का मतलब यह नही था कि सभी या पुरुषों की बड़ी संख्या बहुत सी स्त्रियों से ब्याह करती थी। वस्तुत बहु विवाह मे सम्पत्ति कारण थी। सम्पत्तिशाली शोषक वर्ग के पास ही इस शौक को पूरा करने के लिए साधन मौजूद थे।

वस्तुत सामन्ती युग मे नारी की नागरिकता द्वितीय श्रेणी की हो गयी। इसका कारण उत्पादन पद्धति म परिवर्तन था। "परिवार का प्रधान पितृसत्ता के स्थापित होने के साथ ही पुरुष होने लगा था और अब तो उसका अधिकार सम्पत्ति का उत्पादक होने के कारण और बढ़ गया था। सम्पत्ति जितना ही पुरुष का अधिकार बढ़ाती जा रही

स्त्री उतनी ही पुरुष के हाथ की जंगम सम्पत्ति भी बनती जा रही थी।"[1] स्त्री के प्रति प्रेम या आदर जो दिखलाया भी जाता था, वह इसलिए नहीं कि वह भी मनुष्य है, बल्कि इसलिए कि वह उसकी भोग-सामग्री है। उपनिषद में कहा भी गया है, 'भार्या की चाह के लिए भार्या प्रिय नहीं होती, बल्कि अपनी चाह के लिए भार्या प्रिया (न व भार्याया कामाय भार्या प्रिया भवति आत्मनस्तु कामाय भार्या प्रिय भवति।)"

सामन्ती युग में नारी का एकनिष्ठ विवाह में संक्रमण उत्पादन पद्धति में परिवर्तन के कारण हुआ। दूसरी ओर यह समझना गलत है कि पुरुष ने बलात उसे इस विवाह प्रथा में जकड़ दिया। वस्तुत एकनिष्ठ विवाह प्रथा में संक्रमण के सन्दर्भ में नारी की भी हामी थी, क्योंकि वह इस प्रथा में अपने को अपेक्षाकृत सुरक्षित समझती थी। एंगेल्स ने लिखा भी है "एकनिष्ठ विवाह में संक्रमण मुख्यत नारी के ही हाथों सम्पन्न हुआ था। जीवन की आर्थिक परिस्थितियों के विकास के फलस्वरूप अर्थात आदिम सामुदायिक व्यवस्था के ध्वंस के साथ साथ तथा आबादी के अधिकाधिक घनी होते जाने के साथ साथ पुरातन परम्परागत यौन-सम्बन्धों का भोलेपन से भरा हुआ आदिम स्वरूप जितना ही नष्ट होता गया, उतना ही ये सम्बन्ध नारियों को अपमानजनक और उत्पीड़क प्रतीत हुए होंगे, और इस व्यवस्था से मुक्ति के रूप में सतीत्व के, एक पुरुष से ही अस्थायी अथवा स्थायी विवाह के अधिकार के लिए उतनी ही उनकी आकांक्षा बढ़ी होगी। पुरुषों की ओर से यह कदम कभी नहीं उठाया जा सकता था—और कुछ नहीं तो केवल इसलिए कि पुरुषों ने आज तक कभी भी वास्तविक यूथ विवाह के आनन्द को व्यवहार में त्यागने की बात सपने में भी नहीं सोची है। स्त्रियों द्वारा युग्म विवाह की प्रथा में संक्रमण सम्पन्न किए जाने के बाद ही पुरुष कड़ाई से एकनिष्ठ विवाह लागू कर सका—पर जाहिर है कि यह बन्धन भी उन्होंने केवल स्त्रियों पर ही लगाया।"

सामन्ती व्यवस्था मे नारी का भोग्या रूप पतन की इन्तहा

सामन्ती युग मे और खासकर उसकी राजतन्त्रात्मक व्यवस्था मे नारी की सबसे अधिक अधोगति हुई। इसलिए सेनापति सिंह कहता है 'वहाँ (राजतन्त्र में—प० भा०) नारीत्व क्रीडा और कामुकता के किले खिलौना है। वहाँ स्वतन्त्र मानव के लिए कोई स्थान नहीं।' राजप्रासादों मे काम क्रीडा के निमित्त रखी गयी नारियों की मजबूरी को जय यौधेय रेखांकित करता है। वह अन्त पुर को सुन्दरियों का कारागार कहता है—"इन कपूर श्वेत सौधों के भीतर कितना धुआँ घुटता रहता है, कितनी मर्म वेदना होती रहती है। इन वन्दिनियों का निकल भागने का कहीं रास्ता नहीं है, जहाँ जाकर वह अपने जीवन और सम्मान की रक्षा कर सकें। राजा और समाज की लम्बी बाँह की पहुँच से निकल भागना उनके लिए असम्भव है इसीलिए बेचारी मजबूर होकर यहाँ पड़ी हैं।"[7]

भारतीय सामन्तवाद के ह्रासकाल मे आकर तो नारी भोग्या के अतिरिक्त कुछ रही ही नहीं। सामन्तों के रनिवासों में तो उसके इस रूप की पराकाष्ठा हो गयी। सामन्त गण उसके कोमल अंगों को पीडित करने में अपने जीवन की चरम सार्थकता समझने लगे।

पेश है उदयन के रनिवास का एक दृश्य "वधूक के जाते ही विलास-कक्ष सुन्दरियो से भर गया। कुछ विलासी के पर्यंक पर बैठ गयी, कुछ नीचे उसके चरणो म, कुछ परस्पर झुकी। उनकी मादक मूर्ति चतुर्दिक दीवारो पर लगे दर्पणो म अनेक आकृतियो मे प्रतिबिम्बित होने लगी। विलासी के नशा मे घूर्णित दीपशिखा सी बल रही थी। मद से उन्मत्त राजय एक एक को लेकर पर्यंक के उत्तरच्छद मे लपेट देता, फिर उसे उलटने लगता। उसकी बलिष्ठ भुजाएँ एक एक को उठा लेती, अपन होठो की ऊँचाई तक। निभृत कक्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक जब वह दौड जाता उसकी ग्रीवा स, कुहनियो से, कमनीय आवृतियो लटकती रहती, उनकी वेणियो की उछाल नागिनो सी बल खाती। कभी विलासी एक के नेत्र बन्द कर एक को चूमता, कभी एक की पीठ के नीचे दबा एक को पार्श्व से, एक को वक्ष से घर्षित करता।"[75] 1200 ई० के आस पास आते-आते रनिवासो की स्थिति एकदम विकृत हो जाती है। राहुल ने पूरी घृणा के साथ रनिवासो के कामुक परिवेश का चित्रण किया है। उन्होने अपनी कहानी 'चक्रपाणि' मे जयचन्द्र के रनिवास के अन्दर होनेवाली काम क्रीडाओ के हद का चित्रित किया है 'राजा का स्थूल शरीर मसनद के सहारे ओठग गया, और उसन किसी रानी का एक बगल म, किसी को दूसरी बगल मे दबाया, किसी की गाद म सिर का रखा और किसी के वक्षस्थल पर भुजाओ को। घाघरा पहन घुघरू बाधे, बिल्वस्तनी, अनुदरा विकट नितम्बा सुन्दरिया नाचने के लिए खडी हुइ। उसन (राजा न) सुन्दरियो का नग्न हो नाचने की आज्ञा दी। नर्तकियो ने सारे वस्त्र और सारे आभूषण उतार दिये। सिर्फ पादकिंकिणी भर रखी। पार्श्व मे बैठी रानियो और तरुणी परिचारिकाओ के साथ आलिंगन चुम्बन और परिहास चलता रहा। बीच-बीच मे नग्न नर्तन होता रहा। जिसका नग्न शरीर महाराज को आकर्षित करता, वह उनके पास आ जाती और फिर दूसरी नग्न हो उसका स्थान ग्रहण करती। शाला की सारी रानियो न अपन-अपने कपडो और आभूषणो को उतार दिया। महाराज का स्वय कचुक उतारते देख तरुणियो ने उनके वस्त्रो और आभूषणो को भी उतारा। उनके मास लटके चिबुक अतिफुल्ल कपोल, गगाजमुनी मूछें, प्रसूता की तरह के लम्बित स्तनो, महाकुम्भ-सा उदर, पृथुल कोमल मास भरपूर उरू तथा पिंडुली, रोमस स्थूल बाहुओ को देखकर साधारण तरुणी भी अवज्ञा किए बिना नही रहती, किन्तु, यहा उनका शरीर प्राण इस बूढे के हाथ था। कोई उनके दन्त रहित ओठो म अपने ओठो को दे रही थी, कोई उनके पार्श्वों से अपन स्तनो का पीडित कर रही थी, कोई उनकी रोमस भुजाओ को अपने कन्धो और कपोलो से लगा रही थी, कामोत्तेजक गीत के साथ नृत्य शुरू हुआ। रानियो और परिचारिकाओ के बीच अपनी उछलती तोद लिए महाराज भी नाचने लगे।'[76]

इन दृश्यो पर अलग से टिप्पणी करने की कोइ जरूरत नही। वस्तुत रनिवासो मे नारी के भोग्या रूप को हद तक पहुचा दिया गया। वहा काम-वासना का नग्न नृत्य होने लगा। इस नग्न नृत्य म साधारण जनता की बहू-बेटियाँ घसीटी जाने लगी—कभी अर्थ व पद का लोभ देकर और नही तो बलात। दोला प्रथा या डोला प्रथा इसी पाशविक सामन्ती प्रवृत्ति के रूप म सामने आयी। इस सन्दर्भ मे बाण (प्रख्यात रचनाकार) का यह

कथन द्रष्टव्य है—' आगे क्या होगा, नहीं जानता, किन्तु इस वक्त देश में सारी तरुणियाँ राजाओं और उनके सामन्तों की सम्पत्ति समझी जाती हैं सामन्त और राजा न इन तरुणियों के स्वीकार के बड़े तरीके निकाले थे। बाद-बाद पति के पास जाने से पहले रात को उन्हें अपनी समझते थे। इस लाग धर्म मर्यादा समझने लगे थे और अपनी बहियाँ, बहुओं तथा बहनों को डोलियों पर बैठाकर अन्तःपुर में एक रात के लिए पहुँचाते थे। डोला न भेजने का मतलब था सर्वनाश। पसन्द आने पर वह रनिवास में रख ली जाती थी—रानी के तौर पर नहीं परिचारिका के तौर पर।"[33] राहुल ने अपनी एक अन्य कहानी सँयद बाबा (कबीला की कथा) में भी इस पाशविक प्रथा (डोला प्रथा) का चित्रण किया है। सयद (सामन्त) यह कायदा बनाता है कि जो भी स्त्री गौने से आये उसे पहले एक रात के लिए कोट में ले जाया जाय। सँयद के रसमस्ट एक नव विवाहित वर वधू से इस फरमान की तामिली के लिए जिद्द करते हैं। अन्ततः स्वत्व की रक्षा के लिए नव वर वधू मरण का आलिंगन करते हैं। इस तरह का प्रसंग 'दीह बाबा' (सतमी के बच्चे) में भी आया है। समय तुर्क शासन का है। यहाँ भी डोला प्रथा से आक्रान्त नव विवाहित वर-वधू का त्रासद अन्त होता है।

सामन्ती शोषण की जटिलता

वस्तुतः सामन्ती युग में शासक वर्ग ने शासितों का विभिन्न रूपों में तथा विभिन्न स्तरों पर शोषण किया। उसने धर्म और जाति की आड़ में शोषण की प्रक्रिया को जटिल और दीर्घायु बनाया, जो कि आज तक वर्तमान है। सामन्ती मूल्य और नैतिकता ने नारी को द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनाया और उसे शोषण की दो पाटों के बीच पिसने के लिए धकेल दिया। नारी एक स्तर पर पुरुष के साथ शासक-वर्ग द्वारा शोषित होती है और दूसरे स्तर पर अपने घर के अन्दर पुरुष से शोषित होती है। सामन्तवाद सामन्तों को किसानों, कर्ज ब्याज और कमियों को दबाकर रखने की छूट देता है। सामन्ती युग में शोषण के ये विभिन्न रूप हैं। शोषण के इन विभिन्न रूपों में पिसती हुई साधारण जनता दरिद्रता की हद तक चली जाती है और राजा सामन्त उनके श्रम पर अय्याशी करता है। सुदास आक्रोश में इस कलई को खोलता है— राजा चोर हैं जन अधिकार के अपहारक हैं इसलिए उनको हर वक्त डर बना रहता है। राजाओं का रनिवास, राजाओं का नाना रूपों रत्न, राजाओं का दास दासियों—राजाओं का सारा भोग—अपना कमाया नहीं होता, यह सब अपहरण से आया है।[34] गुप्तकाल तक आते आते सामन्तों का राजप्रासाद जनता के खून से पल्लवित-पुष्पित होकर आकाश चूमने लगता है। सुपर्ण कहता है— गुप्त राजाओं ने कर उगाहने में अपने पहिले के सारे शासकों को मात कर दिया राजप्रासादों के बनाने पर कभी इतना धन नहीं खर्च किया गया होगा और उनके सजाने में तो और भी हद की गयी। किन्तु [illegible] गावों के गरीब घरों की अवस्था देखा तो उज्जयिनी के उन प्रासादों [illegible] पास के गढ़े गड्ढियों जैसे गाँव में उठी दीवारों और [illegible]

उन्ही प्रासादों के कारण है। नगरों, निगमों (कस्बों) ही नहीं गावों में भी चतुर शिल्पी नाना भाँति की वस्तुएँ बनाते। राजप्रासाद की कलापूर्ण वस्तुओं के तैयार करनेवाले हाथ इन्ही हाथों के सगे सम्बन्धी हैं, किन्तु जब मैं उनके शरीरों, उनके घरों को देखता हूँ तो पता लगता कि उनके हाथ के निर्मित सारे पदार्थ उनके लिए सिर्फ सपने की माया हैं।"[80]

यह तस्वीर भारत के गुप्तकाल की है, जिसे 'हिन्दू व्याकुल इतिहासकारों' ने स्वर्ण-युग कहा है। राजे महाराजे प्रजा को दोनों हाथों से लूटते हैं, लेकिन आपस में वर्गीय सहानुभूति और सदाचार बनाये रखते हैं। उन्होंने आपस में अवश्य युद्ध किये, लेकिन पराजित को विपन्नावस्था में नहीं छोड़ दिया। उसके सुख भोग का ख्याल अवश्य रखा। जब यौधेय इस विडम्बनापूर्ण स्थिति को रेखांकित करते हुए कहता है 'यद्यपि सौ दो सौ बरस से ज्यादा शायद ही कोई परम भट्टारक या महाराजाधिराज के पद को शोभित करता है तथापि उस वंश के पतन का यह मतलब नहीं कि वंशजों को दूसरे ही दिन भीख माँगने के लिए मजबूर होना पड़ता है। क्रूर से क्रूर युद्ध का सामना करने के बाद भी पराजित शत्रु को विजेता भिखमंगे की अवस्था तक पहुँचाना नहीं चाहता था। बहुत अधिक होता है तो उस वंश को अपना सामन्त बना सम्मान में कुछ कम, किन्तु भोग में अक्षुण्ण रहने दिया जाता है। यह क्यों? यदि किसी गाँव की साधारण जनता या किसान किसी राजा से लड़ने की गुस्ताखी करे, तो गाँव का गाँव जला दिया जाय बच्चे बूढ़ों तक के ऊपर भी शायद ही दया दिखायी जाय, जो प्राण लेकर भाग निकलें, उन्हें दर दर मारे फिरना पड़े। लेकिन राजाओं के साथ राजाओं का व्यवहार ऐसा नहीं होता। शायद वह जानते हैं कि राजवंश चाहे शत्रु-पक्ष का हो चाहे मित्र पक्ष का, उसके सुख-समृद्धि की रक्षा करना हर एक राजा का कर्तव्य है, क्योंकि आज जो एक पर बीती है, वही कल अपने पर बीत सकती है।"[81] यह है सामन्ती युग की शासन-वर्गीय सहानुभूति।

सामन्तवाद का प्रतिवाद (ऐण्टी थीसिस)

सामन्ती युग में शोषण के विभिन्न रूपों के खिलाफ संघर्ष भी हुआ। सामन्तवाद विरोधी संघर्ष भौतिक और बौद्धिक दोनों धरातलों पर चला। धनी-दरिद्र, दास स्वामी, शासक-शासित ये वर्ग अलग-अलग थे, इनके स्वार्थ अलग-अलग थे, इसलिए इनमें संघर्ष होना जरूरी था यद्यपि वह संघर्ष सदा उग्र रूप धारण किये नहीं होता था, क्योंकि वैयक्तिक सम्पत्ति ने दरिद्रों, शासितों और शोषितों में भी तारतम्य पैदा कर उन्हें अपने सम्मिलित शत्रु से मुकाबिला करने के योग्य नहीं रहने दिया था। दास के प्रति तो दूसरों की सहानुभूति ही नहीं थी, क्योंकि वह परायी—अधिकांशतः शत्रु जाति के आदमी होते थे। यद्यपि सभी शोषित, शासित, दरिद्र एक राय होकर विरोधी वर्ग से मुकाबिला नहीं करते थे, किन्तु जुल्म की सीमा पार कर जाने पर वह अलग-अलग युद्ध जरूर छेड़ते थे और राज्य शक्ति की ओर से उन्हें इस अपराध के लिए कड़े दण्ड भी दिये जाते थे। सारे वर्गों की सीमा उस समय सीधी नहीं, बहुत ही टेढ़ी थी, जिसके कारण सारी जनता फिर शोषक और शोषित इन्हीं दो वर्गों में होकर नहीं लड़ सकती थी। इसलिए अपने श्रम से यद्यपि

शोषित वर्ग समाज को समृद्ध बनाता जा रहा था, किन्तु उनकी अपनी दशा अधिक बिगड़ती तथा संख्या अधिक बढ़ती ही जाती थी।

सामन्ती शोषण के विरोध में प्रखर स्वर 'मधुर स्वप्न' में सुनायी पड़ता है। इस उपन्यास की कथा भूमि ईरान है। इसमें राहुल ने बड़े ही प्रभावी ढंग से सामन्ती आतंक का चित्रण किया है। इस सामन्ती आतंक के माहौल में भी एक पात्र बड़ी सच्चाई कह जाता है "हम मरना नहीं चाहते, जीने के लिए हम रोटियाँ चाहिए और रोटियाँ इन कुर्सीवालों की तलवारों में बन्द हैं। यदि जीना चाहते हो तो जीने का रास्ता बतलाओ नहीं तो हम मृत्यु के लिए तैयार हैं।"[8] 'मधुर स्वप्न' का सच्चा चरित्र मजदक (अन्दजगर) ऐसे ही पीड़ित और सताये गये लोगों का प्रवक्ता है। उसके समर्थकों की संख्या विशाल है। मजदक का प्रमुख सूत्र वाक्य है "धन में समानता लाये बिना मनुष्य मनुष्य में भ्रातृत्व भाव विकसित नहीं हो सकता। दुनिया के दुःखों को दूर करने के लिए मनुष्य मात्र में समता भोगों की समता कामों की समता स्थापित करना ही एक मार्ग है। विषमता में मुट्ठी भर लोग ही सुखी रह सकते हैं और मुट्ठी भर भी निश्चिन्त जीवन नहीं बिता सकते।"[43] मजदक एक आशावान सामन्तवाद विरोधी विचारक है। तभी तो कहता है, 'आज हम प्रयत्न कर रहे हैं, हो सकता है कि हम सफल न हो पायें। यह भी हो सकता है कि आगे आनेवाले मधुर स्वप्नदर्शियों को हमारे तजर्बे का कोई परिचय न हो, तो भी जो सत्य है वह भूल जाने पर भी प्रकट होगा। हमारी रखी नींव के भी लुप्त हो जाने पर नये हाथ और मस्तिष्क फिर इस काम में लगेंगे और वह तब तक विश्राम न लेंगे, जब तक भव्य प्रासाद नहीं तैयार हो जायेगा।'[81]

शासक वर्ग इस क्रान्तिकारी विचार के पुरस्कार स्वरूप अन्दजगर (मजदक) और उसके समर्थकों को क्रूर यातनाएँ देता है। उनका अपराध बस यही है कि वे पृथ्वी को एक नये स्वर्ग के रूप में परिणत करने का स्वप्न देखते हैं। मजदक के इस 'मधुर स्वप्न' और उसकी विचार धारा के प्रचार प्रसार को रोकने के लिए निरंकुश शासनतन्त्र दमन का रास्ता अख्तियार करता है और मजदक दर्शन की पुस्तकें तक जला दी जाती हैं। लेकिन मजदक मरते समय भी शासक वर्ग को चुनौती देता है, "यह शरीर तुम्हारे हाथ में है खुसरो, चाहे इस पर थूको या इन्हीं की तरह इसे भी गाड़कर वृक्ष बनाओ परन्तु सत्य की आवाज को सुनना होगा।"[85]

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि धर्म सामन्ती युग की उपज है और शासक वर्ग ने अपने शोषण को बरकरार रखने के लिए धोखे की टट्टी के रूप में उसका इस्तेमाल किया। गरीबी अमीरी, राजा रंक ब्राह्मण शूद्र के भेद को पूर्वजन्म की कमाई कहा गया। राजा को विष्णु का अंश बतलाया गया। स्वर्ग नरक की कल्पना की गयी। समय समय पर भौतिकवादी चिन्तकों ने इन अवधारणाओं का विरोध किया। लेकिन शासक वर्ग ने अपने वर्ग हित के स्वार्थ इस तरह के विचारों को पनपने न दिया। वे ही विचार फल सके जिसमें किसी न किसी रूप में आध्यात्मिकता की छौंक थी। बहरहाल, भौतिकवादी चिंतकों में अजित केस कम्बल का नाम आता है। "अजित केस कम्बल बिल्कुल जड़वादी था, सिवाय भौतिक पदार्थों के वह किसी आत्मा, ईश्वर भक्ति, नित्य तत्व, या स्वर्ग-नर्क

पुनर्जन्म को नही मानता था, तो भी वह स्वय गृह त्यागी ब्रह्मचारी था। जिन सामन्तो का उस वक्त शासन था, उनकी सहानुभूति का पात्र बनने ही नही बल्कि उनके कोप मे बचने के लिए यह जरूरी था, कि अपने जडवाद को धर्म का रूप दिया जाय।"[86] ऐसे अनित्यवाद से लोक-मर्यादा, गरीब अमीर, दास स्वामी के भेद को ठोकर लग सकती थी और एक हद तक लगी भी, इसीलिए तो अजित का जडवाद सामन्त और व्यापारी वर्ग मे सर्वप्रिय नही हो सका।

प्राचीन भारत की भौतिकवादी चिन्तन परम्परा की दूसरी महत्वपूर्ण कडी गौतम बुद्ध हैं। गौतम ने जडवादियो की भाति कहा—आत्मा, ईश्वर आदि कोई नित्य वस्तु विश्व मे नही है, सभी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं और शीघ्र ही विलीन हो जाती हैं। ससार वस्तुओ का समूह नही बल्कि घटनाओ का प्रवाह है। गौतम एक बात म अजित से भिन्न हैं कि किसी नित्य आत्मा के न होने पर भी चेतन प्रवाह स्वर्ग या नर्क आदि लोगो के भीतर एक शरीर से दूसरे शरीर— एक शरीर प्रवाह से दूसरे शरीर-प्रवाह मे बदलता रहता है। इस विचार मे पुनर्जन्म की पूरी गुजाइश हो जाती है। गौतम की यह सबसे बडी सीमा है। और, इसी सीमा के कारण गौतम को उच्च वर्ग का व्यापक समर्थन मिला, क्योकि इससे उनके वर्गीय हित की गुजाइश निकल जाती है। जन्म मरण कर्म-कुकर्म का गडबड झाला खडा किया जा सकता है। अजित की तरह गौतम इसे नपसद नही करते। राहुल ने ठीक ही कहा है कि यदि गौतम कोरे जडवाद का प्रचार करते तो निश्चय ही श्रावस्ती साकेत, कौशाम्बी राजगह, भद्रिका के श्रेष्ठिराज न अपनी थैलियाँ खोलते, और न ब्राह्मण क्षत्रिय सामन्त तथा राजा उनके चरणो म सिर नवाने के लिए होड लगाते।[87]

कालान्तर मे तो यह विचारधारा शासक वर्ग की छाव मे चली गयी, राजाश्रयी हो गयी। बौद्ध दर्शन जैसी अपने समय और समाज की क्रान्तिकारी विचारधारा का यह त्रासद अन्त है। इस सन्दर्भ मे आर्य असग की व्यग्यात्मक टिप्पणी द्रष्टव्य है, जिनका (राजाओ का—च० भा०) सारा धन, सारा वैभव बहुजन (साधारण जनता) का दुखी दरिद्र बनाकर प्राप्त होता है, वह तथागत के बहुजन हिताय धर्म का क्या उपकार करेंगे? अपने प्रासादो की तरह मणिमुक्ता से जगमग करते एकाध चैत्य एकाध प्रतिभा गृह, एकाध विहार वह जरूर बनवा सकते हैं। कनिष्क के वश ने तीन सौ साल मे एक एक करके बहुत से सुन्दर-सुन्दर विहार बनवा दिये हैं। शायद पुरुषपुर के राजप्रासादो म उतना हीरा मोती नही है, जितना कि तुम इन विहारो म देख रहे हो। लेकिन तथागत का धर्म क्या हीरा मोती के लिए था?"[88] राजाश्रय ग्रहण करने से बौद्धधर्म का जो हश्र भारतवर्ष म हुआ वही कमोबेश दूसरे देशो मे भी हुआ। अनुराधपुर (श्रीलका) म भी बौद्धधर्म अपने बहुजनहिताय के पथ से स्खलित हुआ। इस धर्म के वहाँ के जन जीवन मे व्यापक रूप से प्रतिष्ठित होने के बावजूद जीवन व्यवहार सामन्ती ही रहा। जय यौधेय के शब्दो मे सुनिए, 'यहाँ के नर-नारियो मे बौद्ध धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि प्रभुवर्ग को साधारण जनता की भलाई का विशेष ध्यान है। राजा और राज-परिवार का विलास-व्यसन वसा ही है, जैसा भारत म। इसीलिए बहुत से लोग गरीब हैं।

रोहणगिरि का पद्मराग, पुष्पराग आदि मणियों की खान कहा जाता है, लेकिन वह सेठों और सामंतों के कानों को ही सुशोभित करती है।"[89]

ईसा के आस पास तक आते आते तो बौद्ध धर्म के मूल्यों में भयानक ह्रास होता है। यह अपनी इयत्ता खो बैठता है। रांगेय राघव इस ह्रास को विस्तार से रेखांकित करते हैं—"संघ जीवन में रहनेवाले बौद्धों का जनता से बहुत कम सम्पर्क था। जनता में वे न गरीबी मिटा सके न स्त्री को ऊँचा स्थान दे सके थे, न गृहस्थ धर्म की व्यापक अनुभूति जानते थे न योद्धा का आदर्श देकर आत्मरक्षा का भाव देते थे, न ऋणी को उबार सके थे। वे आत्मरक्षा में रत जनता को अहिंसा का उपदेश देते थे, और विजेता आक्रमणकारी को सद्धम्म में दीक्षित करते थे। यह उनकी राजनीति का दिवालियापन था। संघ वास्तव में जनता पर भार था क्योंकि यहाँ भिक्षु कुछ काम धाम तो करते नहीं थे। दान पर रहते थे। गृहस्थों की समस्याएँ भी नहीं सुलझा पाते थे। तिस पर तुर्रा यह था कि अन्त में वाममार्ग ने इनका संयम भी बहा दिया था। ऐसे समय में इनका समाज का लाभ ही क्या था?"[90]

इन आलोचनाओं के बावजूद बौद्ध धर्म की एतिहासिक महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता। कम-से-कम गौतम बुद्ध के जीवन काल और उसके बाद की दो-तीन शताब्दियों तक सामंती मूल्य व नैतिकता के वाहक ब्राह्मणवादी विचारधारा से इसने सार्थक संघर्ष किया। दुर्भाग्यवश रांगेय राघव ने उसकी इस महत्ता को नजरअंदाज कर दिया है। वे पूर्वाग्रही होकर बौद्धधर्म पर विचार करते हैं। इसके कारण कहीं कहीं अनैतिहासिक और अतार्किक भी हो गये हैं। उन्होंने लिखा है—'बुद्ध का धर्म दास प्रथा का अधिक रक्षक था क्योंकि आत्मा की सत्ता स्वीकार न करने से पुनर्जन्म का कोई व्यक्तिगत भय शेष नहीं रह जाता था।"[91] गौतम बुद्ध का दासों के बारे में क्या दृष्टिकोण था, इसके लिए तो उनकी सूक्तियाँ ही पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करती हैं जो कि अभी भी सहज उपलब्ध हैं। वस्तुतः बौद्ध दर्शन अपने मूलरूप में ऐसा विचार जगत है जहाँ दास अदास हो जाता है। बहरहाल रांगेय राघव ने जिस आधार पर बौद्ध धर्म को दास प्रथा का पोषक बताया है, वह तो और भी हास्यास्पद और भ्रामक है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि बौद्ध-दर्शन में पुनर्जन्म की गुंजाइश है। ऐसी स्थिति में रांगेय राघव का यह कहना कहाँ तक संगत है कि बौद्ध धर्म में पुनर्जन्म का कोई व्यक्तिगत भय शेष नहीं रह जाता? दूसरे ब्राह्मणवादी विचारधारा तो आत्मा की सत्ता और पुनर्जन्म को स्वीकार करती है, फिर उसके वर्चस्व काल में दास प्रथा क्यों रही? तब पुनर्जन्म के भय से दास प्रथा क्यों नहीं समाप्त हो गयी? दरअसल रांगेय राघव का बिसमिल्लाह ही गलत है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि पुनर्जन्म की धारणा शासकवर्गीय विचारधारा है। उसकी आड़ में शासक वर्ग अपने भोग एय्याश को निर्विघ्न रखना चाहते हैं। गरीबी-अमीरी, राजा रंक के भेद को पूर्वजन्म की कमाई बताते हैं। दास होना पूर्वजन्म के कुकर्म का फल है। अब अगर दास जन्म में सुकर्म करेगा, तो वह अगले जन्म में अदास हो जायगा। और इस जन्म में सुकर्म है अपने स्वामी की अहर्निश सेवा। ब्राह्मणों की इस चालाकी पर जरा गौर तो

...। शासक वर्ग अपने पूर्वजन्म के सुकर्म का फल भोग रहा है और दास का अगले

जन्म के लिए युक्म करने यानि स्वामी की सेवा करने की दलील दी जा रही है। इस लोक को छोड़कर दूसरे मायावी लोक पर ध्यान टिकाने से इसी तरह का गड़बड़झाला खड़ा होता है। दरअसल, कुछ आलोचना सार्थक और सजनात्मक होती है और कुछ खिसियानी बिल्ली की तरह सिर्फ आलोचना के लिए आलोचना। रांगेय राघव की स्थिति दूसरे तरह की है। और, ऐसे लोग अपने ही खाने में चित गिर जाते हैं। वस्तुतः रांगेय राघव की आलोचना के मूल में ब्राह्मणवादी आग्रह है। इसके विपरीत राहुल का दृष्टिकोण सन्तुलित है। उन्होंने बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक महत्ता को रेखांकित करने के साथ ही उसकी पतनोन्मुख प्रवृत्तियों की भरपूर मुखालफत भी की है, उसके विडम्बनापूर्ण विकास पर भी दृष्टिपात किया है। भारत में यह धर्म दर्शन एक लम्बे अर्से तक सामन्ती मूल्य और नैतिकता को चुनौती देता रहा। इसलिए भगवतशरण उपाध्याय को वह मानवता का प्रथम कोलाहल लगता है, " यह वर्ण-व्यवस्था—क्या यह भी भ्रान्ति मूलक नहीं, निर्माताओं के अधिकार की शिलाभित्ति नहीं? इसके प्रति भ्रान्ति क्या नवीन नहीं है? इस अर्थ में तथागत के प्रश्न क्या जगी मानवता के प्राथमिक कोलाहल के नहीं है?"[82]

बहरहाल राहुल की द्वन्द्वात्मक इतिहास दृष्टि का ही परिणाम है कि उन्होंने सामन्ती युग की शासक-वर्गीय और शासक वर्ग विरोधी विचार-धाराओं का सम्यक विश्लेषण किया है। सामन्ती युग की शासकवर्ग विरोधी विचार धाराओं की अपनी सीमाएँ भी रही हैं इसीलिए प्रायः उनका भ्रामक अन्त हुआ या उनमें विकृति आयी। शासक वर्ग तो उनकी सीमाएँ निर्धारित करता ही था, जिसकी पहले ही चर्चा की जा चुकी है। राहुल ने अजित केश कम्बल की चर्चा के प्रसंग में कहा है कि सामन्तवर्ग के कोप से बचने के लिए सामन्तवाद विरोधी जड़वादी या भौतिकवादी विचारधाराओं को धर्म का रूप देना जरूरी था। जड़वादी विचारकों की यही मजबूरी उनकी सीमा का कारण है।

सामन्तवाद का ह्रास

भारतीय सामन्तवाद का विकास प्रायः बुद्धकाल से प्रारम्भ हुआ। हर्षवर्धन तक उसका विकास होता रहा। इसका सम्यक प्रतिफलन वैचारिक व सांस्कृतिक जगत में भी हुआ। इस काल में विचार जगत में एक हद तक व्यापकता थी, आत्मसात कर लेने की शक्ति थी। इसलिए विभिन्न विचारधाराओं का आपस में टकराते एक-दूसरे से सम्पर्कित होते हुए विकास भी हुआ। हर्षवर्धन के बाद भारतीय सामन्तवाद में गतिरोध आया। देश की राजनीतिक एकता खण्डित हो गयी। अनेक राजवंश उठ खड़े हुए। सामन्तों का बोझ प्रजा पर बहुत बढ़ गया। कर और बेगार में बेतरह वृद्धि हुई। रांगेय राघव ने ठीक ही लिखा है कि इनके समय की आर्थिक व्यवस्था में प्रजा-पालन कम होता गया और सामन्तों की स्वेच्छाचारिता बढ़ती गयी।[83] यद्यपि कुछ सीमा तक आर्यावर्त की एकता का कभी-कभी इन्हें आभास होता था, परन्तु अधिकांशतः अपने खण्ड राज्यों में ही ये लोग सीमित रहते थे। राष्ट्र भावना नहीं के बराबर थी। बहरहाल एक मुख्य बात जो इस समय हुई, वह थी निम्न जातियों की बगावत जिससे बचने को सामन्तीय व्यवस्था में ब्राह्मणों ने

जाति-प्रथा की सारी लचक खत्म करके कठोर बंधन बांध दिये थे। बंगाल में तो कुलीनता का आंदोलन उच्च वर्गों ने बहुत ही जागरूक और स्पष्ट रीति से चलाया था और वह अन्ततोगत्वा मुसलमानों के आक्रमण के समय बंगाल के बौद्धों, शैवों और शूद्रों को मुस्लिम धर्म में शीघ्रता से पहुँचाने का कारण भी हुआ।

ह्रासकालीन सामन्ती युग में योग के चमत्कार और वामाचार की घोर उन्नति दिखायी पड़ी। 'भारतीय सामन्तीय व्यवस्था योग-मार्ग और शाक्तों के वामाचार के एकान्तिक पंक में डूब गयी थी। यह चमत्कारों के प्रति आकर्षण भावना उत्पादन व्यवस्था की एकरसता के कारण गतिरोध में जन्म ले सकी थी।'[91] इस वामाचार पर प्रभु-वर्ग से लेकर साधारण जनता तक को अकाट्य विश्वास था। यहां तक कि इस्लाम की तलवार का मुकाबिला भी इसी के भरोसे छोड़ दिया गया। तभी तो तुर्क आक्रमण से बेफिक्र कराते हुए शुभाकर भिक्षु कन्नौजाधिपति जयचन्द्र से कहता है, "महाराज, चिन्ता न करें। सिद्ध गुरु (मित्रपाद—च० भा०) ने ऐसी साधना शुरू की है, जिससे कि तुर्क-सेना हवा में सूखे पत्ते की भाँति उड़ जायगी। सिद्ध गुरु ने हिमालय के उस पार सारे देश से वायुकुम्भ के सम्पुट [illegible]। उन्होंने इसीलिए मुझे आपके पास भेजा है। कहा है तारिणी (तारादेवी) महाराज की सहायता करेंगी। तुर्कों की चिन्ता न करें।'[93] जयचन्द्र भावविह्वल और गद्गद है— 'गुरु—मित्रपाद (जगन्मित्रानन्द) की मुझ पर कितनी कृपा है? जब मुझ पर, मेरे परिवार पर कोई संकट आया गुरु ने अपने दिव्य बल से बचाया। तारामाई पर मुझे पूरा भरोसा है। तारिणी? आपच्छरणम्! माँ म्लेच्छों से रक्षा कर।'[94] इतिहास साक्षी है कि तुर्कों की बर्बर तलवारों के सामने तारादेवी की एक न चली। भारत को उसका कड़वा और लोमहर्षक तजुर्बा करना ही पड़ा।

ह्रास के इस दौर में अपने जमाने का क्रान्तिकारी दर्शन—बौद्ध-दर्शन विकृति को [illegible]तन पहुँच गया। गौतम बुद्ध ने जो प्रस्थापनाएँ रखी वे गौण हो गयी और उनकी आड़ में गुप्त भोग व व्यभिचार को प्रोत्साहन मिला। अपने मनानुकूल निष्कर्ष निकाले गये। जयचन्द्र के राज्य-मन्त्री श्रीहर्ष नागार्जुन के सिद्धान्तों का भाष्य करते हुए कहते हैं, "पाप पुण्य आचार-व्यवहार सभी कल्पनाएँ हैं। जगत् की सत्ता-असत्ता कुछ भी नहीं की जा सकती। स्वर्ग-नरक और बन्धन-मोक्ष कल्पना के भ्रम हैं। पूजा उपासना पामरों की वंचना के लिए हैं। देव-देवी की साकार कल्पना मिथ्या है।'[95]

सामन्तवाद के इस गतिहीन युग में शासक वर्ग ह्रास की ऊंचाइयों को छूता है। इसका एक नमूना तो अभी-अभी ही पेश किया गया कि जयचन्द्र आक्रान्ताओं की समस्या को तारादेवी के मत्थे छोड़ देता है। जयचन्द्र की मुख्य चिन्ता है कि नगर-सुन्दरियाँ भी उसके काम को नहीं जगा पाती।[96] इस सन्दर्भ में वाजीकरण रस का निर्माण हो ही चुका है। ह्रास की यह पराकाष्ठा है। शासक वर्ग इसी तरह अपनी काम भावना को उद्दीप्त करने की नयी-नयी तरकीबें खोजता रहता है और उधर पूरा देश आक्रान्ताओं से रौंद दिया जाता है। [illegible] दृष्टिगत होती रही। सम्पूर्ण देश इन आक्रान्ताओं का चारा [illegible] गया। [illegible] गया। [illegible] और [illegible] (गुजरात) तक के भाग [illegible] मुस्लिम हो

चुका था। इस नये खतरे से बचने के लिए नये तरीके की जरूरत थी, किन्तु हिन्दू अपने पुराने ढर्रे को छोड़ने के लिए तैयार न थे। सारे देश के लड़ने के लिए तैयार होने की जगह वही मुट्ठी भर राजपूत (पुरान क्षत्रिय तथा शादी-ब्याह करके इनमें शामिल हो जानेवाले शक, यवन, गुजर आदि) भारत के सैनिक थे, जिन्हें भीतरी दुश्मनों से ही फुरसत न थी और राजवंशों की नयी-पुरानी शत्रुता के कारण आखिर तक भी वह आपस में मिलने के लिए तैयार न थे।"[99] दूसरी ओर मुस्लिम आक्रमण से गाँव-के-गाँव, जनपद-के-जनपद तबाह हो गये। उनकी तलवारों के निमम प्रहारों से साधारण जनता आर्तनाद कर उठी।

नये अध्याय की शुरुआत

अलाउद्दीन तक आते-आते कुछ राहत की साँस मिलती है। अब तक लुटेरे की माफिक मुस्लिम आक्रान्ता आये और भारत को लूटकर चले गये। अलाउद्दीन पहली बार अपने को यहाँ की माटी से जोड़ने की जरूरत समझता है। वह कहता है, "मैं अपने विचारों को साफ रख देना चाहता हूँ। सुल्तान महमूद जैसा एक विदेशी सुल्तान अपनी जबरदस्त विदेशी सेना के साथ शान्तिपूर्ण शहरों की लूट-खूट में माल को ऊँटों, खच्चरों पर लाद भले ही ले जा सकता था, लेकिन वही बाल-बच्चों के साथ दिल्ली में बस जानेवाले मेरे जैसे आदमी के बूते की नहीं है। हमारी हुकूमत कायम है हिन्दू प्रजा की लगाम पर, हिन्दू सिपाहियों और सेनानायकों पर—मेरा सेनापति मलिक हिन्दू है चित्तौड़ का राजा, मेरे लिए पाँच हजार सेना का सेनानायक है।"[100]

अलाउद्दीन के शासन-काल में भूमि सम्बन्ध में भी परिवर्तन होता है। सामन्तों और उनके अमलों फैलों की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगती है। किसानों को थोड़ी तरजीह मिलती है। अलाउद्दीन स्पष्टतः कहता है, 'उन्हीं को किसानों का खून चूसकर वह (सामन्त और उनके अमला-फले—च० भा०) घोड़े पर सवार हो सकता है, रेशमी लिबास पहिन सकता है और ईरानी कमान से तीर चला सकता है। इस तरह की खून चुसाई बन्द करा हम किसानों की हालत बेहतर बनायेंगे। उन्हें हुकूमत का वफादार बनायेंगे। क्या एक के नाराज करने से सौ को खुश करना और खुशहाल देखना अच्छा नहीं है।"[101] राहुल ने 'बाबा नूरदीन' (वोल्गा से गंगा) कहानी के उत्तरार्द्ध में अलाउद्दीन के लोकहितकारी कार्य और तदनुरूप उसकी लोकप्रियता का मंगल चौधरी और छेदीराम की बातचीत के द्वारा प्रकट करवाया है।

लेकिन अलाउद्दीन के इस बेहतरी के इरादे के पीछे इस्लामीकरण की मंशा भी काम करती है। मुल्ला साहब का कहना है, '—गाँव के आमिलों की जगह गाँव के सारे किसानों की बेहतरी का ख्याल करना हुकूमत के लिए ज्यादा लाभकर साबित होगा। हमने गाँवों-कस्बों के कपड़े के कारीगरों की ओर थोड़ी निगाह की, उनकी पंचायतों को मजबूत करने में सहायता दी जिससे वे बनिये महाजनों की लूट से बचें। बेगार में हरेक अमला उनसे कपड़े बनवाता, रूई धुनवाता था इसे रोका, और आज इसका यह परिणाम देख रहे हैं कि रूई धुननेवाले, कपड़ा बुनने-सीनेवाले मुश्किल से कोई होंगे, जो इस्लाम की

साया में न आ गये हों।"[109]

विकास की दृष्टि से अलाउद्दीन के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण कड़ी मुगलिया सल्तनत है। इसमें भारतवर्ष की सामन्ती जड़ता ध्वस्त होती है। 'ग्राम धर्म' और 'कलि-वर्ज्य' जैसी दकियानूसी सामन्ती मान्यताएँ ध्वस्त होती हैं। फलतः गाँव की जड़ता टूटती है और उसका जुड़ाव शहर से होता है। एक नया गतिशीलता शुरू होती है। उत्पादन व परम्परागत सम्बन्ध टूटते हैं और नये सम्बन्ध कायम होते हैं। 'हुण्डी प्रथा' इसका प्रमाण है। दस्तकारी उत्पादन का स्थान कारखाना उत्पादन क्रमशः लेता नजर आता है। यह पूँजीवादी विकास का पहला चरण है जिसे सौदागरी पूँजीवाद कहा गया है। डा० इरफान हबीब और डा० रामविलास शर्मा ने भी यही मत व्यक्त किया है। डा० शर्मा ने इसी विकास प्रक्रिया को मद्देनजर रखते हुए विद्यापति को सामन्तवाद का अन्तिम और पूँजीवाद का पहला कवि कहा है। जो लोग अभी भी अँगरेजी राज के आगमन के साथ पूँजीवादी विकास की शुरुआत मानने की जिद करते हैं उन्हें इस तथ्य पर गौर करना चाहिए।

आर्थिक संरचना के इस आधारभूत परिवर्तन का साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक असर पड़ा। निम्न जाति के लोगों में जागरण आया, जिसकी अभिव्यक्ति निर्गुणियों के आन्दोलन के रूप में हुई। उन्होंने उच्च जाति और वर्ग के लोगों के आभिजात्यपन को चुनौती दी। इस निम्न जाति के लोगों में मुख्यतः दस्तकारी के पेशे से सम्बन्धित थे। प्रश्न है कि इसके पहले निम्न जाति के लोगों में ऐसा जागरण क्यों नहीं आया? दरअसल ये निम्न जातियाँ 'ग्राम धर्म' और 'कलि वर्ज्य' के नियमों में आबद्ध थीं। वे ग्राम देवता को नाराज कर गाँव नहीं छोड़ सकते थे। उनकी नियति में सामन्त और उनके अमले-फैले की सेवा करना बदा था। नये उत्पादन सम्बन्ध कायम होने के कारण इनका सम्पर्क शहर से हुआ। सामन्ती शिकंजे से मुक्त हुए। नयी चेतना आयी। फलतः उन्होंने उच्च वर्ग और वर्ण को चुनौती दी। उनके समकक्ष प्रतिष्ठित होने का दावा किया।

राहुल ने इस आर्थिक संरचनागत परिवर्तन के सांस्कृतिक प्रभाव को 'सुरैया' (वोल्गा से गंगा) शीर्षक कहानी में रेखांकित किया है। मुगलिया सल्तनत की इस विकास प्रक्रिया में अकबर की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उसने सामन्ती मूल्य व नैतिकता के विरोध और नये पूँजीवादी मूल्यों को प्रतिष्ठित करने में अपनी हामी भरी। 'सुरैया' कहानी में राहुल ने दो भिन्न सम्प्रदाय के कमल और सुरैया के प्रेम का प्रतिफलन दिखाया है। भिन्न सम्प्रदायों के प्रेम का यह प्रतिफलन नये पूँजीवादी विकास की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। कमल और सुरैया का प्रेम सामन्तवाद विरोधी है क्योंकि सामन्ती मूल्य और नैतिकता दो भिन्न सम्प्रदायों के बीच प्रेम की इजाजत नहीं देती है।

अँगरेजी राज और पूँजीवादी विकास पर रोक

अँगरेजी राज के आगमन के साथ भारत की पूँजीवादी विकास गति अवरुद्ध होता है। भारतीय पूँजीवाद शैशव काल में ही काल कवलित हो गया। डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि सामन्ती व्यवस्था के ह्रासकाल में व्यापार के प्रसार द्वारा यहाँ भी पूँजीवादी

सम्बन्ध कायम हो रहे थे। अंग्रेज न आते तो अन्य देशो की तरह यहाँ के लोग भी पूजीवादी व्यवस्था की मजिल म प्रवेश करके अपन सामाजिक जीवन का नये सिरे से गठन करते।[103] अंग्रेजो ने यहाँ के विकासशील उद्योग धन्धे का चौपट कर भारत को ब्रिटेन का बाजार बना दिया। विडम्बना यह थी कि यहाँ के कच्चे माल स ब्रिटेन म तयार माल को भारत में बेचा जान लगा। राहुल ने अँगरेजी राज के शोषण की इस जटिल प्रक्रिया का 'मानव समाज' म बडी ही रोचक शैली म विवेचन किया है। इस प्रक्रिया मे अँगरेजो को अनेक स्तरों पर नफा-ही-नफा था। अँगरेजो के आने से पहले तक भारत मे वस्त्र उद्योग का उत्साहवधक विकास था। ढाके का मलमल विश्व बाजार पर छाया हुआ था। अंग्रेजो न बडी बेरहमी से इस उद्योग को चौपट किया। इसम कायरत कारीगरो के अँगूठे तक काट लिए गय। दूसरी ओर यहीं के कपास से ब्रिटेन म तैयार कपडा का यहाँ बेचा गया। 'रेखा भगत' (वोल्गा से गगा) कहानी म मौला कहता भी है— 'खेती-बारी तो इस तरह तबाह हुई और जुलाहो के मुह म भी जाब लगन लगा है, सावरन राउत ! अब कम्पनी बहादुर अपना कपडा बिल्लाइत से लाकर बेच रहा है।'[104] काल मास्स न बडी ही काव्यात्मक शैली म कपडा उद्योग के सन्दभ मे अँगरेजो के शोषण की जटिल प्रक्रिया को रेखाकित करते हुए कहा कि कपास की मातृभूमि म कपास के कपडा की याद ला दी।

वस्तुत अँगरेज पहले भारत म व्यापार करने आये थे, यहाँ का माल अपन यहा बेचकर मुनाफा कमान आय थे। लेकिन अपन यहाँ की औद्योगिक उन्नति के साथ साथ उन्होने भारत के उद्योग-धन्धा का नाश किया। नाश की यह प्रक्रिया करारोपण के सन्दभ म उल्टी गगा बहाकर सम्पन्न की गयी। आयात की भरपूर छूट दी गयी और निर्यात पर निममता स कर लगाये गये। इस तरह इगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति की भूमिका तयार की गयी।

अँगरेजी राज और सामन्तवाद का पुनरुद्धार

अँगरेजो न जहा एक ओर पूजीवादी विकास प्रक्रिया को अवरुद्ध किया वहीं दूसरी ओर अपन सामाजिक आधार के निर्माण के लिए सामन्तवाद को पुनर्जीवित भी किया। उन्होंने यह महसूस किया कि उनकी सख्या काफी कम है और उन्ह एक विशाल आबादी पर अपना आधिपत्य कायम रखना है। ऐसी स्थिति मे अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए एक सामाजिक आधार तयार करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने यहा की परम्परागत भूमि व्यवस्था म आमूल परिवतन कर जमीदारो का एक ऐसा नया वग पैदा किया जो लूट खसोट का एक हिस्सा पाकर अपन निहित स्वार्थों को अँगरेजी राज के बने रहने के साथ जोड ले। इसका प्रमाण स्थायी जमीदारी बन्दोवस्त के बारे मे लाड विलियम बैंटिक का एक वक्तव्य है। लाड विलियम बटिक 1828 से 1835 तक भारत के गवनर जनरल थे। उन्होंने एक भाषण म बडे साफ-साफ शब्दो मे कहा कि यदि जबदस्त जनविद्रोहो या क्रान्ति का मुकाबला करने के लिए सुरक्षा की जरूरत है तो मैं यह कहना चाहूँगा कि कई मामलो में और कई महत्वपूण बातो म असफल होन के बावजूद स्थायी बन्दोबस्त का कम-

से-कम यह एक बहुत बड़ा फायदा है कि उसने धनी भूस्वामियों का एक विशाल समूह खड़ा किया जो तहेदिल से चाहते हैं कि अँगरेजी राज बना रहे और उनका जनता पर पूरा तरह दबदबा कायम है।[10] 'रेखाभगत' कहानी में कोलमैन ने जमींदारी प्रथा के उद्भव के कारणों को रेखांकित करते हुए कहा है— 'उसने (अँगरेजों ने—सं० भा०) यहाँ आकर देखा जब तक किसान खेतों के मालिक रहेंगे तब तक सूखा बाढ़ के कारण, अथवा ज्यादा झड़ी होने के कारण मालगुजारी ठीक से वसूल नहीं हो सकेगी। उसने यह भी सोचा कि सात समुन्दर पार के अँगरेजों को इस मुल्क में दोस्त भी पैदा करना चाहिए और ऐसा दोस्त जिसका स्वार्थ अँगरेजों के साथ से बँधा हो। जमींदार अँगरेजों की सृष्टि है। किसान के विद्रोह से अँगरेजों के राज्य का जिस तरह का खतरा है, उसी तरह जमींदारों को अपनी जमींदारी, अपनी सम्पत्ति और अपनी इज्जत जाने का खतरा है। इसलिए यदि छोटे छोटे किसानों को मालिक न मानकर बड़े बड़े पचीस पचास गावों का एक मालिक जमींदार बना दिया जाय, तो वह हमारी विपत् सपत् दोनों में काम आयेंगे। इस तरह विलायत के इस कसाई जमींदार ने हिन्द के किसानों की गर्दन को रेत दिया।"[106]

अँगरेजी राज के पहले किसान जमीन के मालिक थे लेकिन अंगरेजी राज ने जमींदारी प्रथा लागू कर उनकी मिल्कियत छीन ली। वे महज लगान देकर खेती करने वाले भर रह गये। इस प्रथा में किसानों के शोषण की ऐसी जबरदस्त प्रणाली विकसित हुई जिसकी मिसाल किसी और देश में नहीं मिल सकती। जमींदारी प्रथा के परिणामस्वरूप जो प्रक्रिया सामने आयी उससे न केवल किसानों की गरीबी और कर्ज के बोझ से उनके दब होने का ही पता चला बल्कि वर्गों के बीच बढ़ते हुए भेद भाव और बड़े पैमाने पर किसानों का उनके खेतों से बेदखल किये जाने की स्थिति भी सामने आयी। यह प्रक्रिया जब और आगे बढ़ी तो किसानों का एक बड़ा हिस्सा भूमिहीन मजदूर बन गया। अर्थात खेतिहर सर्वहारा का एक नया वर्ग तैयार हो गया जो खेती पर निर्भर एक तिहाई आबादी से बढ़कर आधी आबादी तक पहुँच गया। साम्राज्यवादी प्रभुत्व और रक्षात्मक कवच के भीतर रहते हुए भारतीय जमींदार वर्ग ने उपर्युक्त प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप किसान दिनों दिन फटेहाल होता चला गया और जमींदार दिनों दिन तुन्दुल। और ब्रिटिश राज तो ऊपर की छाली काट ही रहा था।

राहुल ने अपनी 'रेखाभगत' कहानी में अँगरेजों द्वारा लादी गयी इस 'मानवी' जमींदारी प्रथा के त्रास का चित्रण किया है। रेखाभगत इस परिवर्तित भूमि सम्बन्ध को रेखांकित करते हुए कहता है 'अभी तक तो हम हाकिम की नजर बेगार, अमला फैला का घूस रिश्वत में ही तबाह थे, किन्तु कम से-कम खेत तो हमारा था।"[107] पूर्ववर्ती मालगुजारी प्रणाली से वर्तमान प्रणाली की तुलना करते हुए कहानी का एक दूसरा पात्र भोला पण्डित अरण्य रोदन करता है ' पहिले प्रजा के ऊपर एक राजा था। किसान बस एक राजा को जानता था। वह दूर अपनी राजधानी में रहता था उसे सिर्फ दशांश से मतलब था सो भी जब फसल हुई तब। किन्तु अब फसल हो चाहे न हो जमींदार को अपना हाड़ चाम बेचकर बेटी-बहिन बेचकर मालगुजारी चुकानी होगी। [108] वस्तुतः अँगरेजों के इस नये बन्दोबस्त में किसानों का दुहरा शोषण हुआ। इस दुहरे शोषण में अंग थ— अँगरेजी राज

और जमींदार। दोनों मिलकर किसानों को दोनों हाथों से लूट रहे थे। रेखाभगत कहता है, "सोवरन भाई! दो-दो राज हुए कि नहीं? एक कम्पनी का राज दूसरे रामपुर के मुंशी जी का राज। चक्की के एक पाट में पिसने में कुछ बचने की भी आशा रहती है, भाला पण्डित। लेकिन दो-दो पाट में पड़कर बचना नहीं हो सकता। और इस हम आँखों से देख रहे हैं?"[109] एवं दूसरे—सामन्ती और साम्राज्यवादी शोषण की हिस्सेदारी पर मुंशीजी प्रकाश डालते हैं—'कम्पनी का क्या फिकर है सोवरन राउत? उसने मालगुजारी बाँध दी है, किस्त के दिन दुपहरा जा जमींदार ताड़ा डाल आते हैं। कम्पनी का दाम-दाम चुकता हो जाता है दयालपुर के किसान मर चाहे जियें जमींदार मार-मारकर धुरें उड़ा देगा, यदि उसकी मालगुजारी न बेबाक करो—पांच रुपये तुमसे लेता है, एक रुपया कम्पनी को देता है और चार रुपये अपने पेट में डालता है, सोवरन राउत।'[110]

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपने सामाजिक आधार के रूप में परोपजीवी तथा कमहीन जमींदार वर्ग को पैदा करके ही दम नहीं लिया, बल्कि वह अपनी कठपुतली के रूप में उन्हें सुरक्षा प्रदान करता था और पूरी ताकत के साथ उनकी राजनीतिक भूमिका को बढ़ा चढ़ा कर पेश करने की कोशिश करता था। इसके साथ ही ब्रिटिश राज उस वर्ग के पोषक प्रतिक्रियावादी सामाजिक व धार्मिक अवशेषों सामन्ती मूल्यों व नैतिकता को बनाये रखना चाहता था। बहरहाल इस साम्राज्यवादी कवच के सहारे जमींदार किसानों-मजदूरों को बुरी तरह से दुह रहा था। उसकी इज्जत आबरू तक को लूट रहा था। राहुल ने 'रेखाभगत' कहानी में क्रूर सामन्ती शोषण के एक दर्दनाक प्रसंग को चित्रित किया है। रेखा के गाँव दयालपुर में जमींदार का आगमन होता है। प्यादे रेखा से बगार में दूध की माँग करते हैं, जबकि उसे भैंस-गाय कुछ भी नहीं है। रेखा अपनी असमर्थता जतलाता है। पर मालिक का फरमान होता है— जाओ, हरामजादे की औरत का दूध दुहकर लाओ।'[111] मालिक के प्यादों ने हुक्म को तामिल किया। रेखा को बिना कुछ कहने-सुनने का मौका दिये प्यादों ने पकड़कर मुश्कें बाँध दीं। फिर दो घर में घुस मँगरी (रेखा की पत्नी—च० भा०) को पकड़ लाये। बेबस रेखा खून भरी आँखों से देख रहा था, जबकि उन्होंने चिल्लाती हुई मँगरी के स्तन को पकड़कर गिलास में सचमुच कई धार दूध की मारी। प्यादे रेखा को वैसे ही बँधे छोड़ चले गये।'[112] यही है साम्राज्यवादी रक्षात्मक कवच में पल्लवित जमींदारों की जमींदारी।

जमींदारों की ठकुरसुहाती

कहना न होगा कि ब्रिटिश राज की इच्छाओं के अनुरूप यहाँ के जमींदार उसके लिए एक सामाजिक आधार प्रदान कर रहे थे। अँगरेजों की मनोनुकूल योजना को कार्यान्वित करते हुए भारतीय जमींदार पूरी तरह वफादार निकले। उन्होंने तहे दिल से अँगरेजों का साथ दिया। जैसे-जैसे भारत की आजादी की लड़ाई तेज होती जा रही थी प्रत्येक सूबे में जमींदारों की लैण्ड होल्डर्स फेडरेशन, लैण्ड ओनर एसोसिएशन जैसी विभिन्न संस्थाएँ ब्रिटिश राज के प्रति अपनी अटूट निष्ठा की घोषणा करने लगीं। 1925 में बंगाल लैण्ड ओनर

एसोसिएशन के अध्यक्ष ने वायसराय को जो अभिनन्दन पत्र दिया वह इस सन्दर्भ में एक अच्छा उदाहरण है। इसमें कहा गया था, "महामहिम इस बात का भरोसा कर सकते हैं कि जमींदार लोग सरकार का पूरा पूरा समर्थन करेंगे और पूरी निष्ठा के साथ सरकार की सहायता करेंगे।"[113] 1938 में आयोजित प्रथम आल इण्डिया लैण्ड होल्डर्स कांफ्रेंस में भी ब्रिटिश राज के प्रति वफादारी की बात कही गयी थी। यह कांफ्रेंस देश भर के सभी जमींदारों का मिला जुला संगठन स्थापित करने की तैयारी के लिए आयोजित हुआ था। इस सम्मेलन की खास बात मैमनसिंह के महाराजा का अध्यक्षीय भाषण था, जिसमें कहा गया था कि यदि हम एक वर्ग के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखना है, तो हमारा कर्तव्य है कि हम सरकार के हाथ मजबूत करें।"[114]

राहुल ने अपनी कहानी 'राय बहादुर' (बहुरंगी मधुपुरी) में जमींदारों की इस ठकुर-सुहाती का चित्रण किया है। राय बहादुर (दयानन्द—ष० भा०) अनन्य भक्त थे, जैसा कि हरेक रायबहादुर के लिए होना चाहिए। आखिर अँगरेजों की राय में राय (हाँ में हाँ) मिलाने में बहादुर होने के कारण ही रायबहादुरी दी जाती थी।" नमक सत्याग्रह चल रहा था लोग पिट रहे थे और जेलों में ठूँसे जा रहे थे, उस समय अपने जिला अफसरों के पास रायबहादुर की हमेशा यही राय थी, कि इन बदमाशों को डण्डे से ठीक किया जाय। उनका विश्वास था—हिन्दुस्तान के लोगों को आदमी बनाना, यहाँ शान्ति और समृद्धि स्थापित करना अँगरेजों का काम है। जो भी अँगरेजी राज्य के खिलाफ कहता है, वह उनकी दया का पात्र नहीं हो सकता।"[115]

स्वाधीनता आन्दोलन का साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी तेवर और कांग्रेस की ढुलमुल नीति

वस्तुतः भारतीय जमींदार वर्ग भारत की संघर्षशील जनता की इच्छाओं के प्रतिकूल न सिर्फ ब्रिटिश राज का साथ दे रहा था बल्कि उस राज के शोषण तन्त्र का एक महत्वपूर्ण अंग भी था। इसलिए आजादी की लड़ाई के दौरान ब्रिटिश राज के साथ साथ जमींदारों के खिलाफ संघर्ष करना भी आवश्यक था। जमींदार वर्ग के खिलाफ संघर्ष करने के साथ ही उसके पोषक सामन्ती मूल्य व नैतिकता के खिलाफ भी संघर्ष करना आवश्यक था, क्योंकि उसके खात्मे के बिना मुकम्मल तौर पर जमींदारों तथा उनके तन्त्र को खत्म नहीं किया जा सकता था। दूसरे शब्दों में, सच्ची स्वाधीनता के लिए हरेक तरह के साम्राज्यवादी तथा सामन्तवादी शोषण के खिलाफ संघर्ष करना आवश्यक था। इस संघर्ष में भारत की संघर्षशील जनता पूरी शक्ति के साथ शिरकत भी कर रही थी। लेकिन दुर्भाग्यवश स्वाधीनता आन्दोलन के इस व्यापक फलक—साम्राज्यवाद तथा सामन्तवाद विरोध को सारे सेनानियों तथा संगठनों ने समान रूप से अपने दृष्टिपथ में नहीं रखा। स्वाधीनता आन्दोलन के सन्दर्भ में जिस एक दल के मत्थे सारा सेहरा बाँधा जाता है, वह है भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस। यह सही है कि स्वाधीनता आन्दोलन में कांग्रेस की एक महत्वपूर्ण हिस्सेदारी रही है लेकिन इसके एक प्रभावशाली नेतृत्व वर्ग ने हमेशा स्वाधीनता आन्दोलन के

उपर्युक्त विस्तृत फलाव को नजरअन्दाज करकभी ब्रिटिश राज तथा कभी भारतीय जमींदार वर्ग के साथ साठ गाठ की। जब जब स्वाधीनता आन्दोलन ने आक्रामक रूप धारण किया और कांग्रेस के इस प्रभावी वर्ग का नेतृत्व से अपदस्थ होने का खतरा हुआ या संघर्ष का तेवर जमींदारो के खिलाफ हुआ आन्दोलन वापस ले लिया गया। आन्दोलन वापस लेने के पीछे क्रान्तिकारी चेतना को मारने और सेठो व जमींदारो के वर्गहित को बचाये रखने की मंशा काम कर रही थी। कांग्रेस व सर्वेसर्वा महात्मा गांधी इस सन्दर्भ में प्रभावी भूमिका निभाते रहे। एकाधिक बानगी पेश है। गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका के अपने अनुभवो के आधार पर रौलट कानूनों के खिलाफ अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन चलाने की कोशिश की और इस उद्देश्य से उन्होंने फरवरी 1919 में सत्याग्रह लीग नामक संस्था की स्थापना भी कर दी। उन्होंने जनता से यह अनुरोध किया कि वह 6 अप्रैल 1919 को सारे कामकाज ठप्प कर दे। इस अपील पर भारतीय जनता ने उत्साहपूर्वक तथा आश्चर्यजनक ढंग से अमल किया।

इस अवधि में आन्दोलन ने निस्सन्देह ब्रिटिश राज के खिलाफ संगठित विद्रोह का रुख ले लिया था। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद तथा अन्य स्थानों पर जनता ने अँगरेज शासको के खिलाफ छिट-फुट रूप से हिंसा का प्रयोग किया। गांधीजी ने इस परिस्थिति पर चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि मैंने एक महान भूल की थी जिससे कुछ ऐसे लोगो को अव्यवस्था फैलाने का अवसर मिल गया जो सही अर्थों में सत्याग्रही नही थे और जिनका उद्देश्य अच्छा नही था। बहरहाल गांधीजी ने एक हफ्ता हड़ताल चलने के बाद ही अप्रैल के मध्य में सत्याग्रह आन्दोलन रोक दिया। इस प्रकार आन्दोलन ठीक ऐसे वक्त पर बन्द कर दिया गया जब यह अपने शिखर पर पहुँचनेवाला ही था। बाद में गांधी-जी ने 21 जुलाई 1919 को अखबारो के नाम एक पत्र लिखकर यह बताया कि आन्दोलन वापस लेने का कारण यह था कि एक सत्याग्रही कभी सरकार को परेशान करना नही चाहता।

गांधीजी की यह हरकत 1921 ई० में अहमदाबाद कांग्रेस के बाद भी दृष्टिगत होती है। अहमदाबाद कांग्रेस (1921) में एक जोशपूर्ण वातावरण में अनेक प्रस्ताव पारित किये गये, जिनमें यह घोषणा की गयी थी कि जब तक स्वराज की स्थापना नही हो जाती और जनता के हाथो में शासन की बागडोर नही पहुँच जाती तब तक कांग्रेस अहिंसक असहयोग आन्दोलन और भी शक्ति के साथ जारी रखने के लिए दृढ़ संकल्प है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए महात्मा गांधी को कांग्रेस का एकमात्र अधिकारी बनाकर सारे अधिकार उनके हाथ में दे दिये गये। लेकिन गांधीजी एक महीने तक चुपचाप इन्तजार करते रहे। उन्होंने साम्राज्यवाद तथा सामन्तवाद के खिलाफ संघर्ष करने के लिए कोई विस्तृत योजना प्रस्तुत नही की। इस बीच विभिन्न जिले के लोगो ने गांधीजी को लिखा कि वे कर न देने का आन्दोलन जल्दी शुरू करें। लेकिन गांधीजी ने ऐसी कोई अनुमति नही दी। गुण्टूर जिले के लोगो ने गांधीजी की अनुमति के बिना ही यह आन्दोलन शुरू कर दिया। इस पर गांधीजी ने फौरन ही जिले के कांग्रेस अधिकारियो को लिखा कि निर्धारित तिथि तक सारे कर जमा कर दिये जायें। इसके बाद उन्होंने एक छोटे-से जिले

बारदोली में कर न देने का अपना अभियान शुरू करने का निश्चय किया। इसका देश व्यापी असर हुआ। जगह जगह स्वतःस्फूर्त आन्दोलन उभरने लगे। कहीं-कहीं तो आन्दोलन ने आक्रामक रूप ले लिया। चौरी चौरी में गुस्से से भरे किसानों ने शोषण के प्रतीक थाने पर हमला करके उसे जला दिया।

गांधीजी को पुनः इस पर चिन्ता हुई। उन्होंने 12 फरवरी 1922 को बारदोली में कांग्रेस कार्य समिति की बैठक बुलायी। इस बैठक में फैसला किया गया कि चौरी चौरी में जनता की अमानवीय हरकतों को देखते हुए न सिर्फ आम सविनय अवज्ञा आन्दोलन को बल्कि उसके प्रचार सहित समूचे आन्दोलन को ही बन्द कर दिया जाय। साथ ही कांग्रेस कार्य समिति ने स्थानीय कांग्रेस समितियों को यह भी निर्देश दिया कि वे किसानों को लगान तथा दूसरे कर अदा करने की सलाह दें और हर तरह की आक्रामक कार्यवाहियाँ बन्द कर दें। कांग्रेस कार्य समिति के इस फैसले की आलोचना करते हुए सुभाषचन्द्र बोस ने लिखा, 'जिस समय जनता में उत्साह और जोश उबला पड़ रहा था ठीक उसी वक्त पीछे हटने का आदेश देना सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए महान दुर्घटना थी।'[110]

राहुल ने इस महान दुर्घटना को क्रान्ति विरोधी कहा है। उन्होंने अपनी 'नये सफदर' (वोल्गा से गंगा) में गांधीजी की इस आन्दोलन वापस लेने की नीति की निर्मम आलोचना की है— 'जब चौरी चौरा में आतंकित उत्तेजित जनता द्वारा कुछ पुलिस के आदमियों के मारे जाने की खबर सुनकर गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया तो किन्तु ही लोग गम्भीरता से सोचने पर मजबूर हुए ... क्रान्ति की शक्ति सिर्फ जनता है, गांधी का दिमाग नहीं, गांधी ने जनता की शक्ति के प्रति अविश्वास प्रकट कर अपने को क्रान्ति विरोधी साबित किया।'[111] गांधी की आन्दोलन वापस लेने की यह घातक नीति नमक सत्याग्रह के सन्दर्भ में भी दृष्टिगत होती है। 1936 तक आते-आते कांग्रेस के स्वरूप में तथाकथित परिवर्तन होता है। इसके समाजवादी गुट के नेता जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष चुन जाते हैं। उन्होंने कांग्रेस के समाजवादी लक्ष्यों की घोषणा करते हुए फासीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध दुनिया की जनता के बढ़ते हुए संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में भारतीय जनता के संघर्ष को सामने रखा। साथ ही साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का एक ऐसा व्यापक जनमोर्चा बनाने की माँग की जिसमें मजदूरों और किसानों को मध्यवर्गीय तत्वों के साथ एकताबद्ध किया जा सके।

परन्तु कांग्रेस के इस नीतिगत परिवर्तन पर विशेष गद्गद होने की जरूरत नहीं है क्योंकि सत्ता का हस्तान्तरण इसी कांग्रेस (जिसके अगुआ समाजवादी का डंका पीटने वाले यही नेहरू थे) के हाथों में हुआ जो राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का हिमायती निकला। साथ ही इस पार्टी ने ढहते सामन्त वर्ग को भी अपनी गोद में शरण दी। ध्यातव्य है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी नेहरू ने बन्द और समाजवाद को ढाल बनाकर बावजूद इसके वे पूंजीवादी विकास का मार्ग प्रशस्त करते रहे। इसलिए ... नेहरू के साथ चौड़े भाषण से किसी को भ्रमित नहीं होना चाहिए ... में बहुत अन्तर है।

कांग्रेस ने स्वाधीनता आन्दोलन

ढुलमुल नीति का परिचय दिया और जमींदारों के प्रति वफादारी प्रकट की, जिसकी ओर इशारा किया जा चुका है। साथ ही, इसने सामन्ती मूल्य व नैतिकता का भी क्रान्तिकारी रीति से विरोध नहीं किया। वर्ण व्यवस्था सामन्ती मूल्य और नैतिकता की द्योतक है। इसमें सबसे अधिक पीड़ित, पददलित निम्न जातियाँ रही हैं। गांधी ने हरिजनों के उद्धार की बात तो की, लेकिन वर्ण-व्यवस्था को यथावत् बना रहने दिया। इसके विपरीत राहुल की दृष्टि में वर्ण धर्म को कायम रखते हुए हरिजनों का उद्धार नहीं हो सकता क्योंकि ये ही इनके शोषण के मूल में हैं। इसीलिए उनका सुमेर (सुमेर कहानी का प्रमुख पात्र) कहता है, 'उनकी (गांधीजी की—च० भा०) एक एक हरकत मुझे शोषितों—और भारत में सबसे अधिक शोषित हमारी जाति है—के लिए घातक है। हम दिमागी गुलामी के अड्डे शोषकों के जबरदस्त पोषक पुरोहितों का दूकानों—इन मन्दिरों में ताला लगवाना चाहिए—और उल्टे हम फँसाने के लिए गांधीजी उन्हें खुलवाना चाहते हैं। पुरानी पोथियों, अमीरों के टुकड़ों में पलनेवाले भक्तों की वाणियों को यदि हम आग में नहीं जलाते, तो ताक ताले में तो बन्द कर देना चाहिए। किन्तु उन्हीं की दुहाई देकर गांधीजी हमें गुमराह कर देना चाहते हैं। वर्ण-व्यवस्था जैसी भयंकर व्यवस्था को भारत में नाम नहीं रहने देना चाहिए, किन्तु गांधीजी उसकी अनासक्ति योग से लच्छेदार व्याख्या करते हैं। इन सबके बाद हरिजन उद्धार सिर्फ ढोंग नहीं तो क्या है? इससे कुछ ऊँची जाति के हरिजन उद्धारकों को जीविका भले ही मिल जाय मगर उद्धार की आशा अंधा ही कर सकती है।"[11] सुमेर हरिजन समस्या का असली समाधान प्रस्तुत करते हुए कहता है, 'गरीबों की कमाई पर मोटे होनेवालों का भारत में नामोनिशान यदि न रहे, तभी हमारी समस्या हल हो सकती है।'[11]

कांग्रेस की ढुलमुल नीति का दूसरा चरण

कांग्रेस और उसके अग्रधावकों का यह समझौतापरस्ती तथा ढुलमुल नीति उसके वर्गीय चरित्र को स्पष्ट करती है। यह स्थिति स्वाधीनता के बाद भी दिखायी पड़ती है। राहुल ने इसका चित्रण 'बहुरंगी मधुपुरी' की एकाधिक कहानियों में किया है। जमींदार, सेठ, प्रशासक सभी कांग्रेस में तरजीह पाते हैं और अपना-अपना हित साधन करते हैं। 'राय बहादुर दयानन्द' ('राय बहादुर' कहानी के प्रमुख पात्र) अंगरेजी राज में अपने को ठकुरसुहाती तक सीमित रखते थे, लेकिन आजाद भारत में अपनी सीमा फैलाते हैं और जनता के तथाकथित उद्धारकर्ता बनते हैं। फलतः उन्हें मधुपुरी की कांग्रेस का सभापति बनाया जाता है। मधुपुरी के हरिजनों के वह सबसे अधिक खैरख्वाह हैं। वह मधुपुरी के मजदूरों के कष्टों को भी दूर करना चाहते हैं। ...वो नहीं रायबहादुर चाहते हैं, कि मधुपुरी में मजदूरों का राज्य हो, न यहाँ के मजदूरों के नेता जिनमें कितने ही रायबहादुर के कृपा पात्र हैं।"[12]

वस्तुतः आजादी के बाद भी शासन तन्त्र की संरचना पूर्ववत रहती है। "तभी तो सन् '42 के संग्राम में देशभक्तों के खून से हाथ रंगनेवाले अफसर आज पहले से भी बड़े

बड़े पदों पर पहुँचे हैं पहले से भी उनका मान बढ़ा है। अंगरेजों का जूता चाटते चाटते उनके इशारे पर देशभक्तों का नाको चना चबवाते जिनके केश सफेद हो गये, वही त्रिमूर्ति के देवताओं के सबसे अधिक कृपाभाजन हैं, यही वस्तुतः सरकारी नया का चलाते हैं।" आगे राहुल अपनी एक दूसरी कहानी 'काठ का साहब' में लिखते हैं कि पुराने बड़े साहब की जगह नये बड़े साहब आये, जिनके रंग में फर्क जरूर है, लेकिन तनख्वाह में कोई फर्क नहीं जिनकी योग्यता में कमी जरूर है, किन्तु रौब में नहीं। यह भी पुराने साहबों की तरह ही जनता से अलग रहना पसन्द करते हैं।"[1] प्रशासन की यह तस्वीर कांग्रेस राज की कलई खोलकर रख देती है। ध्यातव्य है कि राहुल की इतिहास यात्रा वर्तमान में पर्यवसित होकर विराम लेती है। आदिम समाज से स्वाधीनता प्राप्ति के पहले दशक तक की भूमि तय करती है। वस्तुतः यह इतिहास के आलोडन का अभूतपूर्व आयोजन है। भगवतशरण उपाध्याय और रांगेय राघव ने भी क्रमशः 'सवेरा संघर्ष गर्जन' और 'महा यात्रा गाथा (भाग 1 और 2) में भारतीय इतिहास की रचनात्मक यात्रा की है। लेकिन इन दोनों रचनाकारों ने राहुल की तरह लगभग आठ हजार वर्षों के लम्बे काल विस्तार को समेटने का साहस नहीं किया है। भगवतशरण उपाध्याय ने कनिष्क तक और रांगेय राघव ने पृथ्वीराज चौहान तक के सामाजिक विकास को ही अपनी अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। राहुल की रचनात्मक इतिहास यात्रा गागर में सागर भरने का अनुपम उदाहरण है। शायद ही किसी रचनाकार ने इतने लम्बे काल विस्तार को कुछेक रचनाओं में प्रभावी ढंग से चित्रित किया हो। तिथियों, राजाओं, उनके उत्तराधिकारियों आदि के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तथा क्रमिक विवरण ढूंढनेवाले जिज्ञासुओं को राहुल की ऐतिहासिक कृतियों से अवश्य निराशा होगी। और इनका विवरण देना राहुल का उद्देश्य भी नहीं रहा है। वस्तुतः वे उन ऐतिहासिक मोड़ों पर दृष्टिपात करते हैं, जहाँ व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन दिखाई पड़ता है। उन्होंने इतिहास प्रक्रिया के अन्तरालों को नजरअन्दाज कर दिया है।

अभिजनवाद विरोध

राहुल की इस व्यापक इतिहास यात्रा को देखते हुए ऐसा लगता है कि उनकी इतिहास दृष्टि के केन्द्र में अभिजनवाद विरोध है। इसीलिए वे जनयुग से लेकर स्वाधीनता प्राप्ति के पहले दशक तक की इतिहास यात्रा करते हुए शोषण के विभिन्न रूपों और उनके खिलाफ संघर्षरत साधारण जनता की अदम्य जिजीविषा और संघर्षशीलता का चित्रण करते हैं। वे शासक वर्ग के उन तमाम जालों का पर्दाफाश करते हैं जिसके तहत वे अपने भोग को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं।

राहुल ने प्रकारान्तर से उन इतिहास दृष्टियों से भी संघर्ष किया है जिसके तहत अभिजनवाद को समर्थन मिलता है। कार्लायल ने यह भ्रमपूर्ण स्थापना की थी कि महान व्यक्तियों की जीवनियाँ ही इतिहास हैं। ए० जे० पी० टेलर ने इस धारणा को कार्यरूप में परिणत करते हुए लिखा है कि यूरोप का इतिहास तीन महापुरुषों के आधार पर लिखा जा सकता है—नेपोलियन, बिस्मार्क और लेनिन।[123] वस्तुतः इस दृष्टिकोण से इतिहास

का अध्ययन करने पर विकास प्रक्रिया की सम्पूर्ण जटिलता को नही समझा जा सकता। साथ ही, इससे अभिजनवाद को भी बल मिलता है। और, विकास प्रक्रिया मे सघषशील जनता की भूमिका नजरअन्दाज हो जाती है। लेनिन का कहना है कि गम्भीर राजनीति जनसाधारण के पास से, लाखो करोडो के पास स शुरू होती है, न कि हजारा के पास से।[124] ऐसी स्थिति मे महापुरुषा को केन्द्र म रखकर इतिहास लिखने से विकास प्रक्रिया की सही जानकारी और व्याख्या नही हा सकती। इतिहास-प्रक्रिया मे महापुरुषा की महत्वपूर्ण भूमिका हाती है, लेकिन उच्च काटि की रचनात्मकता का श्रेय उन महापुरुषा का दिया जाना चाहिए जिन्होंने क्रामवल या लेनिन की तरह उन शक्तिया की रचना म मदद पहुचायी जो उन्हे महानता की ओर ले गयी, न कि नपोलियन और बिस्माक जसे उन महापुरुषो का जो पहले से विद्यमान शक्तियो पर सवार होकर महानता को प्राप्त हुए। राहुल ने अपनी इतिहास-यात्रा के क्रम मे इस दष्टि को दृष्टिपथ म रखा है। उन्होंने इतिहास प्रक्रिया मे सघषशील जनता की हिस्सेदारी के साथ ही उन महापुरुषा की प्रभावी भूमिका को भी रखाकित किया है, जिन्होंने विकास गति का जन गण के पक्ष मे उत्प्रेरित किया। गौतम बुद्ध, अजित केस कम्बल अश्वघाष काल मार्क्स, लेनिन, माओत्सेतुग आदि एसे ही महापुरुष रहे हैं। राहुल न महापुरुष म स्थित उस अतिविशिष्ट व्यक्ति का रेखांकित किया है, जो एक साथ ही इतिहास प्रक्रिया का उत्पादन और एजेण्ट है, मानव चिन्तन को परिवर्तित करनवाली सामाजिक शक्तिया का निर्माता और प्रतिनिधि ह। व शक्ति का मूल स्रात जनता का मानत हैं। इसीलिए उनका कहना है कि राजा आर राज-वश चिडिया रैन बसेरा रखनवाले होते हैं अमर ता है जनता। जिसन उसका पल्ला पकडा, उसी का बेडा पार है।[125]

राहुल न अपनी अभिजनवाद विराधी दृष्टि के कारण ही स्वाधीनता आन्दोलन क इतिहास म महात्मा गाधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू जस अपन जमान के मीनारी राजनीतिज्ञो को उतना महत्व न दकर सरदार पृथ्वीसिंह, वीरचन्द्रसिंह गढ़वाली जैस जनता के पक्के हिमायती स्वाधीनता सेनानिया की भूमिका का रेखाकित किया है। राहुल ने इन दोना की स्वतन्त्र रूप से जीवनिया भी लिखी हैं। 'मरे असहयाग क साथी' मे जलधर प्रसाद, फिरगीसिंह मथुरा बाबू आदि एसे सुराजियो की चचा है, जिनका सरकारी इतिहासकारो के यहा नाम तक लेना भी गुनाह और भदेसपन समझा जाता है। इन लोगो की चर्चा के बहाने राहुल ने इतिहास प्रक्रिया म साधारण जनता की प्रभावी भूमिका को स्पष्ट किया है। शासक वग स्वाधीनता आन्दालन की सारी उपलब्धियो का महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नहरू के मत्थे मढ रहा है। यू अब गाँधीजी को दरकिनार करने की प्रक्रिया शुरू है, क्याकि उनकी एकाध बात शासक वग का खटकती है। बहर-हाल, इस देश का दुभाग्य ही कहिए कि सरदार पृथ्वीसिंह जस क्रान्तिकारी स्वाधीनता सेनानी अब भी जीवित हैं, पर उनकी कोई खोज खबर नही ले रहा है। इसस लगता है कि शासक वर्गीय इतिहास दष्टि पूरी तरह से हावी हा गयी है। इस दुभाग्यपूर्ण सन्दभ मे राहुल के अभिजनवाद विरोधी अभियान की महत्ता को सहज ही रखाकित किया जा सकता है।

पुनरुत्थानवाद से परहेज

इतिहास यात्रा में पुनरुत्थानवाद का खतरा हर समय बना रहता है। भारत जैसे देश के सन्दर्भ में तो यह खतरा और भी रहता है, क्योंकि यहाँ अनेक जातियों, धर्मों का टकराव और सम्मिलन हुआ है। किसी जाति या धर्म विशेष के इतिहासकार को ऐसे टकरावपूर्ण स्थलों पर विचलित होने और फलतः पुनरुत्थानवाद की गिरफ्त में आ जाने की सम्भावना रहती है। मसलन मध्य युग में हिन्दू और इस्लाम धर्म में अभूतपूर्व टकराहट होता है। हिन्दू मतावलम्बियों का इस्लामी तलवार का बड़ा ही कड़वा तजुर्बा होता है। इस सन्दर्भ में 'हिन्दू व्याकुल इतिहासकार' के क्रोधित होने और 'मुस्लिम व्याकुल इतिहासकार' के गद्गद होने की सम्भावना बनी रहती है। और, ऐसा हुआ भी है। इस तरह की अनगिनत वानगियाँ हैं जहाँ पुनरुत्थानवादी होने का खतरा बना रहता है। ऐसी स्थिति में इतिहासकार का सन्तुलन बनाये रखने की जरूरत होती है। और, यह सन्तुलन सही इतिहास दृष्टि (ऐतिहासिक भौतिकवाद) से ही कायम रह सकता है। राहुल ने इसी दृष्टि के तहत इतिहास यात्रा की है। इस दृष्टिकोण से राहुल एक सफल इतिहासकार कहे जा सकते हैं। राहुल जन्म से ब्राह्मण हैं, किशोरावस्था में आर्य समाज से प्रभावित होते हैं, प्रौढ़ावस्था में बौद्ध धर्म को स्वीकार करते हैं और अन्त में मार्क्सवाद को विश्व दृष्टि के रूप में स्वीकार कर अपनी वैचारिक यात्रा का विराम देते हैं। यह जटिल वैचारिक यात्रा ही इस बात का प्रमाण है कि राहुल के अन्तर्मन में किसी एक धर्म या सम्प्रदाय विशेष के प्रति आग्रह नहीं है। और अन्त में तो दर्शन की जिस भाव भूमि पर अपने को प्रतिष्ठित करते हैं वहाँ तो किसी आग्रह की गुंजाइश ही नहीं रहती है।

राहुल के तीन नाम रहे हैं—केदार पाण्डे (पिता का दिया नाम) राम उदार साधु (परसागढ़ मठ में सन्यासी होने पर) और राहुल सांकृत्यायन (बौद्ध धर्म में दीक्षित होने पर)। ये विभिन्न नाम राहुल के वैचारिक परिवर्तन को प्रतीकित करते हैं। अन्तिम नाम पर कुछ आपत्ति हो सकती है। जैसा कि कहा जा चुका है कि बौद्ध धर्म जाति, धर्म, परम्परा इन तमाम धारणाओं को एक हद तक चुनौती देता है। दूसरी ओर, बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बावजूद राहुल अपने सांकृत्य गोत्र को प्रतीकित करने के लिए अपने नाम के साथ सांकृत्यायन लगाते हैं। क्या राहुल के अन्तर्मन में ब्राह्मणवादी चोर तो नहीं बैठा है? अगर सिर्फ यहीं तक सीमित रहा जाय, तब तो इस धारणा को बल मिलेगा। लेकिन यदि उनकी रचनाओं का विश्लेषण किया जाय, तो यह धारणा खण्डित हो जायेगी। अगर राहुल में अन्तर्मन में कोई ब्राह्मणवादी चोर होता, तो कम-से-कम ब्राह्मणवाद पर भयानक निर्ममता से प्रहार नहीं करते और मार्क्सवाद की ओर अग्रसर नहीं होते। तुर्क और मुगल शासकों की प्रगतिशीलता को नहीं रेखांकित करते। और, अन्ततः पुनरुत्थानवाद की गिरफ्त में चले जाते। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि गोत्र सूचक 'सांकृत्यायन' शब्द उनके इतिहास प्रेम का प्रतीक है।

अगर इतिहासकार को अपने समय और समाज की वास्तविकताओं का गहरा ज्ञान नहीं है तो फिर वह सहज ही पुनरुत्थानवाद की गिरफ्त में आ सकता है। इसलिए

इससे उबरने के लिए जरूरी है कि अपने समय और समाज की वास्तविकताओं से गहरा तादात्म्य स्थापित किया जाय। राहुल ने इतिहास-यात्रा के दौरान ऐसा ही किया है। उनका मुख्य सरोकार भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के वर्तमान और भविष्य से है जिसकी विस्तृत चर्चा हम यथास्थल करेंगे। यद्यपि उन्होंने कहीं-कहीं प्राचीन भारत के अत्यन्त मोहक चित्र प्रस्तुत किये हैं, परन्तु लौट जानेवाली प्रवृत्ति उनकी नहीं है। अतीत में जाकर पर्यवसित होना, अतीत का पुनरुज्जीवित करना या अतीत की पूजा करना पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति का द्योतक है। राहुल हर समय इससे बचते हैं। उन्होंने स्पष्टतः लिखा है कि अपने भूत के प्रति गौरव और आवश्यकता से अधिक अनुराग हमारे लिए बड़ी खतरनाक चीज है। वह हमारी पुरानी बेवकूफियों के प्रति आदर का भाव पैदा कर देता है। आज जिन सामाजिक और धार्मिक खराबियों को हम देख रहे हैं उनकी जड़ उसी भूत की श्रद्धा में निहित है।[126]

राहुल की इतिहास-यात्रा की विशिष्टता इस बात में है कि वे मोहाविष्ट होकर अतीत में पर्यवसित नहीं होते। उसके अमृत तथा विष दोनों को नीर क्षीर विवेक से अलग-अलग कर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। उनकी कृतियों में यदि प्राचीन वैशाली और यौधेय गणतन्त्र का चित्रण है तो दूसरी ओर सामन्ती शोषण और उत्पीडन का भी। महत्व की बात है कि राहुल पहले को गौरवान्वित करते हैं तो दूसरे की भरपूर भर्त्सना। उनकी सामन्तवाद विरोधी दृष्टि कहीं भी सामन्ती मूल्य जनित शोषण व उत्पीडन को बर्दाश्त नहीं करती। राहुल ने गुप्तकाल की सामन्ती चेतना और शोषण को उजागर किया है, जिसे हिन्दू साम्प्रदायिक तथा पुनरुत्थानवादी इतिहासकार बार-बार 'स्वर्ण युग' कहते हुए भी नहीं अघाते।

राहुल सांकृत्यायन ने केवल शब्दों में जहाँ भारतीय इतिहास के प्रगतिशील तत्वों की प्रशंसा की है, वहीं उसकी जड़ता पर भी प्रहार किया है। उन्हीं के शब्दों में, "भारतीय मानव समाज की सहस्राब्दियों से चली आती इस तरह की निश्चलता प्रवाह शून्यता—जो पिछली सदी तक पायी जाती थी—ही वह कारण है, जिससे भारतीय मानव ग्राम भक्ति से उठकर देशभक्ति तक नहीं पहुँच सका और न बाहरी दुश्मनों का मुकाबिला सामूहिक तौर से कर सका। इस ग्राम पंचायत ने शिल्पियों को सहस्राब्दियों पूर्व के बसूला रुखानियों से किसानों को हसुआ फालों से चिपटा रहने दिया। यदि वह भारतीय ग्राम्य प्रजातन्त्र पहिले ही टूटकर विस्तृत संगठन में बद्ध हुआ होता, तो निश्चित ही साधारण जनता शासकों की निरंकुशता का मुकाबिला करने में ज्यादा क्षमता रखती, फिर जिस स्वेच्छाचारिता को हम भारत के पिछले दो हजार वर्षों के इतिहास में देखते हैं क्या वह रह सकती ?"[127] कहना न होगा कि इस जड़ता को बरकरार रखने में शासक वर्ग की प्रभावी भूमिका रही है। "शासक वर्ग जानता था कि यह ग्राम संगठन भारतीय समाज का मर्म स्थान है वहाँ की चोट को वह सहन नहीं कर सकता मुकाबिला किये बिना नहीं रह सकता, इसीलिए उसने उसे नहीं छेड़ा, जैसा का तैसा रहने दिया। जिस पर भारतीय ग्रामीण बोल उठा—'कोउ नृप होइ हमें का हानी (तुलसीदास)।'"[128] राहुल का यह वक्तव्य भारतीय इतिहास की पैनी और वैज्ञानिक समझ का प्रमाण है।

भविष्योन्मुखी इतिहास-दृष्टि

राहुल की इतिहास दृष्टि भविष्योन्मुखी है। वे वर्तमान को समझने तथा भविष्य की दिशा निर्धारित करने के लिए ही इतिहास यात्रा करते हैं। वे लिखते हैं, "बीते हुए से हम सहायता लेते हैं आत्मविश्वास प्राप्त करते हैं, लेकिन बीते की ओर लौटना यह प्रगति नहीं, प्रतिगति—पीछे लौटना—होगी। हम लौट सा सकते नहीं, क्योंकि अतीत को वर्तमान बनाना प्रकृति ने हमारे हाथ में नहीं दे रखा है। फिर जो कुछ आज इस क्षण हमारे सामने कर्मपथ है यदि केवल इस पर ही डटे रहना हम चाहते हैं तो यह प्रतिगति नहीं है, यह ठीक है, किन्तु यह प्रगति भी नहीं हो सकती, यह होगी सहगति लग्गू भग्गू होकर चलना—जो कि जीवन का चिह्न नहीं है। लहरों के थपेड़े के साथ बढ़ने वाला सूखा काष्ठ जीवन वाला नहीं कहा जा सकता। मनुष्य होने से, चेतनावान् समाज होने से हमारा कर्तव्य है कि हम सूखे काष्ठ की तरह बहने का ख्याल छोड़ दें और अपने अतीत और वर्तमान को देखते हुए भविष्य के रास्ते को साफ करें जिसमें हमारी आने वाली सन्तानों का रास्ता ज्यादा सुगम रहे और हम उनके शाप नहीं आशीर्वाद के भागी हों।"[129] वस्तुतः इतिहास यात्रा के क्रम में अतीत में सिर्फ डुबकियां लगाना राहुल का उद्देश्य नहीं है। वे एक बेहतर कल (साम्यवाद) की विकास प्रक्रिया को रेखांकित करने के लिए बीते कल की विकास प्रक्रिया का अध्ययन करते हैं, ताकि भारतीय जन मानस के सम्मुख विकास प्रक्रिया की सततता और द्वन्द्वात्मकता प्रस्तुत हो सके और तदनुरूप वह साम्यवाद की ओर प्रेरित हो सके। राहुल में इस चिन्तन की समग्र और जटिल अभिव्यक्ति 'वोल्गा से गंगा' में हुई है। उन्हीं के शब्दों में 1933 ई० में ही योरप से लौटते समय मन में ख्याल आया था कि साम्यवाद को समझने और उसकी ओर प्रेरित करने के वास्ते एक ऐसी पुस्तक लिखूं जिसमें हमारे देश का ऐतिहासिक विकास कहानियों में आ जायें।"[130]

राहुल की इतिहास दृष्टि की यह भविष्योन्मुखता इतिहास यात्रा के वैज्ञानिक नियमों के तहत ही है। ई० एच० कार ने लिखा भी है, " अतीत और भविष्य एक ही समय विस्तार के दो हिस्से हैं अतीत में रुचि लेने के साथ भविष्य में रुचि लेना जुड़ा हुआ है। जब लोग केवल वर्तमान में नहीं जीते और अपने अतीत और भविष्य में सचेत रुचि लेने लगते हैं तो हम प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक की विभाजन रेखा को पार कर लेते हैं। इतिहास परम्पराओं को आगे बढ़ाते जाने में निहित है और परम्परा का अर्थ है कि अतीत के सबक आदतें भविष्य में ले जाना। अतीत के अभिलेख हम भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखते हैं।"[131]

इतिहास-यात्रा की इस भविष्योन्मुखता के कारण उसका उद्देश्यवादी होना स्वाभाविक है। इतिहास यात्रा में भविष्य को समझने और उसकी ओर जन मानस को प्रेरित करने का भाव छिपा रहता है। इसलिए डेनमार्क के प्रसिद्ध इतिहासकार जे० हुइजिंगा लिखते हैं कि ऐतिहासिक चिन्तन हमेशा उद्देश्यवादी होता है।[132]

राहुल सांकृत्यायन की इतिहास यात्रा भी उद्देश्यवादी है। उनका उद्देश्य है ...त में प्रगतिशील प्रयत्नों से जन मानस को अवगत कराकर साम्यवादी आदर्श

की ओर प्रेरित करना। उन्हीं के शब्दों में, ' अतीत के प्रगतिशील प्रयत्नों को सामने लाकर पाठकों के हृदय में आदर्शों के प्रति इस प्रकार प्रेरणा भी पैदा की जा सकती है। मेरे उपन्यासों या कहानियों में प्रापगंडा के तत्व को ढूँढ़ने के लिए बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनके लिखने में मेरा उद्देश्य ही है—कुछ आदर्शों की ओर पाठकों को प्रेरित करना। अगर यह उद्देश्य मेरे सामने न रहता तो शायद मैं कहानी या उपन्यास लिखता ही नहीं, इसलिए जिसे मेरे दोस्त प्रापगंडा कहते हैं उसे मैं अपनी मजबूरी मानता हूँ।"[31] पर जो भविष्योन्मुखी हैं, जिन्हें साम्यवादी भविष्य में आस्था है और जो इसकी प्राप्ति के लिए संघर्षशील हैं वे इसे प्रापेगंडा नहीं कहेंगे। बहरहाल इस भविष्योन्मुखता के प्रसंग में राहुल सबाध यार अति उत्साह और बचकानेपन का परिचय भी देते हैं। उदाहरण के लिए 'बाइसवीं सदी' को उद्धृत किया जा सकता है। उसमें भविष्य के प्रति बेहद उतावलापन है। साम्यवादी भविष्य की मनगढ़न्त और वायवीय तस्वीर पेश की गयी है। राहुल ने स्वयं बाद में चलकर अपने एक निबन्ध 'मैं कहानी लेखक कैसे बना?' में इस वैचारिक बचकानेपन को स्वीकार किया है और उसे 'यूटोपियन साम्यवाद' कहा है।

आलोचना और आलोचना

राहुल ने भारतीय इतिहास की रचनात्मक यात्रा के क्रम में कई ऐसे निष्कर्ष दिये हैं जिससे पढ़कर इस देश के अनेक दकियानूसी बुद्धिजीवी तिलमिला उठे। 'वोल्गा से गंगा' पर साहित्य क्षेत्र में बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ। कुछ गुमनाम साधुओं ने 'विश्व बन्धु' पत्रिका में 'नग्नवादी वेदनिंदक राहुल' नामक लेख में भरपूर निन्दा की। डा० नगेन्द्र ने 'सिंह सेनापति' तथा 'जय यौधेय' की आलोचना करते हुए लिखा कि कुछ बातें तो निस्सन्देह आपत्तिजनक हैं—उदाहरण के लिए जिस उदारता से राहुल के पात्र एक-दूसरे पर चुम्बनों की बौछारें करते हैं, वह अनैतिक न भी माना जाय, परन्तु अभद्र अवश्य है—वास्तव में रस की उद्भावना का सस्ता उपाय इतने असंयम के साथ व्यवहृत किया गया है कि उससे अरुचि होने लगती है।[33] डा० नगेन्द्र की यह आलोचना उपर्युक्त गुमनाम साधुओं की धारणा के मेल में है। वस्तुतः ये आलोचनाएँ अनैतिहासिक हैं। राहुल ने यौन-सम्बन्धी अराजकता या उन्मुक्त प्रेम-व्यापार का जो चित्रण किया है वे तत्कालीन समाज की विकास दशा के अनुरूप हैं। अगर किसी को यह चित्रण अनैतिक या कुत्सित लगता है तो इसका अर्थ कि उसे इतिहास की सही जानकारी नहीं है। खैर, यह तो हुई ऐतिहासिक सन्दर्भ में यौन चित्रण की बात। लेकिन राहुल ने यौन चित्रण का रोजगार चलाने वालों पर स्वयं जबरदस्त प्रहार किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने कुछ प्रगतिशील लेखकों को भी आड़े हाथों लिया है। उन्होंने लिखा है, "प्रगतिशील लेखकों के बारे में कभी-कभी आक्षेप सुना जाता है कि वह नग्नता, अश्लीलता और यौन दुराचार को अपनी लेखनी का विषय बनाते हैं। दरअसल यदि कोई प्रगतिशील लेखक ऐसा करता है तो वह भारी गैर जिम्मेदारी दिखलाता है और प्रगतिशील कहे जाने का कभी अधिकारी

नहीं हो सकता।"[135] राहुल की दृष्टि में, जीवन में यौन-सम्बन्ध का भी स्थान है। इसे यदि हम इन्कार करते हैं तो हम दूसरी अति पर पहुँचते हैं। और वास्तविक नहीं अवास्तविक चीज का चित्रण करते हैं, इसलिए राहुल का यह हरगिज मतलब नहीं कि साहित्य और कला में यौन सम्बन्धों का जिक्र न आये। "लेकिन उसी का रोजगार खोल देना और आज के समाज की बुराइयों के कारण उत्पन्न वैयक्तिक कमजोरियों से फायदा उठाने की कोशिश करना कभी अच्छा नहीं समझा जा सकता। दरअसल ऐसी बात वही कर सकते हैं जो और तरह से अपने को साधनहीन और अक्षम समझते हैं।"[136]

कुछ आलोचकों को राहुल की मार्क्सवादी दृष्टि अखरती है। रांगेय राघव का कहना है "राहुल सांकृत्यायन के ऐतिहासिक उपन्यासों में दिशा-काल को भेदकर अमूमन एकाध मार्क्सवादी पात्र होता है। वह ऐसी बातें कर जाता है, जो तत्कालीन समाज के समय के चिंतन को आगे व्यक्त नहीं करता, वरन् आधुनिक विचारों का प्रतिनिधित्व करने लगता है। यह उचित नहीं है। लेखक अपने को इतिहास पर लाद देता है।"[137] डा० नगेन्द्र ने भी कुछ इसी टोन में 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' पर विचार करते हुए कहा है "क्या आधुनिक सोवियत विधान का उस युग के इतिहास पर आरोप नहीं किया गया है?"[138] डा० सत्यपाल चुघ की दृष्टि में राहुल की कथाकृतियों में विचारों का प्रकाशन ही मुख्य लक्ष्य होने के कारण वार्तालापों का स्वरूप तार्किक है। वार्तालापों में पात्रानुकूलता नहीं—सभी प्रमुख पात्र लेखक की एक सी रूढ़ साम्यवादी शब्दावली बोलने में दक्ष हैं। शायद लेखक भी अपनी इस प्रवृत्ति को समझता है और इसलिए अनेक स्थलों पर पात्रों का नाम दिए बिना तर्क वितर्क कराता चलता है।[139] डा० त्रिभुवनसिंह की मान्यता है कि उपन्यास की ऐतिहासिकता राहुलजी के व्यक्तिगत सिद्धान्तों (मार्क्सवाद—च० भा०) के भार से नष्ट हो गयी है।[140] डा० कामेश्वर शर्मा की भी शिकायत है "राहुल की इतिहास के सम्बन्ध में कुछ अपनी धारणाएँ हैं—इसलिए अतीत की पृष्ठभूमि पर चरित्रों के उठाने में वे अपने आधुनिक संस्कारों से अभिभूत होकर अनैतिहासिक बन जाते हैं। प्रचार और कला का मिश्रण उनकी सोद्देश्य रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होने लगता है। पात्रों के मन में वे गहरे नहीं उतरते, पर परिस्थितियों के जाल को बड़ी ही सुदृढ़ एवं सूक्ष्म रेखाओं में पात्रों के आस पास बुन देते हैं। वस्तुतः भौतिकवाद में राहुलजी का विश्वास अनजाने में उनकी उपन्यास कला को धारण कर उनमें से अनेक पूर्वाग्रहों को उभार कर सामने ला रखता है और इसलिए इतिहास गौण और लेखक के मन्तव्य प्रधान बन जाते हैं।' इन तमाम आलोचकों का एक ही रोना है कि राहुल ने इतिहास पर मार्क्सवाद को जबर्दस्ती लाद दिया है। वस्तुतः इस तरह की आलोचना मार्क्सवाद की गलत समझ या प्रच्छन्न विरोध का द्योतक है। मार्क्सवाद एक विचारधारा है एक नजरिया है और इस नजरिये से इतिहास का अध्ययन ज्यादा तार्किक और वैज्ञानिक होता है। ऐसी स्थिति में मार्क्सवाद को इतिहास पर लादने की बात 'गदहे गाभ का सरगन का वानप्रयाग' है। दरअसल इन आलोचकों का मूल क्षोभ मार्क्सवाद पर है, जिसे तरह-तरह की कलाबाजी के रूप में यहाँ व्यक्त किया गया है। आश्चर्य और खेद की बात है कि इन आलोचकों में एकाध समय-कुसमय अपने को मार्क्सवादी कहा

वाले आलोचक भी हैं। राहुल में कलापक्ष की कमी की बात करना एक बात है, लेकिन मार्क्सवाद के ऊपर इस कमी को थोपना दूसरी बात है। ये आलोचक यही दूसरी बात करते हैं। और, ऐसा करके वे अपने पूर्वग्रह और अपनी वर्गीय और विचारधारात्मक स्थिति को ही स्पष्ट करते हैं।

कुछ आलोचकों ने राहुल की ऐतिहासिक कथाकृतियों की प्रामाणिकता पर नुक्ता-चीनी की है। उन्हें राहुल की इतिहास-यात्रा वर्तमान से प्रभावापन्न लगती है। बहरहाल इस तरह के आरोपों में कोई खास जान नहीं है। राहुल अपनी रचनाओं की प्रामाणिकता के प्रति हमेशा सतर्क रहे हैं और अपने एक निबंध 'ऐतिहासिक उपन्यास' में इसके प्रति सतर्क भी किया है। भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने 'वोल्गा से गंगा' के परिशिष्ट में राहुल की इस सतर्कता की चर्चा की है। राहुल ने अपनी कृतियों की भूमिकाओं तथा पाद टिप्पणियों के जरिये प्रामाणिकता को बरकरार रखा है। उन्होंने अपनी ऐतिहासिक कृतियों की रचना में कल्पना का सहारा लिया है लेकिन वे निरी कल्पनामयी नहीं हैं। वेद, महाभारत, पुराण, बौद्ध साहित्य, पुरातात्विक अनुसंधान आदि को आधार के रूप में ग्रहण किया है। ऐसी स्थिति में उन पर अनैतिहासिकता का आरोप निराधार है। अगर इतिहास-यात्रा के क्रम में वर्तमान का असर दिखायी पड़ता है तो यह इतिहास लेखन का स्वाभाविक नियम है। हाँ, इतिहास लेखन में अतीत और वर्तमान के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध को नजरअन्दाज कर सिर्फ वर्तमान की अपेक्षा में इतिहास का अध्ययन सापेक्षतावाद से ग्रस्त होना है। राहुल इस दोष से मुक्त हैं। इतिहास लेखन में अतीत और वर्तमान के सम्बन्ध पर यथास्थल विस्तार से विचार किया जायेगा।

वस्तुतः राहुल के आलोचकों में वैसे लोगों की संख्या अधिक है जो जनवाद विरोधी और यथास्थितिवादी हैं, जिन्हें साम्यवाद और मानव प्रगति में विश्वास नहीं है। प्रगति में विश्वास का अर्थ नैसर्गिक रूप में अपने आप होनेवाली या अनिवार्य रूप से होने वाली प्रगति में विश्वास करना नहीं है, बल्कि मानवीय क्षमताओं के प्रगतिशील विकास में विश्वास करना है। राहुल की इतिहास दृष्टि के केन्द्र में प्रगति की यही धारणा है। इसलिए उनका इतिहास चिन्तन प्रगति के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

सन्दर्भ

1 रोमिला थापर भारत का इतिहास, पृ० 13
2 घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० 1
3 मैं कहानी लेखक कैसे बना ? राहुल निबंधावली, पृ० 2-3
4 कार्ल मार्क्स, ए कण्ट्रीब्यूशन टु द क्रिटिक आफ पालिटिकल इकोनामी
5 मार्क्सवादी दर्शन, पृ० 197

6 परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति, पृ० 29
7 वही प० 44
8 वही, प० 50
9 निशा वोल्गा से गंगा पृ० 19 20
10 वही प० 23
11 सवेरा संघर्ष गर्जन, प० 12
12 परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति, पृ० 45 46
13 दिवा वोल्गा से गंगा, पृ० 35 36
14 वही पृ० 32
15 राहुल सांकृत्यायन मानव समाज, पृ० 28
16 राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं (दुनिया को) बदलो, पृ० 29
17 अमृताश्व वोल्गा से गंगा प० 50 51
18 राहुल सांकृत्यायन मानव समाज पृ० 47
19 उदय, सवेरा-संघर्ष गर्जन, पृ० 27 29
20 मानव समाज प० 43
21 वही, प० 54
22 वही, प० 51
23 पुरुहूत वोल्गा से गंगा पृ० 72
24 रिस डैविड्स, बौद्ध भारत, प० 40
25 डॉ० रामविलास शर्मा मानव सभ्यता का विकास, प० 56
26 पाण्डुरंग वामन काणे हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, खण्ड II, भाग 1, पृ० 180
27 डॉ० रामविलास शर्मा, मानव सभ्यता का विकास, पृ० 79
28 राहुल सांकृत्यायन, मानव समाज प० 82
29 राहुल सांकृत्यायन सिंह सेनापति, प० 75
30 राहुल सांकृत्यायन जय यौधेय, प० 17
31 राहुल सांकृत्यायन, सिंह सेनापति पृ० 70
32 वही प० 70
33 राहुल सांकृत्यायन मानव समाज, पृ० 83
34 डॉ० रामविलास शर्मा, मानव सभ्यता का विकास पृ० 61
35 वही प० 65
36 वही
37 वही
38 वही
39 रांगेय राघव महायात्रा गाथा (भाग 2), पृ० 108
40 चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू प० 619
41 राहुल सांकृत्यायन, सिंह सेनापति, प० 149

42 राहुल साकृत्यायन, सिंह सेनापति, पृ० 149
43 वही, पृ० 206
44 राहुल साकृत्यायन, मानव समाज, पृ० 30 31
45 राहुल साकृत्यायन, जय यौधेय, पृ० 48 49
46 गुरदत्त, बहती रेता
47 रामविलास शर्मा, मानव सभ्यता का विकास, पृ० 65
48 नागदत्त, वोल्गा से गगा, पृ० 167
49 वही, पृ० 179
50 रागेय राघव, महायात्रा गाथा (भाग-2), पृ० 238
51 राहुल साकृत्यायन, मानव समाज, पृ० 73
52 राहुल साकृत्यायन, प्रवाहण, वोल्गा से गगा पृ० 133
53 राहुल साकृत्यायन, जय यौधेय, पृ० 72
54 राहुल साकृत्यायन, मानव समाज, पृ० 102
55 राहुल साकृत्यायन, प्रवाहण, वाल्गा स गगा पृ० 141
56 राहुल साकृत्यायन, मानव समाज पृ० 102-103
57 राहुल साकृत्यायन, सिंह सेनापति, पृ० 39 40
58 राहुल साकृत्यायन, जय यौधेय पृ० 71-72
59 रागेय राघव, महायात्रा गाथा (भाग-2), पृ० 54
60 वही, पृ० 59
61 भगवतशरण उपाध्याय, क्रान्ति, सवेरा-सघष गजन पृ० 275
62 वही पृ० 278
63 राहुल साकृत्यायन, जय यौधेय, पृ० 25
64 डा० मजूमदार, साम्राज्य एकता का युग, पृ० 337
65 डा० रामविलास शर्मा, मानव सभ्यता का विकास पृ० 83
66 डा० काशीप्रसाद जायसवाल, हिन्दू राजतन्त्र पृ० 273
67 वही, पृ० 204
68 राहुल साकृत्यायन, प्रभा, वोल्गा से गगा, पृ० 200
69 वही, पृ० 201-2
70 राहुल साकृत्यायन, चक्रपाणि वोल्गा से गगा, 268 69
71 राहुल साकृत्यायन, मानव समाज, प० 56
72 फ्रेडरिक एगेल्स, परिवार, निजी सम्पत्ति एव राज्य की उत्पत्ति, प० 62 63
73 राहुल साकृत्यायन सिंह सेनापति, पृ० 75
74 राहुल साकृत्यायन जय यौधेय, पृ० 36
75 भगवतशरण उपाध्याय, विलासी, सवेरा सघष गजन, प० 175-76
76 राहुल साकृत्यायन, चक्रपाणि वोल्गा स गगा, प० 261 62
77 राहुल साकृत्यायन, दुर्मुख वोल्गा से गगा, पृ० 245 46

78 राहुल सांकृत्यायन, डीह् बाबा, सतमी के बच्चे, पृ० 10
79 राहुल सांकृत्यायन, सुदास, वोल्गा से गंगा, पृ० 121
80 राहुल सांकृत्यायन सुपर्ण यौधेय, वोल्गा से गंगा, पृ० 234 35
81 राहुल सांकृत्यायन, जय यौधेय, पृ० 113
82 राहुल सांकृत्यायन, मधुर स्वप्न, पृ० 10
83 वही पृ० 265
84 वही
85 वही
86 राहुल सांकृत्यायन, ब धुल मल्ल, वोल्गा से गंगा, प० 156
87 वही, प० 157
88 वही प० 23
89 वही प० 128
90 रांगेय राघव, महायात्रा गाथा (भाग-2), पृ० 781 82
91 वही प० 180
92 भगवतशरण उपाध्याय, विलासी, सवेरा-संघर्ष गर्जन, प० 175
93 रांगेय राघव, महायात्रा गाथा (भाग 3), पृ० 512
94 वही, प० 637
95 राहुल सांकृत्यायन, चक्रपाणि वोल्गा स गगा प० 259
96 वही
97 वही, प० 265
98 वही, प० 263
99 वही, पृ० 259
100 राहुल सांकृत्यायन बाबा नूरदीन, वोल्गा स गगा, प० 280
101 वही प० 277
102 वही
103 डा० रामविलास शर्मा मानव सभ्यता का विकास, पृ० 111
104 राहुल सांकृत्यायन रेखा भगत, वोल्गा से गगा, प० 317
105 ए० बी० कीथ स्पीचेज एण्ड डाक्युमेण्ट्स ऑन इण्डियन पालिसी 1750 1921, खण्ड 1, प० 215
106 राहुल सांकृत्यायन रेखा भगत, वोल्गा से गगा, प० 320
107 वही प० 312
108 वही
109 वही पृ० 314
110 वही प० 316
111 वही प० 328
112 वही

113 रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृ० 249
114 वही
115 राहुल सांकृत्यायन, राय बहादुर, बहुरंगी मधुपुरी पृ० 93
116 सुभाषचन्द्र बोस, द इण्डियन स्ट्रगल, पृ० 90
117 राहुल सांकृत्यायन, सफदर, वोल्गा से गंगा, पृ० 371
118 राहुल सांकृत्यायन, सुमेर, वोल्गा से गंगा पृ० 378 79
119 वही, पृ० 376
120 राहुल सांकृत्यायन, राय बहादुर, बहुरंगी मधुपुरी पृ० 102 3
121 वही, पृ० 103
122 राहुल सांकृत्यायन, पाठ का माहर, बहुरंगी मधुपुरी पृ० 274
123 ए० ज० पी० टेलर, फ्राम नेपोलियन टु स्टालिन पृ० 74
124 वी० आई० लेनिन, सलेक्टेड वर्क्स, पृ० 295
125 राहुल सांकृत्यायन, साहित्यकार का दायित्व, राहुल निबन्धावली पृ० 28
126 राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए पृ० 34
127 राहुल सांकृत्यायन, मानव समाज, पृ० 210 11
128 वही, पृ 211
129 राहुल सांकृत्यायन के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० 19
130 राहुल सांकृत्यायन, मैं कहानी लेखक कैसे बना ? राहुल निबन्धावली, पृ० 4 5
131 ई० एच० कार, इतिहास क्या है ?, पृ० 90 91
132 वही, पृ० 91
133 राहुल सांकृत्यायन, मैं कहानी लेखक कैसे बना ?, राहुल निबन्धावली पृ० 4
134 डॉ नगेन्द्र, काव्य चिन्तन, पृ० 127
135 राहुल सांकृत्यायन के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० 20
136 वही
137 रांगेय राघव, आलोचना, संख्या-3, पृ० 74 75
138 डा० नगेन्द्र, काव्य चिन्तन, पृ० 127
139 डा० सतपाल चुघ, ऐतिहासिक उपन्यास, पृ० 186
140 डा० त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० 362

साहित्य का इतिहास-लेखन

साहित्येतिहास के कच्चे माल की खोज

राहुल सांकृत्यायन की इतिहास-यात्रा का दूसरा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र साहित्येतिहास है। यद्यपि उन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल या आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की तरह विधिवत तथा क्रमिक रूप से हिन्दी साहित्य के इतिहास पर विचार नहीं किया है, लेकिन उनकी कई स्थापनाएँ मौलिक तथा परवर्ती इतिहास लेखन को प्रभावित करनेवाली रही हैं। वे स्थापनाएँ कई मायनों में आज भी प्रासंगिक एवं दिशा निर्देशक हैं। हिन्दी साहित्येतिहास के सन्दर्भ में राहुल का सबसे बड़ा अवदान विलुप्त प्राचीन साहित्य की खोज तथा उनका सम्यक सम्पादन व मूल्यांकन है। यह खोज शिष्ट साहित्य तथा लोक साहित्य दोनों सन्दर्भों में हुई है। इस सन्दर्भ में 'हिन्दी काव्यधारा,' 'दोहाकोश' एवं 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। राहुल अपभ्रंश के रचनाकारों के साहित्यिक अवदान को व्यवस्थित रूप से रेखांकित करनेवाले पहले इतिहासकार विचारक हैं। अब तक अपभ्रंश साहित्य (सिद्ध और जैन साहित्य) की चर्चा हिन्दी की पूर्व पीठिका के रूप में होती रही। राहुल ने उसका सीधा और गहरा सम्बन्ध हिन्दी भाषा और साहित्य से स्थापित किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में अपभ्रंश के सिद्धों-जैनों की रचनाओं को खारिज कर दिया क्योंकि वे "शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकता।"[1] कुछ ऐसा ही निष्कर्ष आचार्य शुक्ल ने भक्तिकाल के निर्गुण सन्तों के बारे में भी दिया है। आचार्य शुक्ल के इस निष्कर्ष के मूल में 'शिक्षित जनता' का आग्रह है। वे साहित्यिकता की कसौटी शिक्षित जनता को मानते हैं। "वास्तव में आचार्य शुक्ल साहित्य की उत्पत्ति उसके व्यापक स्वरूप, स्थायित्व और विकास का आधार सामान्य जनता को मानते हैं लेकिन साहित्य की रचना और बोध के प्रसंग में प्रायः शिक्षित जनता की बात करते हैं। साहित्य के इतिहास में शिक्षित जनता और जनता सम्बन्धी दृष्टिकोण के मूल में मध्यवर्गीय चेतना है लेकिन 'शिक्षित जनता' से शुक्लजी का आशय न तो 'दूध सूँघनेवालों और शहद चाटनेवालों' से है और न जनता का खून चूसनेवालों से।"[2] बहरहाल, राहुल ने

प्रकारान्तर से आचार्य शुक्ल की धारणा को चुनौती दी तथा सिद्धो-जैनियो की रचनाओ को साहित्य की कोटि मे शामिल किया । उन्ही के शब्दो मे, "लाखो नर-नारियो का उनमे रस, एक तरह की आत्म-तृप्ति मिलती थी और आज भी उस तरह की मनोवृत्ति रखनेवाले कितने ही पाठको का वह उतनी ही रुचिकर मालूम होती है, इसलिए उन्हे कविता मानना ही पडेगा।"[3]

राहुल ने सिद्धो व जैनो की कविताओ को साहित्य के अन्तर्गत परिगणित ही नही किया, बल्कि वे अपभ्रंश के अन्य विस्मृत रचनाकारो को भी प्रकाश मे लाए और इस प्रकार हिन्दी साहित्य के आदिकाल में लगभग ढाई सौ वर्षों का इजाफा किया । उन्होने 'हिन्दी काव्य धारा' मे अपभ्रंश के कवियो की ऐतिहासिक महत्ता को रेखांकित करते हुए लिखा है, "अपभ्रंश के कवियो को विस्मरण करना हमारे लिए हानि की वस्तु है। यही कवि हिन्दी काव्यधारा के प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष भास, कालिदास और बाण की सिर्फ जूठी पत्तलें नही चाटते रहे, बल्कि उन्होने एक योग्य पुत्र की तरह हमारे काव्य-क्षेत्र मे नया सृजन किया, नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये, यह स्वयंभू आदि की कविताओ से अच्छी तरह से मालूम हो जायेगा। नये-नये छन्दो की सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कृतित्व है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई सौ ऐसे नये नये छन्दो की उन्होने सृष्टि की, जिन्हें हिन्दी कवियो ने बराबर अपनाया है, यद्यपि सबको नही। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसी के ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं।"[4]

राहुल ने अपभ्रंश के कवि सिद्ध सरहपाद की रचनाओ का हिन्दी छायानुवाद सहित सम्पादन 'दोहा-कोश' के रूप मे स्वतन्त्र रूप से किया है। राहुल का यह एक महत्वपूर्ण शोध कार्य है। इस ग्रन्थ मे सिद्ध सरहपाद की कविता भोट भाषा मे रूपान्तरित है, जिसकी अविकल छाया प्राचीन हिन्दी मे स्वयं राहुलजी ने प्रस्तुत की है। मूल और छाया के साथ भूमिका, पाद टिप्पणियाँ और परिशिष्ट राहुल के कठोर परिश्रम और अध्यवसाय के प्रमाण हैं। भूमिका के अन्तर्गत उन्होने सरहपाद की जीवनी और उनके कृतित्व की चर्चा की है। राहुल ने सरहपाद के कृतित्व का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियो और दर्शन के क्षेत्र मे चल रहे वैचारिक संघर्ष की रोशनी मे किया है। उन्होने सरह की परम्परा का मूल्यांकन करते हुए उनके समकालीन अन्य कवियो पर भी स्फुट रूप से विचार किया है।

विस्मृत प्राचीन साहित्यिक परम्पराओ की खोज के सन्दर्भ मे राहुल की दूसरी महत्वपूर्ण कृति 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' है। इसमे उन्होने 'बन्दानवाज' (1343 ई०) से लेकर 'तुराब दखनी' (1840 ई०) तक की दक्खिनी हिन्दी की रचनाओ का प्रामाणिक संकलन तथा सम्यक् मूल्यांकन किया है। अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक की दक्षिण विजय के साथ जो लाखो मुसलमान सामन्त सैनिक, शिल्पकार आदि के रूप मे दक्षिण गए, उनके ही कारण दक्षिण मे गुलबरगा, गोलकुण्डा और बीजापुर मे खड़ी हिन्दी की कविता उस वक्त शुरू हुई, जिस वक्त मैथिल-कोकिल विद्यापति अपने मधुर गीतो से प्राची को मुखरित कर रहे थे। इस काव्य धारा की प्रौढ़ता का जमाना वही है, जबकि सूर और तुलसी की कविताओ के रूप मे ब्रज भाषा और अवधी की कविताएँ उन्नति के शिखर

पर पहुँचा। राहुल की दृष्टि में दक्खिनी हिन्दी गंगा था। हिन्दी कविता के सूर और तुलसी, वजही, गव्वासी, मुहम्मद कुली कुतुब (1565 1612 ई०) और गौवासी (1625 ई०) थे। यह कविता प्रवाह तब तक निरन्तर होता चला गया, जब तक कि औरंगजेब ने दक्षिण की इन मुसलमानी रियासतों को 1686-1687 ई० में ध्वस्त नष्ट कर दिया। दक्खिनी का अंतिम महाकवि वली (1700 ई०) उर्दू कविता का आरम्भ माना जाता है।[5] राहुल ने इस काव्यधारा के माध्यम से हिन्दी भाषा के विकास में सर्वाधिक अनदे महत्वपूर्ण सवालों पर विचार किया है। उन्होंने खड़ी बोली (हिन्दी) के सर्वप्रथम कवियों के रूप में दक्खिनी कवियों का उल्लेख किया है। उनकी यह मौलिक प्रस्थापना हिन्दी भाषा के विकास विशेष रूप से हिन्दी कविता के विकास के बारे में, हिन्दी साहित्येतिहास में विशेष स्थान रखता है। राहुल ने खड़ी बोली (हिन्दी) में सर्वप्रथम दक्खिनी कविता के ऐतिहासिक योगदान की चर्चा की है और अमीर खुसरो को खड़ी बोली (हिन्दी) के सर्वप्रथम कवि मानने की धारणा का खण्डन किया है। वस्तुतः 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' के प्रकाशन से मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के विकास को समग्रता में समझने की दृष्टि मिलती है। इससे कई अनुत्तरित प्रश्नों का भी सहज समाधान हो जाता है। हिन्दी साहित्य का रीतिकाल मूलतः शहरी शृंगारपरक माना जाता रहा। इस काल के वीर रस के कवि भूषण का कोई समानधर्मा दृष्टिगत नहीं होता, इसलिए वे रीतिकाल के अपवाद ही माने जाते रहे। रीतिबद्ध, रीतिमुक्त या रीति सिद्ध किसी भी धारा में भूषण को खपाना थोड़ा मुश्किल लगा। लेकिन राहुल द्वारा प्रस्तुत 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' पर दृष्टिपात करने से यह मुश्किल हल हो जाती है। इस काव्यधारा में भूषण के समानधर्मा कई वीर-काव्य प्रणेता दृष्टिगत होते हैं। इस प्रकार वीर काव्य फुटकल खाते से निकलकर सामान्य प्रवृत्ति के रूप में दृष्टिगत होता है। इस सन्दर्भ में राहुल ने दक्खिनी के वीर काव्य प्रणेता नसती (1657 ई०) की थोड़ी विस्तृत चर्चा की है। 'नसती जहाँ 'मनोहर मधुमालती' के वृत्तान्त को 'गुल्शनइश्क' के नाम से लिखकर शृंगारी कविता का सफल रचयिता है वहाँ अलीनामा तथा नौ कसीदे (प्रशस्ति काव्य) उसे वीर रस का कवि सिद्ध करते हैं।[6] अलीनामा सुलतान अली आदिल का चरित सा है, जिसमें 1656 से 1666 ई० तक की घटनाएँ वर्णित हैं। इस मसनवी (कथाकाव्य) में औरंगजेब, शिवाजी और मलाबार के राजा के साथ के महत्वपूर्ण युद्ध सम्बन्धी सात कसीदे सम्मिलित हैं। भूषण ने यदि शिवाजी की वीरता का वर्णन किया है तो उसके प्रतिद्वन्द्वी अली आदिल के पनाला में 1661 ई० में शिवाजी पर विजय प्राप्त करने का वर्णन नसती ने 'अलीनामा' के प्रथम कसीदे में किया है। नसती ने इस कसीदे में बादशाह की प्रशंसा और शिवाजी की निंदा, सलाबत जंग के युद्ध का वर्णन और सलाबत खाँ (अली आदिल का सेनापति) का धोखा देना फिर बादशाह के अभियान और विजय का वर्णन किया है। मतिराम बिहारी की तर्ज पर दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा में ता द्वारा रचनाएँ प्रस्तुत की गयी। तबई (1670 ई०) गोलकुण्डा में उस समय अपनी प्रतिभा के जौहर दिखला रहा था जबकि उत्तर में मतिराम और बिहारी सहृदयों को चकित कर रहे थे।[7] ये तमाम रचनाएँ चाहे वे उत्तर की हों या दक्षिण की राज्याश्रय में रची जा रही थीं। इसलिए इनमें एक गजब

की समता दृष्टिगत होती है। वीर और शृंगार दोनों भावों का पल्लवन दरबारी परिवेश में हुआ है।

राहुल ने विस्मृत प्राचीन साहित्य के अन्वेषण तथा आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन के क्रम में कतिपय निबंध भी लिखे हैं जो 'राहुल निबंधावली' तथा 'साहित्य निबंधावली' में संकलित हैं। इन निबंधों का साहित्येतिहास के सन्दर्भ में स्वतंत्र महत्व है। वस्तुतः इन निबंधों का महत्व उन पोथियों से कहीं ज्यादा है, जो कतिपय लोक में कुछ तथ्यों और तिथियों का घटा-बढ़ाकर इतिहास ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत की जाती है। राहुल का मूल चिन्ता विस्मृत प्राचीन साहित्य की खोज और पुनरुद्धार है। इस सन्दर्भ में वे अपने अद्भुत शोधदृष्टि का परिचय देते हैं। तिब्बत में भोट भाषा में उपलब्ध सिद्ध सरहपाद के दोहा का अनुवाद, सम्पादन और विश्लेषण उनके इसी शोधदृष्टि का परिचायक है। वे तिब्बत में ही तालपत्र पर लिखी किसी विदुषी की गीता का जिक्र करते हैं, जिसे एक पुजारी ने मूर्खतावश प्रसाद बाँटने के लिए काटकर टुकड़ा-टुकड़ा कर छोड़ा था। इस तरह से भारतीय शास्त्रीय निधियों का नष्ट होने से राहुल व्यथित हो जाते हैं। वे प्राचीन साहित्य के अनुसंधान तथा रक्षा के क्रम में देश से लेकर विदेश तक एशिया से लेकर यूरोप तक का छान मारते हैं। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण काफी होगा। राहुल मंझन की कृति 'मधुमालती' की प्राचीन प्रतिलिपियों की खोजपरक सूचना देते हुए लिखते हैं, मंझन की 'मधुमालती' का प्रथम फारसी पद्यबद्ध अनुवाद शाहजहाँ के समय 1649 ई० (1059 हि०) में किसी अज्ञात कवि ने 'गुवर मनोहर व मधुमालत' के नाम से किया था, जिसका हस्तलेख ब्रिटिश म्यूजियम (लन्दन) में मौजूद है। मंझन की कृति का दूसरा फारसी अनुवाद आकिल खाँ राजी ने 1654 ई० (1056 हि०) में 'मेहा माह' (सूर्य चन्द्र) के नाम से किया। इसके हस्तलेख लन्दन में इण्डिया आफिस और ब्रिटिश म्यूजियम के अतिरिक्त बोडलियन पुस्तकालय (ऑक्सफोर्ड) तथा पेरिस के बिब्लोथिक नाश्यनाल में मौजूद हैं। तीसरा फारसी अनुवाद माधोदास गुजराती ने सन् 1686 ई० (1098 हि०) में किया, जिसकी एक प्रति इण्डिया आफिस पुस्तकालय में मौजूद है। चौथा गद्य अनुवाद किसी अज्ञात लेखक ने 'मेहा माह' के नाम से किया, जिसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम में है।'[6] राहुल की ये सूचनाएँ उनके अद्भुत बौद्धिक लगन, श्रम और साहस के प्रमाण हैं। मौलिकता का दम्भ भरनेवाले हिन्दी के अनेक साहित्येतिहासकार इस तरह की खोजों से बराबर कतराते रहे हैं। वे सहज उपलब्ध तथ्यों में से ही कुछ घटा-बढ़ाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं।

राहुल ने शिष्ट साहित्य के साथ ही उपेक्षित और विस्मृत होती लोक-साहित्य की परम्परा के अन्वेषण और मूल्यांकन का भी कार्य किया है। उनकी दृष्टि में, 'किसी देश के शिष्ट साहित्य से पूर्णतया परिचित होने के लिए उसके लोक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। शिष्ट साहित्य का लोक साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तविक बात तो यह है कि शिष्ट साहित्य लोक साहित्य का ही विकसित, संस्कृत तथा परिमार्जित स्वरूप है।'[7] लोक साहित्य की इस महत्ता के कारण ही राहुल उसके संकलन एवं मूल्यांकन में दत्तचित्त हुए। 'आदि हिन्दी की कहानियाँ और गाने' उनके लोक साहित्य के

अन्वेषण एवं संरक्षण के प्रयास का प्रमाण है। इस पुस्तक की पूरी सामग्री रामनवाई के माध्यम से एकत्रित की गयी। राहुल ने स्वयं रामनवाई के गाँव जाकर इस सामग्री का संकलन किया। वस्तुतः लोक साहित्य की समृद्ध परम्परा को जीवित रखने की ईमानदार कोशिश का यह एक उदाहरणीय ग्रन्थ है। राहुल ने ख्याति की दृष्टि से गौण, पर भाव की दृष्टि से अतिसम्पन्न भोजपुरी के लोककवि बिसराम के बिरहा का भी संकलन और मूल्यांकन किया है। बिसराम अपनी जवानी के पहले पहर में ही विधुर जीवन जीने के बाद अकाल काल कवलित हो गया। उसका विधुर जीवन की असह्य वेदना बिरहा में फूट निकली। वस्तुतः बिसराम को कवि का हृदय और कल्पना मिली थी, जो जागृत हुई थी अपनी पत्नी के अनन्त वियोग के कारण। राहुल ने बड़े ही भावुक हृदय से बिसराम के बिरहा का मूल्यांकन किया है।

वस्तुतः हिन्दी का लोक साहित्य विराट एवं बहुआयामी है। उसके संग्रह और मूल्यांकन का काम बड़ा ही जटिल है। वह एक व्यक्ति के बस का नहीं है। इसलिए राहुल आग्रह के स्वर में कहते हैं "हरेक शिक्षित एवं संस्कृत महिला और पुरुष का कर्तव्य है कि जो भी सुन्दर लोककाव्य उनके कानों में पड़े, उसे लिपिबद्ध करके सुरक्षित कर दें।"[10] इस कथन से लोक साहित्य के प्रति राहुल का उत्कट लगाव और रक्षा का भाव प्रकट होता है। राहुल ने 'राहुल निबंधावली' तथा 'साहित्य निबंधावली' में हिन्दी के लोक साहित्य पर विचार किया है। उनकी दृष्टि में, "हिन्दी के लोक साहित्य से हम उन सब भाषाओं के लोक साहित्य को लेना चाहिए जिनके शिष्ट साहित्य को हम हिन्दी का साहित्य मानते हैं, जैसे विद्यापति की मैथिली, तुलसीदास की अवधी, सूरदास की ब्रज और पृथ्वीराज की मरुवाणी (मारवाड़ी) का लोक साहित्य। यही नहीं, बल्कि अलिपिबद्ध और अब तेजी से लिपिबद्ध होती ऊपर गिनायी हिन्दी क्षेत्र की अन्य भाषाओं के लोक साहित्य को भी उसमें गिनना होगा।"[11] राहुल ने इसी दृष्टिकोण के तहत 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' (षोडश भाग) का सम्पादन किया है। यह पुस्तक हिन्दी के लोक साहित्य के इतिहास और उसके विपुल रचना संसार पर प्रकाश डालती है। इसके सम्पादकीय वक्तव्य में हिन्दी के विद्वान लेखकों के लोक साहित्य के उपेक्षाभाव की आलोचना करते हुए राहुलजी ने लोक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी साहित्य के अनुशीलन तथा अनुसंधान की प्रासंगिकता और आवश्यकता को रेखांकित किया है।

वस्तुतः साहित्येतिहास के क्षेत्र में राहुल परम्परागत लीक से हटकर इतिहास लेखन के 'कच्चे माल' (विस्मृत काव्य परम्परा) के अन्वेषण और सम्पादन पर दृष्टि केन्द्रित करते हैं। कहना न होगा कि साहित्येतिहास लेखन का यह सबसे बड़ा अवदान है। दुर्भाग्यवश साहित्येतिहास लेखन का दम्भ भरनेवाले इतिहासकार विचारक इस प्रसंग में कतराते हैं। इसलिए अभी तक हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण बातें अबूझी तथा अन्धकार में दबी पड़ी है। राहुल के पूर्व आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने और बाद में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस दिशा में खोजपरक कार्य किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी कृतियां 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के दूसरे संस्करण, 'हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास' और 'हिन्दी साहित्य

का आदिकाल' में राहुल सांकृत्यायन ने प्राचीन साहित्य से सम्बन्धित खोजों के महत्व को रेखांकित किया है और उन पर आधारित अपनी मान्यताएँ निरूपित की है। राहुल द्वारा प्रस्तुत 'कच्चे माल' की सार्थकता और महत्ता को रेखांकित करते हुए आचार्य द्विवेदी ने लिखा है, ' 'स्वयंभू' नामक प्रसिद्ध जैन कवि की अप्रकाशित रचनाओं का अध्ययन करके सुप्रसिद्ध विद्वान प० राहुल सांकृत्यायन ने 'हिन्दी काव्यधारा' नाम का एक उपयोगी संग्रह प्रकाशित किया है। इसमें अब तक के प्राप्त अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी की अनेक रचनाओं के नमूने प्राप्त हो जाते हैं। राहुलजी ने जिन कवियों की रचनाओं का अपने संग्रह में स्थान दिया है, उनकी सूची ही सिद्ध करती है कि अब विद्वानों के सामने काफी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो गयी है।"[12] राहुल ने विस्मृत प्राचीन साहित्य की खोज और सम्पादन तथा विभिन्न रचनाकारों और रचना धाराओं का मूल्यांकन एक सुसंगत इतिहास दृष्टि के तहत किया है, जिसकी विस्तृत समीक्षा आगे की जायेगी।

साहित्य की जनवादी धारणा

राहुल ने साहित्य की जनवादी धारणा को दृष्टिपथ में रखकर साहित्येतिहास पर विचार किया है। साहित्य की इस धारणा के अनुरूप साहित्येतिहास का स्वरूप निर्धारित हुआ है क्योंकि साहित्येतिहास की धारणा का साहित्य की धारणा से गहरा सम्बन्ध होता है। साहित्येतिहास लेखन की विभिन्न प्रणालियों में बुनियादी अंतर साहित्य सम्बन्धी धारणाओं के कारण प्रकट होता है। कला और साहित्य के सम्बन्ध में आमतौर पर यह समझा जाता है कि ये विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न कुछ ऐसे लोगों की सृष्टि होते हैं जो जनता के बीच से नहीं, ऊपर के वर्गों से आते हैं। ऐसी स्थिति में साहित्य के सृजन और आस्वादन की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं का विवेचन इसी जनता के ऊपरी वर्ग का दृष्टिपथ में रखकर किया जायेगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे धुरीण आलोचक इतिहासकार शिक्षित जनता की चित्तवृत्ति का लटका लगाकर प्रकारान्तर से इसी धारणा के शिकार हो गये हैं। राहुल सांकृत्यायन साधारण जनता की अपेक्षा से साहित्य के स्वरूप पर विचार करते हैं। वे लिखते हैं ' संगीत, साहित्य, कला किसी समय कुछ चुनिन्दा आदमियों की चीज समझी जाती थी। बड़े-बड़े सामन्त, राजा और पुरोहित—ही इससे मनोविनोद किया करते थे। पूंजीवादी युग के यन्त्रों के आविष्कार से पुस्तकों, चित्रों, फिल्मों, रिकार्डों के द्वारा कला साहित्य का और व्यापक क्षेत्र में प्रचार हुआ, तो भी कला प्रेमियों की एक चुनिन्दा जमाअत ही बनी रही। यह लम्बी नाकवालों का वर्ग समझने लगा कि साहित्य, संगीत और कला के जनक वही हैं और वही अधिकारी भी हैं। साधारण जनता को पुच्छविषाणहीन साक्षात् पशु बना रखने की उन्होंने कोशिश की। सामन्तों या पूंजीशाही मध्य वित्तकों, बुद्धिजीवियों को कभी यह ख्याल में भी नहीं आया कि कला और साहित्य के जनक वह नहीं हैं, उसी तरह जैसे गेहूँ और कपड़े के।"[13] यह कथन सरलीकृत प्रतीत हो सकता है क्योंकि कला और साहित्य 'उत्पादन' नहीं 'सृजन' है जिसमें समाज के साथ साथ व्यक्ति की भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लेकिन अपने कथन की पुष्टि में राहुल ने भाषा का जो उदा

हरण दिया है उमसे उनका मन्तव्य कुछ स्पष्ट होता है। उन्होंने साहित्य के माध्यम भाषा पर विचार करते हुए लिखा है कि ध्वनि अलकार जिस दृष्टि से भी देखिये भाषा को समृद्ध बनाने में कहावतो, मुहावरो का सबसे बडा हाथ है। वस्तुत भाषा निर्जीव यान्त्रिक तौर से या सीधे तजुमावाले शब्दो के द्वारा हमारे भावो का प्रकट करने में समर्थ नही होती। बल्कि यदि हम अपने शब्दो के प्रयोग के पहले की मानसिक अवस्था पर किसी वक्त भी विचार करे तो मालूम होगा कि भाव बिना शब्द के ही मस्तिष्क की गीली मज्जा के खास तरंगो के रूप में उपस्थित होते हैं और अभिव्यक्ति के लिए शब्दो का ढूढा लगते हैं। इस देरी पर नजर डालने से हम आसानी से समझ सकते हैं कि भाव इन शब्दो के अलग-अलग रूपो में व्यक्त नही हो सकते। भावो को ये वाक्य ज्यादा व्यक्त कर सकते हैं जो अपने शब्दार्थों से दूर तक ध्वनित करते हो। यह सामर्थ्य भाषा में तभी आती है जब उसमें निर्जीव शब्दावलियो की जगह सजीव मुहावरेवाले वाक्य लाये जायें। इन मुहावरो की ओर अगर आप ध्यान दें तो मालूम होगा कि सौ में निन्यानवे से भी ज्यादा के जनक सफेदपोश नागरिक नही साधारण जनता है।'[14] वस्तुत जीवित भाषा जनता के कारखाने में ही ढलती है। जनता द्वारा गढे गये शब्दो मुहावरो और कहावतो को छोडकर यदि साहित्य रचना का प्रयास किया गया, तो वह साहित्य निष्प्राण होगा, इस सम्बन्ध में दो मत नही हो सकते। यदि लेखक चाहता है कि उसकी भाषा अजनबी न हो, उसमें जीवन की विद्युतधारा दौडती रहे, तो उसे जन भाषा से सम्पर्क बनाकर रखना होगा। राहुल ने इसी लिहाज से जनता को साहित्य का जनक कहा है। राहुल की दृष्टि में साहित्यकार का दायित्व जनता की तरफदारी है। 'राजा और राजवश चिडिया रैन बसेरा रखनेवाले होते है, अमर तो है जनता। जिसने उसका पल्ला पकडा, उसी का बेडा पार है।"[15] राहुल ने जनता को प्रगति का असली स्रोत माना है। इसलिए वे प्रगति के हामी लेखको को साधारण जनता का आश्रय लेने की सलाह देते है।

साहित्य समाज संस्कृति

राहुल की साहित्य सम्बन्धी यह दृष्टि प्रकारान्तर से साहित्य की निरपेक्षवादी या रूपवादी धारणा का खण्डन करती है। वे साहित्य को साहित्येतर मूल्यो के स्पर्श से बचाये रखने के पक्षपाती नही हैं। वे साहित्य और उसके इतिहास को अन्तत समाज के आर्थिक राजनतिक-वैचारिक यानि सम्पूर्ण सास्कृतिक ढाचे से जुडा हुआ पाते हैं। साहित्य समाज से अलग थलग कोई चीज नही है। उसका इतिहास समाज के इतिहास से बिल्कुल अलग नही हो सकता। "इसलिए साहित्य के इतिहास के इतिहासकार को समाज के इतिहास के बोध और वैज्ञानिक धारणा की आवश्यकता होती है। समाज के इतिहास के बोध और वैज्ञानिक धारणा के अभाव में साहित्य और समाज के सम्बन्ध का ठीक-ठीक बोध कठिन होगा। समाज के इतिहास की कोई धारणा न होने पर साहित्य का इतिहासकार साहित्यशास्त्र की अन्धे की लाठी की तरह पकडकर अनुमान और अटकलबाजी के कदमो से साहित्य के इतिहास की यात्रा करने का प्रयास करता है। यह समझना बहुत मुश्किल नही है कि ऐसी

यात्रा के कैसे परिणाम हो सकते हैं।"[17] राहुल इस अनुमान और अटकलबाजी से बचते है, क्योंकि वे समाज के इतिहास की वैज्ञानिक धारणा की अपेक्षा मे साहित्येतिहास लेखन करते हैं। उन्होंने 'हिन्दी काव्यधारा' तथा 'दोहा कोश' दोनो कृतियो मे तफसील से सम्पूर्ण राजनीतिक सांस्कृतिक परिदृश्य को सामने रखा है।

कालजयी कृतियो के सन्दर्भ म भी साहित्य और समाज का सम्बन्ध विचारणीय है। राहुल की दृष्टि मे कला-कृतियाँ अपने सामाजिक ऐतिहासिक सन्दर्भ की उपज होती हैं, लेकिन कालजयी कृतियाँ अपने सन्दर्भ से परे भी सार्थक होती है। उन्होंने स्वयभू के 'पउम चरिउ' और तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के कालजयीपन की चर्चा करते हुए लिखा है, "राम के हाथो मुक्ति पानेवालो का जब हमारे देश मे नाम भी नही रह जायगा, तब भी तुलसी की कद्र होगी। स्वयभू के धर्म (जन) का अस्तित्व भी न रहने पर स्वयभू नास्तिक भारत का महान कवि रहेगा। उसकी वाणी मे हमेशा यह शक्ति बनी रहेगी कि कही अपने पाठको को हर्षोत्फुल्ल कर दे, कही शरीर को रोमाचित बना दे और कही आंसू को भीगने के लिए मजबूर कर दे।"[18] वस्तुत कालजयी कृतियो मे मानव के स्थायी भावो को उद्बुद्ध करने की अद्भुत क्षमता होती है। उसकी परा ऐतिहासिकता का राज इसी म निहित है लेकिन कालजयी कृतियो की परा ऐतिहासिकता को देखकर यह नही समझना चाहिए (और राहुल भी ऐसा नही समझते) कि उसका अपने समय और समाज से कोई सम्बन्ध नही होता। वस्तुत कालजयी कृतियो का अपने समय और समाज से गहरा सम्बन्ध होता है। जो कृति जितनी ही महान और कालजयी होती है उसका अपने युगवास्तव से उतना ही गहरा लगाव होता है। डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने ठीक ही लिखा है कि कालजयी कृतियो म युगसापेक्षता और युगनिरपेक्षता का विरोध ही नही होता उसकी एकता भी होती है। अपने परिवेश और अपनी परम्परा से सजनात्मक सम्बन्ध स्थापित करनेवाली कृति ही रचनाकार की सजनशीलता (मौलिकता और नवीनता) के कारण कालजयी भी होती है। गहरे स्तर पर समकालीन होकर समकालीन जीवन से सम्बद्ध होकर ही कोई कृति सार्वकालिक बनती है न कि परम्परा और परिवेश से विच्छिन्न होकर।[19]

यह तय है कि साहित्य का अस्तित्व और विकास समाजसापेक्ष होता है। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि साहित्य और समाज के बीच कार्य कारण जैसा सम्बन्ध होता है। "साहित्य समाज का केवल प्रतिबिम्ब ही नहीं होता, वह रचना भी है इसलिए उसमे नया भी होता है। साहित्य के इतिहास के परिवर्तन सामाजिक परिवर्तनो से प्रभावित होते हैं तो कई बार वे सामाजिक परिवर्तनो को प्रभावित भी करते हैं। साहित्य का विकास सामाजिक विकास की सापेक्षता मे होता है, लेकिन कई बार वह सामाजिक विकास की अवस्था की सीमाओ को छोडता हुआ आगे भी बढ जाता है। सामाजिक अन्तर्वस्तु के विकास से साहित्य की अन्तर्वस्तु भी परिवर्तित और विकसित होती है, लेकिन दोनो मे बराबर एकता और समानता अनिवार्य नही होती। नयी अन्तर्वस्तु के अनुरूप रूप विकसित होता है लेकिन पुराने रूप भी बने रहते हैं। कई बार नयी अन्तर्वस्तु के अनुरूप पुराने रूप म परिवर्तन होते हैं तो कभी कभी रूप भी अन्तर्वस्तु को रूपान्तरित करने का प्रयत्न करता है। तात्पर्य यह है कि साहित्य के समग्र रूप के परिवर्तन और विकास का समाज के इतिहास

की सापेक्षता में ही समझा जा सकता है, लेकिन सावधानी और समझदारी के साथ। साहित्य के इतिहास में समाज और साहित्य के सम्बन्ध की पहचान का अर्थ दोनों की एकता, समानता, समरूपता, समानधर्मिता और समकालिकता देखना ही नहीं है, साहित्य के विकास की प्रक्रिया की सापेक्ष स्वतन्त्रता, वस्तुनिष्ठता और निरन्तरता को भी पहचानना है।"[20] राहुल ने अपनी इतिहास यात्रा के क्रम में साहित्य की समाज सापेक्षता के साथ ही इस सापेक्ष स्वायत्तता का भी ख्याल रखा है। वे विधेयवादी की तरह साहित्य को एकदम समाज में निःशेष नहीं कर देते।

राहुल ने साहित्यिक रचना की सापेक्ष स्वायत्तता का ख्याल रखते हुए उसे व्यापक सांस्कृतिक व्यवहार का अंग माना है और साहित्य के विकास का समाज की व्यापक सांस्कृतिक विकास प्रक्रिया के अंग के रूप में देखा है। ध्यातव्य है कि राहुल सांस्कृतिक परम्परा को अविभाज्य, अखण्ड, विशुद्ध और एक नहीं मानते। वे समाज के सांस्कृतिक विकास में अभिजन की सांस्कृतिक परम्परा और जन संस्कृति की परम्परा का फर्क करते हैं। साथ ही, इन दोनों में संघर्ष और टकराव की स्थिति को भी रेखांकित करते हैं। इस सन्दर्भ में उनकी सहानुभूति जन संस्कृति के पक्षधर रचनाकारों के प्रति रहती है। उन्होंने साहित्य के विकास में जन संस्कृति और उसके पक्षधर रचनाकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका की खोज और मूल्यांकन करते हुए उसे ही समाज की वास्तविक, जीवन्त और विकासशील संस्कृति माना है।

परम्परा का अनुशीलन

साहित्येतिहास का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष साहित्यिक परम्पराओं के उदय, परिवर्तन और विकास से जुड़ा होता है। अनेक परम्पराओं के आपसी संघर्ष और सामंजस्य के बीच से परम्पराओं की प्रगति की प्रक्रिया चलती है। परम्परा के विकास में बराबर निरन्तरता ही नहीं होती, कई बार अन्तराल की स्थितियाँ भी आती हैं। साथ ही परम्पराओं के विकास की प्रक्रिया में सामंजस्य के अतिरिक्त अन्तर्विरोध भी होते हैं। इसलिए डॉ० मैनेजर पाण्डेय का विचार है कि साहित्य के इतिहास में परम्पराओं के विकास पर विचार करते समय निरन्तरता और अन्तराल तथा सामंजस्य और संघर्ष के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध की पहचान आवश्यक है। कई बार साहित्य की परम्पराओं में परिवर्तन बाहरी प्रभावों से भी प्रेरित होते हैं, इसलिए परम्परा के विकास के सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार के प्रभावों का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। साहित्य की परम्पराओं के परिवर्तन और विकास में सामाजिक परिवर्तन और विकास की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः साहित्यिक परम्पराओं की समाजसापेक्षता को भूलकर साहित्य संसार के दायरे में ही साहित्यिक परम्पराओं के उदय और विकास की खोज करना रूपवाद की ओर जाना है। इसी प्रसंग में एक बात यह भी विचारणीय है कि परम्परा की सार्थकता वर्तमान रचनाशीलता को गति और विकास देने में है, उसके पैरों की बेड़ी बनने में नहीं। परम्परा का मूल्यांकन वर्तमान रचनाशीलता के सन्दर्भ में होना चाहिए, समकालीन रचनाशीलता के ऊपर परम्परा को प्रतिष्ठित करने के

लिए नही। जो इतिहासकार परम्परा और अपने युग की रचनाशीलता के रचनात्मक द्वन्द्व की उपेक्षा करके, वर्तमान रचनाशीलता के विकास के सन्दर्भ मे परम्परा की सार्थकता-निरर्थकता का विवेक न करके केवल परम्परा की महानता स्थापित करता है, वह परम्परा वादी इतिहास दृष्टि का परिचय देता है।[1]

राहुल ने अपनी इतिहास-यात्रा के क्रम मे परम्परा सम्बन्धी इस सम्पूर्ण जटिलता को दृष्टिपथ म रखा है। वे परम्परा को अविभाज्य, अखण्ड नही मानते। उन्होने हिन्दी साहित्य के आदिकाल के सन्दर्भ म सिद्ध, जैन और इन दोनो से इतर (वीर और श्रृंगार काव्य प्रणेताओं) की काव्य परम्पराओ का उल्लेख किया है। दक्खिनी हिन्दी के सन्दर्भ मे सूफ़ी काव्य, श्रृंगारिक काव्य और वीर काव्य की परम्पराओ का उल्लेख किया है। ये विविध काव्य परम्पराएँ भी अखण्ड और अविभाज्य नही हैं। राहुल ने इन विविध काव्य परम्पराओ की निरन्तरता और अन्तराल, सामंजस्य और संघर्ष को रेखांकित किया है। साथ ही इन विविध काव्य परम्पराओ के उदय और पराभव के सामाजिक आधारो की भी खोज की है। वस्तुत सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियाँ किसी साहित्यिक परम्परा या प्रवृत्ति के उदय, विकास एव पराभव मे निर्णायक भूमिका अदा करती हैं। ये परिस्थितियाँ इतनी बलवती होती हैं कि बिल्कुल भिन्न रुचि और संस्कारवाले रचनाकारो को भी अपनी अनुरूप साहित्यिक धारा की लपेट मे ले आती है। वीर काव्य परम्परा के उदय की चर्चा करते हुए राहुल ने इसका स्पष्टीकरण किया है। इस काव्य परम्परा की पृष्ठभूमि मे आक्रमणो का अनवरत सिलसिला है। आक्रमणो का सिलसिला इस्लामी आक्रान्ताओ ने तो चलाया ही, देशी सामन्तगण भी आपस मे एक-दूसरे पर आक्रमण प्रत्याक्रमण कर रहे थे। चाहे अनचाहे इस आक्रमण-यज्ञ मे शासितो को भी शामिल होना पडा। साहित्य-क्षेत्र मे इसका दबाव पडा और वीर काव्य का प्रणयन शुरू हुआ। चारणो ने अपने आश्रयदाताओ के रण कौशल को बढा चढाकर पेश किया। यह दबाव इतना व्यापक हुआ कि 'जैन गृहस्थ ही नही जैन मुनि (हेमचन्द्र) भी तलवार की महिमा गाने लगे, भला दिग्विजयो के जमाने मे अहिंसा को कसे लेकर चला जा सकता था।'[2] राहुल ने निर्गुणवाद के उदय और विकास के सन्दर्भ मे भी राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियो की प्रभावी भूमिका को रेखांकित किया है।

राहुल ने विविध काव्य-परम्पराओ के विकास का अध्ययन सामन्तवाद विरोधी और समर्थक विचारधाराओ के रूप मे किया है। उनकी सहानुभूति सामन्तवाद विरोधी काव्य परम्परा के प्रति रही है। अपनी इसी सहानुभूति के कारण राहुल ने सिद्धो की रचनाओ पर तफ़सील से विचार किया है क्योकि एक सीमा तक वे सामन्तवाद विरोधी थे। उन्होंने इस सिद्ध-काव्य परम्परा के विकास का निर्गुण काव्य मे रेखांकित किया है। कहना न होगा कि यह जनोन्मुखी काव्य-परम्परा की निरन्तरता का अनुशीलन है। राहुल ने सिद्ध सरहपाद की चिन्तन परम्परा का विकास निर्गुण काव्य धारा म रेखांकित करते हुए लिखा है—"सरह ने अपनी कविता म कुछ नयी मान्यताएँ स्थापित की, जिनका पता उनसे पहले नही मिलता, यद्यपि उनका अस्तित्व लोक काव्य मे रहा होगा। यही मान्यताएँ गोरख, कबीर, नानक, दादू आदि सभी सन्तो मे पायी जाती हैं। यही आगे चलकर

काव्य की कसौटी बन गई। इनमें स्वच्छन्दतावादी, उलटबांसियाँ भी शामिल हैं।"[23] राहुल ने सरह की उलटबांसियों और धार्मिक बाह्याडम्बर व पाखण्ड के खण्डन से सम्बद्ध रचनाओं की तुलना कबीर की रचनाओं से करते हुए परम्परा की निरन्तरता को रेखांकित किया है। सरह ने जिस सहज और अन्न साधना का प्रतिपादन किया उसका विकास कबीर की विचारधारा में दिखायी पड़ता है।

राहुल सांकृत्यायन ने रामकाव्य की परम्परा की निरन्तरता को भी रेखांकित किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने स्वयंभू और तुलसीदास पर विचार किया है। वे लिखते हैं 'स्वयंभू और तुलसी दोनों महान कवियों की कृतियों में कितनी ही बातों में समानता है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि गोसाईंजी ने अपने पूर्वज अपभ्रंश कवि की चीजें चुपचाप ले ली हैं। गोसाईंजी ने अपनी कथा और प्रसंग अध्यात्म रामायण से लिया है, पर यह कविता में बिल्कुल स्वतन्त्र हैं। अपने पूर्वजों के ऋण को वह स्वीकार करते हैं। बहुत सम्भव है उन्होंने स्वयंभू की रामायण (पउम चरिउ) को देखा था। वह उस समय प्रचलित थी यह तो इसी से मालूम होगा कि इसकी सबसे पुरानी प्रति (भण्डारकर इंस्टीट्यूट) सम्वत 1621 (ई० 1564) जेठ सुदी 10 बुधवार को गोपाचल (ग्वालियर) में लिखी गयी अर्थात 'रामचरित मानस' आरम्भ करने से दस वर्ष पहले। शायद अपने 'रामचरित मानस' के स्रोतों के बारे में लिखते 'नानापुराणनिगमागमसम्मत यद रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि" में वही अन्यत्र से इसी रामायण की ओर संकेत है। आखिर पुराण, निगम आगम के बाद रामायण सम्बन्धी ब्राह्मण साहित्य बच क्या रहता है? इतने ही से सन्तोष न करके वह प्राकृत (अपभ्रंश) कवियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं

"कलि के कबिन्ह करउ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुनगामा।
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने।
(बालकाण्ड, 13)

प्राकृत और अपभ्रंश का फरक न करना हाल तक देखा जाता रहा है इसलिए यहाँ प्राकृत कवि से अपभ्रंश ही अभिप्रेत है।'[24] राहुल ने स्वयंभू की ओर गोस्वामीजी के संकेत के बारे में 'रामचरित मानस' के अन्त में आनेवाले इस प्रथम श्लोक का उल्लेख किया है

'यत्पूर्व प्रभुणा कृत सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गम,
श्रीमद्रामपदाब्ज भक्तिमनिश प्राप्त्यै तु रामायणम्।"

राहुल की दृष्टि में शम्भु स्वयंभू का संस्कृत रूप हो सकता है। शायद शम्भु और स्वयंभू के श्लेष के लिए एक शब्द लिया हो आखिर विशेषण में प्रभु और सुकवि का प्रयोग इसी ख्याल से किया—शम्भु के लिए प्रभु और स्वयंभू के लिए सुकवि। शंकर के लिए सुकवि का प्रयोग बेकार होगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं। गोस्वामीजी पर नकल करने का आरोप कभी नहीं किया जा सकता, पर स्वयंभू की कृति ने प्रेरणा दी, इसे मानने में कोई हर्ज नहीं। ऐसी कृतियों के अभ्यास का ही परिणाम है—कहीं कहीं दोनों कृतियों में आपातत समानता।[25] राहुल ने तफसील से 'मानस' के बालकाण्ड, सुन्दरकाण्ड लंकाकाण्ड आदि काण्डों के विविध प्रसंगों को स्वयंभू के पउम चरिउ से प्रभावापन्न दिखलाया है। ध्यातव्य है कि राहुल ने इस प्रसंग में परम्परा के नैरन्तर्य को गतिशील रूप में रेखांकित

किया है।

राहुल अपभ्रंश परम्परा विशेषकर सिद्धों की भाव व भाषा परम्परा के हामी हैं। इसका कारण उसका जनोन्मुखी होना है। मध्यकालीन जिन कवियों ने इस परम्परा से अपने को काट लिया उनकी राहुल ने आलोचना की है। वे लिखते हैं, "हमारे मध्यकालीन कवियों ने अपभ्रंश के कवियों को भुला दिया और वह प्रेरणा लेने लगे सिर्फ संस्कृत के कवियों से। हमारे साहित्य को उनकी (अपभ्रंश कवियों की) जो ऐतिहासिक देन है, उसे भुलाकर, कड़ी को छोड़कर सीधे संस्कृत के कवियों से सम्बन्ध स्थापित करना हमारे साहित्य और हिन्दी भाषा के लिए हानिकर सिद्ध हुआ है।" [6] इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि राहुल संस्कृत कवियों से सम्बन्ध जोड़ने के विरोधी हैं। वे लिखते हैं, "हम संस्कृत कवियों से सम्बन्ध जोड़ने के विरोधी नहीं हैं लेकिन हम इस बीच की कड़ी जो हमारी अपनी ही कड़ी है, को लेते हुए संस्कृत के प्राचीन कवियों के साथ सम्बन्ध जोड़ना होगा, तभी हम ऐतिहासिक विकास में पूर्ण लाभ उठा सकेंगे।" [7] भक्तिकाल की सगुण काव्यधारा ने एक सीमा तक और रीतिकाव्य धारा ने पूरी तरह अपभ्रंश की परम्परा से विच्छिन्न होकर संस्कृत की परम्परा से अपना नाता जोड़ा। यह कितना हानिकर हुआ, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

एक सही इतिहास दृष्टि की माँग के अनुसार राहुल ने हर समय परम्परा का मूल्यांकन वर्तमान रचनाशीलता के सन्दर्भ में किया है। वे समकालीन रचनाशीलता के ऊपर परम्परा को प्रतिष्ठित नहीं करते। वे परम्परा को रूढ़ि से अलगाते हुए उसके श्रेयस्कर तथा प्रगतिशील पक्षों का उद्घाटन करते हैं। वे प्रगतिवादी दौर के कुछ अति उत्साही लेखकों-आलोचकों की तरह हिन्दी-साहित्य की सम्पूर्ण परम्परा को ही प्रतिक्रियावादी और दकियानूसी कहकर नकारते नहीं। मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर और रजिया बेगम ने लन्दन में 1935 ई० में जिस भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की उसके घोषणा पत्र में हिन्दी के अतीत को प्रतिक्रियावादी और लज्जाजनक कहा गया। दरअसल लज्जाजनक हिन्दी का अतीत नहीं बल्कि यह वाक्य है। परम्परा की गलत समझ से ऐसे ही लज्जाजनक वक्तव्य निकलते हैं। यह स्थिति आज के कुछ अति उत्साही मार्क्सवादियों की भी है जिन्हें अपनी परम्परा आछी लगती है और उस आक्षेपन को दूर करने के लिए विदेशी साहित्य का मुँह ताकते हैं। यह और बात है कि विदेशी साहित्य में भी उनकी गति 'राम भरोसे' है। इसके विपरीत राहुल ने अपनी गतिशील साहित्यिक परम्परा के दाय को स्वीकार कर उसके सम्यक् विकास की चर्चा की है। वे लिखते हैं, 'हमारे लिए देश और काल दोनों के प्रति विशाल दृष्टि रखना सबसे अधिक आवश्यक है। ध्यान रखना होगा कि हम वाल्मीकि, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति, बाण, सरह, स्वयंभू, कबीर, विद्यापति, तुलसी, हरिश्चन्द्र के उत्तराधिकारी हैं। योग्य सन्तान वह है जो पिता के वैभव को और अधिक बढ़ाती है। रवीन्द्र ने ऐसा करके हमारे सामने बड़ा उदाहरण रखा। पन्त और निराला ने दिखलाया, कि गंगा को छोड़न का फिर मुक्त प्रवाह में कैसे परिणत किया जा सकता है।' [24]

सामन्तवाद विरोध   राहुल की केन्द्रीय चिन्ता

राहुल की साहित्येतिहास दृष्टि के केन्द्र म सामन्तवाद विरोध है। उन्होंने इसी परिप्रेक्ष्य मे हिन्दी साहित्य के इतिहास पर विचार किया है। उन्हें जहाँ कही भी सामन्तवाद के विरुद्ध आवाज सुनायी पडी है उसे चट से रेखांकित कर लिया है। राहुल न स्वयभू की रचनाओ म नारी के सन्दर्भ मे सामन्तवाद विरोधी चेतना का रेखांकित किया है। स्वयभू का सामन्ती जीवन से परिचय था। ' उन्होंने राष्ट्रकूटा के रनिवास और उनके आमोद प्रमाद को नजदीक स देखा था। वहाँ परदा बिल्कुल नही था, इसलिए और सुविधा थी। उसी सौन्दर्य को उसन रावण और अयाध्या क रनिवासा के सौन्दर्य के रूप मे चित्रित किया है।'[9] सामन्ती जीवन से गहरे स्तर पर परिचित होने के कारण ही स्वयभू सामन्ती शोषण की बारीकिया का समझ पाये हैं। यह समझ उनकी रचनाओ मे विभिन्न स्तरो पर व्यक्त हुआ है। उन्होंने नारी के सन्दर्भ म सामन्ती मूल्य और नैतिकता विरोधी तेवर प्रकारान्तर से सीता के सन्दर्भ मे व्यक्त किया है। "स्वयभू ने सीता का जो रूप रावण को जवाब देते और अग्नि परीक्षा के समय चित्रित किया है, पीछे उसका कही पता नही लगता।"[30]

राहुल न पुष्पदन्त की रचनाओ म निहित सामन्तवाद विरोधी स्वर का भी रेखांकित किया है। *पुष्पदन्त ने सामन्तो की सक्षिप्त किन्तु अति कठोर आलोचना की है।* प्राचीन साहित्य म गणतन्त्रात्मक व्यवस्था के समर्थन और राजतन्त्रात्मक व्यवस्था के विरोध के रूप म भी सामन्तवाद विरोधी चेतना व्यक्त हुई है। इस चेतना से सम्पन्न रचनाकार प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था से जुडी संस्कृति, जातीयता आदि के प्रति रचनात्मक सहानुभूति व्यक्त करता है और उसे गौरवान्वित भी करता है। इस सन्दर्भ म राहुल ने पुष्पदन्त की चर्चा करते हुए लिखा है कुछ ही शताब्दियो पहले अपनी प्रजातन्त्रीय स्वतन्त्रता स वंचित मगर अब भी जब-तब लडती रहनेवाली यौधेय की भूमि का इतना आकर्षक वर्णन और अन्त मे उत्तर कुरु की धनी गरीब रहित दास राजा शून्य दिव्य मानव भूमि की भारी तारीफ बतलाती है कि पुष्पदन्त का व्यक्तित्व किसी दूसरी ही तरह का था, जिसके लिए उस काल की परिस्थिति अनुकूल नही थी।"[31]

राहुल अपनी सामन्तवाद विरोधी चेतना के कारण ही सिद्धो, विशेषकर सरहपाद की सामन्तवाद विरोधी प्रवृत्ति का रेखांकित कर पाये हैं। राहुल सामन्ती रूढियो और पाखण्डो का एकदम बर्दाश्त नही करते और जहाँ कही इसके भजन की गुंजाइश दिखती, वे अपनी सम्पूर्ण बौद्धिक सहानुभूति प्रकट करते। सिद्ध कवि उन्हे इसलिए प्रिय थे कि ' वे पुरानी रूढियो पुरान पाखण्डो के बहुत विरोधी थे।' इस सन्दर्भ म उन्होंने गदगद होकर सिद्ध सरहपाद की चर्चा की है, "सरह किसी वक्त नालदा के एक बडे प्रतिष्ठित पण्डित थे। मगर जब उन्हें वहाँ का जीवन दमघोटू लगने लगा तो उन्होंने सबकुछ को लात मारा, भिक्षुओ का बाना छोडा, अपनी (ब्राह्मण) नही किसी दूसरी छोटी जाति की तरुणी को लेकर खुल्लम खुल्ला सहजयान का रास्ता पकडा। सरह ने सिर्फ दूसरे ही पन्थो के पाखण्डो का खण्डन नही किया, बल्कि बौद्धो का भी नही छोडा।'[32] सरह की यह विद्रोहात्मकता

उनकी कविताओं में बड़ी प्रखर रूप में व्यक्त हुई है। उन्होंने मुक्ति ज्ञान आदि प्राप्त करने के पाखण्ड पर भयानक प्रहार किया है यदि नग्न रहने से मुक्ति हो, तो कुत्ते और सियार भी मुक्त हो जायेंगे। मोर-पंख ग्रहण करने से यदि मोक्ष हो, तो मोर और चमर भी मुक्त हो जायेंगे।" राहुल ने ठीक ही लिखा है कि सरह विद्रोही थे। राजनीतिक विद्रोही नहीं, विचारों की दुनिया के विद्रोही और कितने ही अंशों में सामाजिक विद्रोही भी। उन्होंने अपने 'दोहा कोश चर्या गीत' के पहले बारह दोहों में अपने समय के धार्मिक सम्प्रदायों और उनके विचारों का खण्डन किया है।[33] कहना न होगा कि सरहपाद की विद्रोहात्मकता मूलतः सामन्ती मूल्य एवं नैतिकता के प्रति है। सरहपाद की इस विद्रोहात्मकता की अपनी कुछ सीमाएँ भी रही हैं। ये सीमाएँ प्रकारान्तर से सामन्तवाद विरोधी संघर्ष की धार को कुन्द करती हैं। सामन्तवाद विरोधी चेतना से सम्पन्न राहुल इस सन्दर्भ में सरहपाद की आलोचना भी करते हैं। लेकिन वे अतिक्रान्तिकारियों के विपरीत सरह की सीमाओं पर ऐतिहासिक सन्दर्भ में विचार करते हैं।

राहुल के सामन्तवाद विरोधी अभियान का दूसरा पक्ष पारलौकिकता के खण्डन और लौकिकता के आग्रह से सम्बद्ध रचनाओं की प्रशंसा में देखा जा सकता है। वे सिद्धों के क्षणिकवादी दर्शन जन्य सांसारिक भोगों का समर्थन करते हैं। 'उनकी कविता में रहस्यवाद है मगर निराशावाद उसे छू नहीं गया है। वह काया को मल मूत्र पूर्ण गन्दी चीज नहीं बल्कि तीर्थ की तरह पवित्र मानते हैं, सब तरह के सांसारिक भोगों को छोड़ने नहीं ग्रहण करने की शिक्षा देते हैं। शायद इसमें उनका क्षणिकवादी दर्शन कारण रहा हो। संसार की सभी वस्तुएँ क्षण-क्षण बदलती रहती हैं, उनमें संयोग वियोग होता रहता है लेकिन जगत की सारभूत यह क्षणिकता बुरी नहीं है, इसी से जगत का वैचित्र्य जगत का सौन्दर्य कायम है। अतएव क्षणिक होने से जगत उपेक्षणीय नहीं है।'[34]

सरह की रचनाओं में लौकिकता का स्वीकार सबसे अधिक है। सरह की सबसे बड़ी देन है सहज या नैसर्गिक जीवन पर जोर देना। राहुल ने इस प्रसंग में गदगद होकर सरह का विवेचन किया है। उन्होंने सरह की रहस्यवादी कविताओं में भी ऐहिकता की छौंक को रेखांकित किया है, जोकि सर्वथा उचित ही है। "रहस्योक्तियाँ तो सरह की होनी ही चाहिए, क्योंकि वह मूलतः रहस्यवादी विचारक है। इनके श्लेष परमपद-परक होने पर भी साधारण कामुकता को भी प्रकट करते हैं।'[35] राहुल की दृष्टि में सरह जीवन के भोगों को त्याज्य नहीं मानते। हाँ, उनमें आसक्ति त्याज्य है। उपनिषद् के सन्तों ने उनसे डेढ़ हजार वर्ष पहले ज्ञानी को 'बाल्येन तिष्ठासेद' का उपदेश दिया था। सरह भी कहते हैं 'वैसे रहो जैसे बालक रहता है।' आसक्ति और छल पाखण्ड के जीवन के वह विरोधी थे। इसे उन्होंने आजकल के कितने ही महात्माओं की तरह दूकान चलाने के लिए नहीं इस्तेमाल किया। बल्कि वह स्वयं वैसा जीवन बिताते थे। सरह की कविताओं में रहस्यवादी उड़ान के बावजूद ऐहिक जीवन मूल्यों का स्वीकार है। उनके विचार में देह सबसे बड़ा तीर्थ है। इसी के भीतर सरस्वती, सोमनाथ, गंगा सागर बनारस, प्रयाग, क्षेत्र, पीठ, उपपीठ हैं। वे संसार को त्याज्य नहीं बतलाते। राहुल ने ठीक ही लिखा है कि भव (संसार) और निर्वाण को एक बतला सरह ने निर्वाण के आकर्षण को कम कर ऐहिक

जीवन के मूल्य को बढ़ाया इसीलिए भोगो को त्याज्य नहीं, ग्राह्य ठहराया तथा जगत् को सहजानन्द-पूरित मानने पर जोर दिया— भव णिब्वाणे किम्पि ण दूरा (161) अथवा "मुक्तावधि जे सअल जगु णाणि जिवद्धा भावि' (80)। बन्धन का भय दिखला आतंकित कर निर्वाण के पीछे पागल करने की जो प्रवृत्ति धर्मनायको मे देखी जाती थी, उसकी व्यर्थता को बतलाकर सरह न लोगो को निडर करना चाहा। न जगत् का, न देह का। उन्होंने गन्दा कहा, बल्कि एसे विचारो का विरोध करते कहा—'जगु सहावहिं सुद्ध'।[36] सरह की दृष्टि मे मुक्ति स्वत सिद्ध वस्तु है। शकराचार्य ने भी परमार्थ मे यही माना है, क्योंकि जीव की कल्पना मिथ्या है, परमार्थ मे एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। सरह न ब्रह्म या किसी सनातन एकरूप सत्य को नहीं माना न जगत के भोगो को झूठा और त्याज्य कहा। जगत की क्षणिक किन्तु मूल्यवान स्थिति को स्वीकार करते उन्होंने जगत के महत्त्व को कहा और नकद को छोड़ उधार या प्रत्यक्ष को छोड़ परोक्ष के पीछे दौड़ने की मूर्खता बतलाया। सासारिकता का आग्रह सरहपाद के अतिरिक्त अन्य सिद्ध रचनाकारो मे भी समावेश दृष्टिगत होता है। इसकी चर्चा 'हिन्दी काव्यधारा' मे करते हुए राहुल लिखते हैं, "वह निराशावाद योग वैराग्य मे लोगो का पिण्ड छुड़ाना चाहते थे और उन्होंने मरने के पीछे मिलनेवाले निर्वाण के पीछे भागनेवाले लोगो के लिए इसी ससार मे स्वाभाविक भोग मय जीवन बिताने का आदर्श उपस्थित किया।"[37]

कहना न होगा कि इस लोक को छोड़ परलोक की आराधना अन्तत शासक वर्ग के लिए हितकारी सिद्ध होती है। मनुष्य इस ससार को माया समझ शोषण, उत्पीड़न सबको नजरअन्दाज कर देता है और अपना ध्यान परमेश्वर मे केन्द्रित कर देता है। फलत शोषण उत्पीड़न जन्य सघर्ष की धार कुन्द हो जाती है। दूसरी ओर शासक वर्ग अपनी जटिल शोषण प्रक्रिया को बरकरार रखते हुए चैन की वसी टेरता है। शासक वर्ग अपने वर्ग हित को ध्यान मे रखकर ही परलोकवादी अवधारणाओं को प्रोत्साहन देता है। पितृ सत्तात्मक युग और सामन्ती युग की सन्धि रेखा पर ध्यान दें, तो शासक वर्ग द्वारा परलोकवादी धारणा के प्रचार प्रसार का राज समझ मे आयेगा। इस प्रसग की सविस्तार व्याख्या पिछले अध्याय मे की जा चुकी है। सामन्तवर्ग ने अपने भोग को अक्षुण्ण रखने के लिए परलोकवाद का ताम झाम खड़ा किया। राहुल इस तथ्य को दृष्टि पथ मे रखते हैं इसीलिए जहा कहीं उसके खण्डन तथा लौकिकता का आग्रह दिखायी पड़ा, उसे रेखांकित किया। कहना न होगा कि इसके पीछे सामन्तवाद विरोधी चेतना और कुल मिलाकर शोषण विरोधी चेतना काम करती है। इस चेतना के कारण ही राहुल ने उन कवियो की आलोचना की है जिनकी रचनाओ मे ससार की मायावादी व्याख्या मिलती है या जिनसे परलोकवाद को प्रोत्साहन मिलता है। उन्ही के शब्दो मे, "कवियों ने ससार तुच्छ है कोई किसी का नहीं माया नरक आदि बातो का प्रचार करके सामन्तो का ही हित किया साधारण जनता और आगे आने वाली पीढ़ी का तो इससे घोर अहित हुआ। उन्होंने उत्पीड़ित प्रजा का पक्ष लेना तो दूर उनके कष्टो तथा कारणो के चित्रण का भी प्रयास नहीं किया।[38] लेकिन राहुल ने ऐसे रचनाकारो को एकदम खारिज नहीं कर दिया। उन्होंने ऐतिहासिक सन्दर्भ मे उन पर विचार किया तथा निष्कर्ष दिया कि 'इसको (ससार

की भाववादी व्याख्या और शोषणमूलक यथार्थ से पलायन—च० भा०) जिम्मेवारी बहुत कुछ तत्कालीन परिस्थिति और समाज पर है।'[39]

'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' के सम्पादन एवं मूल्यांकन के सन्दर्भ में भी राहुल की सामन्तवाद विरोधी दृष्टि दिखायी पड़ती है। उन्होंने उन रचनाकारों की आलोचना की है जो राज्याश्रय में रहते हुए चाटुकारिता को एकमात्र ध्येय मानते हैं। इस सन्दर्भ में 'गौवासी' की चर्चा करते हुए लिखते हैं, "गौवासी की प्रार्थना (राज्याश्रय—च० भा०) अकारथ नहीं गयी। सुल्तान अब्दुल्ला कुतुब ने उसका बहुत सम्मान किया। 1635 ई० में वह दरबार का राज कवि ही नहीं था, बल्कि इसी साल मुहम्मद आदिल शाह (1626-56 ई०) के दरबार में उसे गोलकुण्डा का राजदूत बनाकर भेजा गया। बीजापुर के सुल्तान ने उसकी बड़ी प्रतिष्ठा की, बड़े-बड़े इनाम दिये। गौवासी ने भी सुल्तान की इस कृपा के लिए तारीफ के पुल बाँधने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अपने दूसरे काव्य 'तूतीनामा' में समसामयिक दूसरे दरबारी हिन्दी कवियों की भाँति उसने झूठी तारीफ के पुल बाँधे हैं।'[40] राहुल ने गौवासी की दरबारी मनोवृत्ति और उससे प्रभावापन्न रचनाओं को अनेक सन्दर्भों में रेखांकित कर उसकी आलोचना की है। इस सन्दर्भ में राहुल ने 'सनअती' की भी मरम्मत की है। "इस कवि ने काव्य (किस्सा बेनजीर) करने का प्रयोजन 'यश' से बतलाया है, किन्तु वह 'अथकृते' (धन के लिए) भी था। तभी वह शाहजहाँ की शरण में गया।"[41] यही दुर्गति 'पुशनूद (1646 ई०) की भी हुई। और, उसे भी राहुल ने नहीं बख्शा है।

राहुल ने अपनी सामन्तवाद विरोधी इतिहास दृष्टि के कारण ही भक्ति काव्य की लोकधर्मिता को रेखांकित किया। दूसरी ओर, रीति काव्य की पतनोन्मुख सामन्ती चेतना और उसकी आत्मरति प्रधान जीवनहीनता का विश्लेषण करते हुए उसकी भरपूर आलोचना की। वे लिखते हैं, "गत अर्द्ध शताब्दी हिन्दी कविता के लिए हेमन्त काल था। नायक नायिकाओं की रीतियों के गोरख धन्धे द्वारा सम्मोहित लोग भले ही तारीफ के पुल बाँधते हों, किन्तु इस काल में मस्तिष्क को उद्भावित और हृदय को द्रवित कर देनेवाली उत्तम कविताओं का अभाव ही रहा है।"[4] राहुल की सामन्तवाद विरोधी चेतना भारतेन्दु युग, छायावाद और प्रगतिवाद के विश्लेषण मूल्यांकन के सन्दर्भ में भी दृष्टिगत होती है। यद्यपि उन्होंने इन साहित्यिक प्रवृत्तियों या कालों पर उस विस्तार से विचार नहीं किया है जिस विस्तार से वे अपभ्रंश साहित्य पर विचार करते हैं। राहुल ने भारतेन्दु युग के सामन्तवाद साम्राज्यवाद विरोध को रेखांकित करते हुए उसे नवजागरण युग कहा है। इस युग के अग्रधावक भारतेन्दु को उन्होंने 'साहित्य का सूर्य' कहा है और उनके मातृभूमि प्रेम, औपनिवेशिक शासन और सामन्ती मूल्य व नैतिकता के प्रति विरोध भाव को विशेष रूप से रेखांकित किया है।[43] राहुल ने विरोध के इस तेवर को छायावादी कविता में भी चिह्नित किया है—'इस छायावाद की परिभाषा दूसरे चाहे कुछ भी करते हों, मैं तो उसे समझता हूँ पुरानी रूढ़ियों और नाना भाँति की जकड़बन्दियों के प्रति विद्रोह का झण्डा उठाना, इसी में मैं आशामय भविष्य की आभा पाता हूँ।"[44] ध्यान देने की बात है कि राहुल की यह टिप्पणी उस समय की है, जब डा० रामविलास शर्मा और डा० नामवर

सिद्ध म से किसी ने भी छायावाद के सामन्तवाद साम्राज्यवाद विरोधी तेवर को रेखांकित नहीं किया था। राहुल ने अपनी इतिहास यात्रा का अध्ययन बनाते हुए प्रगतिशील आन्दोलन के सामन्तवाद साम्राज्यवाद विरोधी व जनवादी तेवर पर भी प्रकाश डाला है। चूंकि राहुल इस आन्दोलन से स्वयं जुड़े रहे, इसलिए इसके विवेचन के क्रम में कई महत्त्वपूर्ण रचनात्मक तथा आलोचनात्मक मान्यताएँ स्थापित की हैं।

द्वन्द्वात्मक इतिहास दृष्टि अन्तर्विरोधों की चर्चा

राहुल सांकृत्यायन साहित्येतिहास यात्रा के क्रम में द्वन्द्वात्मक दृष्टि अपनाते हैं। द्वन्द्वात्मक दृष्टि वस्तुओं व्यक्तियों घटनाओं और विचारों में असंगति अथवा अन्तर्विरोध को रेखांकित करती है। राहुल ने सिद्ध और जैन कवियों की रचनाओं का विश्लेषण करते हुए उनके अन्तर्विरोधों को रेखांकित किया है। सरहपाद ने सामन्ती विचारधारा ब्राह्मणवाद पर प्रहार किया। वर्ण व्यवस्था के प्रति खुली बगावत की और शर-कार (बाण बनाने वाले) की एक लड़की के साथ शादी की। वर्ण-व्यवस्था के प्रति विद्रोह उन्होंने अपनी कविताओं में भी व्यक्त किया है। सरह ने धार्मिक बाह्याडम्बरों की खिल्ली उड़ायी और उसकी भरपूर आलोचना की। उनकी दृष्टि में संसार और मानव जीवन त्याज्य नहीं। वे जीवन के भोगों को त्याज्य नहीं मानते। उन्होंने भव (संसार) और निर्वाण को एक बतला निर्वाण के आकर्षण को कम कर ऐहिक जीवन के मूल्य को बढ़ाया। दूसरी ओर उनकी कविताओं में रहस्यवाद भी दृष्टिगत होता है। सरहपाद का यही अन्तर्विरोध है। राहुल ने तफसील में जाकर इन अन्तर्विरोधों की चर्चा की है। यह अन्तर्विरोध कमोवेश कुछ दूसरे सिद्ध और जैन कवियों में भी दिखायी पड़ता है। वे सामन्ती मूल्य और नैतिकता के प्रति विद्रोहात्मक रवैया अख्तियार करते हैं लेकिन उसे व्यापक सामाजिक आधार नहीं दे पाते। सिद्धों ने सुख दुख और दुनिया की सभी समस्याओं को केवल व्यक्ति के रूप में देखा। उन्हें ख्याल में भी नहीं आया, कि समाज की बुराइयों को सामाजिक रूप से ही दूर करने पर सफलता मिल सकती है।"[45] राहुल सिद्धों की इस सीमा पर ऐतिहासिक सन्दर्भ में विचार करते हैं, "हमारे कवियों ने व्यक्ति के सामाजिक कर्तव्य की ओर ध्यान नहीं दिया। उसका कारण था, वही सामन्त समाज, जिसके हाथ में सारे समाज की नकेल थी।"[46] इस सामन्त समाज की इच्छाओं के प्रतिकूल जाना थोड़ा मुश्किल था। राहुल ने ठीक ही कहा है कि यदि कोई आदमी तत्कालीन भोगी समाज (सामन्त वर्ग च० भा०) के विरुद्ध लिखने के लिए अपनी कवि प्रतिभा का कुछ भी दुरुपयोग करता तो वह केवल पुरोहितों के धर्म दण्ड का ही भागी नहीं होता, बल्कि उसके सर पर पड़ता क्रूर राज दण्ड—छिपकर हत्या, भयंकर शारीरिक यातना, सीधे शूली देश और समाज से निष्कासन और अपमान। इन दण्डों को सामने रखकर जब आप इन कवियों की चुप्पी देखेंगे तो मालूम होगा कि उनके वैसा करने के लिए प्रबल कारण मौजूद थे। कवि अपने स्थूल शरीर और कीर्ति शरीर दोनों ही से नष्ट होने का भय सोच यदि मौन रहा, तो उसके विरुद्ध किसी कठोर फतवे के देने का हमें अधिकार नहीं है।[47] राहुल की यह टिप्पणी

सन्तुलित इतिहास दृष्टि का परिचायक है। उन्होंने स्वयंभू, पुष्पदंत आदि कवियों के भी अन्तर्विरोधों के सामाजिक राजनीतिक कारणों की खोज की है।

साहित्येतिहास का लोकतात्त्विक आधार

राहुल सांकृत्यायन हिन्दी साहित्य के इतिहास को हिन्दी जाति के इतिहास के रूप में देखते हैं। वे उसे जनता के भावों, विचारों, आकांक्षाओं व कल्पनाओं के इतिहास के रूप में देखते हैं। और ये सब शिष्ट साहित्य के साथ ही लोक साहित्य में भी व्यक्त होते रहते हैं बल्कि कभी-कभी लोक साहित्य में इनकी समग्र जटिलता पूरी प्रामाणिकता के साथ व्यक्त हुई है। इसलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है कि भारतीय हृदय का सामान्य रूप पहचानने के लिए पुराने परिचित ग्राम गीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, केवल पण्डितों द्वारा प्रवर्तित काव्य परम्परा का अनुशीलन ही अलम नहीं है।[48] ऐसी स्थिति में साहित्येतिहास लेखन के सन्दर्भ में लोक साहित्य की उपेक्षा वांछनीय नहीं है। आचार्य शुक्ल के इस लोकधर्मी चिन्तन का सम्यक् विकास राहुल में दृष्टिगत होता है। राहुल ने "किसी देश के शिष्ट साहित्य से पूर्णतया परिचित होने के लिए उसके लोक-साहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक माना है।"[49] लोक साहित्य का अध्ययन इसलिए भी अपेक्षित है, क्योंकि शिष्ट साहित्य जीवनी शक्ति प्राप्त करने के लिए उससे सम्पर्कित होता है। 'शिष्ट साहित्य के स्वरूप के परिवर्तन और विकास पर लोक-संस्कृति और लोक साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ता है कई बार यह प्रभाव निर्णायक भूमिका अदा करता है। एक सीमित अर्थ भूमि और संकुचित रचना प्रणाली के भीतर क्रियाशील शिष्ट साहित्य नये विकास के लायक जीवन शक्ति प्राप्त करने के लिए लोक संस्कृति और लोक-साहित्य की ओर जाता है। शिष्ट साहित्य के विकास के इस पक्ष की पहचान वही कर सकता है जिसे शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य के इस विशिष्ट सम्बन्ध का बोध होगा।'[50]

कहना न होगा कि राहुल को इस विशिष्ट सम्बन्ध का बोध है। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास के निर्माण में लोक साहित्य की प्रचुर देनों को रेखांकित किया है। वे आदिकालीन वीर गाथाओं की लोकधर्मिता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, 'वीर गाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं—प्रबन्ध काव्य के साहित्यिक रूप में और वीर गीतों (बलेडस) के रूप में। प्रबन्ध काव्य के रूप में जो रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, उनमें 'पृथ्वी राज रासो', बीसलदेव रासो तथा परमाल रासो' मुख्य हैं। यद्यपि इन रासो काव्यों के कथानक में प्रायः परम्परागत संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश युग की प्रसंगरूढ़ियों का निर्वाह है फिर भी अनेक लोक प्रचलित किंवदंतियाँ दी गयी हैं जो पौराणिक परम्परा से भिन्न हैं। शुक्ल जी ने जिन काव्यों को 'वीरगीत' कहा है वे लोक गाथाएँ (बलेडस) हैं जो लोक-साहित्य की एक विधा है। वीर गीतों का प्रसिद्ध उदाहरण जगनिक द्वारा रचित 'आल्हा' है जो अपनी लोकप्रियता के कारण उत्तरी भारत की जनता के गले का हार बन गया है।"[51] राहुल ने भक्तिकाल के साहित्य पर विचार करते हुए उसके अन्तस्तल में लोक

साहित्य की आत्मा का रेखांकित किया है। उनकी दृष्टि में निर्गुण शाखा के प्रधान कवि महात्मा कबीर की रचना को बिना किसी प्रतिवाद के लोकगीत कहा जा सकता है। सूर सागर के सम्यक विश्लेषण से भी अनेक महत्त्वपूर्ण लोक-तत्त्वों का पता चलता है। सूर के पदों में ऐसे अनेक स्थल हैं जो ब्रज प्रदेश की लोक संस्कृति की ओर संकेत करते हैं। सूर सागर में लोकोक्तियों और मुहावरों का सहज प्रयोग देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूरदास ने भाषा को गढ़ने का प्रयत्न नहीं किया है, बल्कि लोक में प्रचलित टकसाली भाषा को ज्यों का-त्यों उठाकर रख दिया है।[52] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी सूर की कविता के सम्बन्ध में लिखा है, 'इन पदों (सूरसागर के पद—च० भा०) के सम्बन्ध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रज भाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं। अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीत काव्य परम्परा का चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है।"[53] राहुल ने भक्तिकाव्य के प्रमुख स्तम्भ जायसी और तुलसी के संदर्भ में भी लोक साहित्य और लोक-संस्कृति की सामग्री को रेखांकित किया है। "जायसी ने अवध में जन-साधारण के बीच प्रचलित लोक कथा को अपने 'पद्मावत' का विषय बनाया है। इतना ही नहीं, इन्होंने लोकगीतों की एक विधा—बारहमासा—को अपनाकर नागमती के विरह का वर्णन भी किया है। जायसी के पद्मावत को लोक-संस्कृति (फोकेलार) का कोश कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। लोक विश्वास, लोक परम्परा, लोक प्रथा लोक धर्म, लोक-जीवन आदि विषयों का सजीव चित्रण इस कवि ने अपने ग्रंथ में किया है।" तुलसीदास की रचनाओं में लोक संस्कृति के तत्त्वों को बदले हुए तेवर में ग्रहण किया गया है। तुलसी दास ने लोक-संस्कृति के तत्त्वों को कुछ संस्कृत तथा परिष्कृत रूप में ग्रहण किया है। गोस्वामीजी ने शिष्ट साहित्य तथा लोक साहित्य की परम्पराओं की गंगा जमुनी छटा दिखलायी है। यद्यपि लोक साहित्य का प्रभाव छन हुए रूप में इनकी रचनाओं में दिखायी पड़ता है, फिर भी सोहर आदि लोकगीतों के छन्दों में रामचरित की व्यंजना करके इन्होंने अपने लोकानुराग का अच्छा परिचय दिया है।[54] राहुल ने लोक साहित्य और लोक संस्कृति की परम्परा से कटे पिटे रहने के कारण रीतिकाव्य की आलोचना की है। यद्यपि राहुल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य पर व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप से विचार नहीं किया, फिर भी स्फुट रूप से उन्होंने लोक साहित्य और लोक-संस्कृति के सर्जनात्मक प्रभावों को रेखांकित किया है। उन्होंने हिन्दी के अपने समानधर्मा प्रगतिशील लेखकों से इसकी ओर मुखातिब होने का आग्रह किया है।

राहुल ने अपनी पूरी शक्ति के साथ हिन्दी साहित्येतिहास के सन्दर्भ में लोक साहित्य और लोक संस्कृति के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। राहुल की दृष्टि में सभी कला और संस्कृति सम्बन्धी महान और मौलिक देनों का उद्गम लोक मानस और लोक प्रतिभा है। आदिम उद्गम होने के कारण यह नहीं समझना चाहिए कि उसका सौन्दर्य और रस प्रवाह अकिंचन है। वह गंगोत्री की तरह स्वच्छ, सुन्दर और मधुर है यह अपनी भाषा के सुन्दर गीतों को सुननेवाला हर व्यक्ति बतला सकता है।[55] ध्यातव्य है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसकी महत्ता प्रतिपादित की। लेकिन राहुल ने जिस

विस्तार मे जाकर अपनी मान्यता को स्थापित किया उसका अभाव आचार्य प्रवर म दृष्टि-गत होता है। राहुल के कनिष्ठ समकालीन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस सन्दर्भ म अवश्य कुछ महत्त्वपूर्ण खोज व मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं। उन्होंने साहित्येतिहास को लोक-चिन्ता और लोक साहित्य की अपेक्षा मे देखने की सिफारिश की है।

भारत राहुल सांकृत्यायन साहित्येतिहास के सन्दर्भ म और स्वतन्त्र रूप म भी लोक साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन पर बल देते हैं। लोक साहित्य के अध्ययन अनुशीलन की महत्ता एक दूसरे सन्दर्भ म भी रेखांकित की जानी चाहिए। इन दिनो हिन्दी प्रदेश को जो अनेक लोक भाषाएँ अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा कर रही हैं, इसका कारण हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ म उनकी घोर उपेक्षा है। मैथिली भोजपुरी, मगही, राजस्थानी आदि हिन्दी की लोक भाषाएँ अपने को हिन्दी से अलगाती हुई स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा कर रही हैं। राहुल ने भी कुछ ऐसा ही मन्तव्य व्यक्त किया है, जिसके औचित्य अनौचित्य की चर्चा यथास्थल अगले अध्याय में की जायेगी। कहना न होगा कि इस साहित्यिक एवं भाषिक अलगाववाद से हिन्दी भाषा एवं साहित्य की स्थिति कमजोर होती है। यह बड़े खतरे की बात है। इससे उबरने का एक ही उपाय है कि रचना और आलोचना दोनों सन्दर्भों म हिन्दी के लोक साहित्य से सीधा और गहरा सम्बन्ध जोड़ा जाय। अन्तर्वस्तु और रूप दोनो स्तरो पर हिन्दी के शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य म सवान्विता होनी चाहिए। अगर ऐसा नहीं होगा, तो हिन्दी अपनी जवानी म ही दम तोड़ देगी। राहुल ने रचना और आलोचना दोनो सन्दर्भों मे लोक साहित्य से जुड़कर एक उदाहरण कायम किया है। इसे और भी विकसित करने की जरूरत है।

काल-विभाजन और नामकरण

हिन्दी साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ मे काल विभाजन और नामकरण एक विचारणीय मुद्दा रहा है। साहित्य के इतिहास मे सुसंगत काल विभाजन और नामकरण आवश्यक है, क्योंकि इससे साहित्य के विकास की दिशा, विकास को प्रभावित करनेवाले तत्त्वो और विकास के दौरान घटित होनेवाले परिवर्तनो तथा मोड़ो के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। कुछ साहित्येतिहासकार काल विभाजन के बदले विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियो या धाराओ के प्रवाह को महत्व देते हैं और काल विभाजन की समस्या से टकराने के बदले कन्नी काटते हैं। ऐसे लोग रचनात्मक प्रवृत्तियो की परम्पराओ की निरन्तरता को ध्यान मे रखकर साहित्य के धारावाहिक इतिहास की बात करते हैं। ऐसे प्रयास हुए भी हैं। लेकिन इससे सरलीकरण का भारी खतरा पैदा होता है। रेनेवेलेक ने ठीक ही लिखा है कि काल विभाजन के बिना साहित्य का इतिहास घटनाओ की अव्यवस्था का समूह, मनमाना नामकरण और साहित्य का दिशाहीन प्रवाह हो जाता है।[5] हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा म सबसे पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक हद तक व्यवस्थित और तार्किक रूप से काल विभाजन तथा नामकरण की समस्या पर विचार किया। आचार्य शुक्ल ने 993 ई० (स 1050) से हिन्दी साहित्य का आरम्भ माना और कालक्रम

के अनुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदिकाल (स० 1050 1375), पूर्व मध्य काल (स० 1375 1700) उत्तर मध्यकाल (स० 1700-1900) और आधुनिक काल (स 1900 से) में बाँटा है। साहित्यिक प्रवृत्तियों की प्रधानता के अनुसार उन्होंने इन विभिन्न कालों का नामकरण क्रमशः वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और गद्य काल किया है। राहुल ने सिद्धों और जैनों की रचनाओं का अनुसंधान करने के उपरान्त आदिकाल का आरम्भ 760 ई० से माना है जबकि आचार्य शुक्ल ने सिद्धों-जैनों की रचनाओं को साहित्य मानने से ही इनकार कर दिया। इस प्रकार राहुल हिन्दी साहित्य के इतिहास में लगभग ढाई सौ वर्षों का इजाफा करते हैं। यह इजाफा बलात अपने साहित्य के इतिहास की विराटता और प्राचीनता सिद्ध करने के लिए नहीं किया गया है। राहुल ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा खारिज सिद्ध और जैन कवियों की साहित्यिकता को रेखांकित करने के बाद ही ऐसा किया है, जिसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है।

हाँ उन्होंने आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तुत शेष कालपरक ढाँचे को यथावत स्वीकार कर लिया है। लेकिन विभिन्न कालों के प्रवृत्तिगत नामकरण के सन्दर्भ में वे पुनः आचार्य शुक्ल से मतभेद रखते हैं। उन्होंने नयी खोजों के आधार पर आदिकाल का नामकरण 'सिद्ध सामन्त युग' किया है। यद्यपि यह नाम वीरगाथा काल की तुलना में आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्ति को बहुत दूर तक स्पष्ट करने वाला है, फिर भी इसमें अव्याप्ति दोष है। इसीलिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं, "इस नाम से उन अत्यन्त मौलिक रस की रचनाओं का कुछ भी आभास नहीं मिलता जो परवर्ती काव्य में भी बहुत व्यापक रूप में प्रकट हुई है।"[7] आचार्य द्विवेदी को इस काल का नाम 'आदिकाल' ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। यद्यपि इस नाम से कालगत एक भ्रामक धारणा की सृष्टि होती है। यदि पाठक इस धारणा से सावधान रहें, तो यह नाम बुरा नहीं है। भक्तिकाल के सन्दर्भ में राहुल ने आचार्य शुक्ल की लीक से हटकर सूफीयुग और भक्त युग का विभाग किया है। सूफी युग की कल्पना सम्भवतः एक विशेष काल खण्ड में दक्षिण और उत्तर में रचे गये विपुल सूफीकाव्य को दृष्टिपथ में रखकर की गयी है। यद्यपि राहुल ने इस विभाजन पर कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है और न ही सूफी काव्य की अलग से कोई विस्तृत चर्चा ही की है। बहरहाल राहुल ने उत्तर मध्यकाल को 'दरबारी युग' कहा है। रीतिकाल की अपेक्षा यह नाम ज्यादा उपयुक्त है। इसमें शृंगार और वीर दोनों तरह की काव्यधाराएँ समाहित हो जाती हैं। राहुल ने आधुनिक काल को 'नवजागरण युग' कहा है जिसका पहला चरण भारतेन्दु युग है। बाद में इस 'नवजागरण युग' के स्वरूप और साहित्य पर डा० रामविलास शर्मा ने विस्तार से विचार किया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन्दर्भ में राहुल नामकरण कालपरक न करके प्रवृत्तिपरक करते हैं। वस्तुतः कालपरक नामकरण करने में सामाजिक इतिहास के साथ उसकी संगति बैठाने में दिक्कत होती है। जिसे हम हिन्दी साहित्य का आदिकाल और मध्यकाल कहते हैं वह वास्तव में सामाजिक इतिहास का क्रमशः मध्यकाल और आधुनिक काल है। डी० डी० कोशाम्बी और रामविलास शर्मा ने 12वीं सदी से आधुनिक युग की शुरुआत माना है। इरफान हबीब ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है। अब अगर सामा

जिन इतिहास के मेल म हिन्दी साहित्य के इतिहास का कालपरक नामकरण किया जाय तो कितनी गड़बड़ी पैदा होगी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सिर्फ उत्तर मध्यकाल और आधुनिक काल रहेगा। दूसरी ओर अगर हिन्दी साहित्य के इतिहास मे रूढ़ हो गये कालपरक नामो को रहने दिया जाय, तो उसकी सगति सामाजिक इतिहास के साथ बठाना मुश्किल होगा। सम्भवत राहुल इस जटिलता को देखकर प्रवृत्तिपरक नामकरण की चर्चा करते हैं। पर इसका यह अथ नही कि कालबोध का एकदम भुला दिया जाय। ऐसा करने पर "साहित्य का इतिहास कविवृत्त सग्रह काव्य सग्रह, कविकीर्तन सग्रह और आलोचनात्मक लेखो का सग्रह बनकर रह जाता है।"[58] राहुल इस खतरे स बचाते हैं। उन्होने प्रवृत्तिपरक नामकरण के बावजूद काल बोध को बरकरार रखा है।

अभिजनवाद विरोधी साहित्येतिहास दृष्टि

सिडनी हुक न लिखा है कि विशेषतया विज्ञान और कला के क्षेत्र मे महान व्यक्ति ही मौलिक आदर्शों एव प्रतिरूपो को जन्म देते हैं तथा सामान्य प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति उनकी नकल करते हैं।[59] कहना न होगा कि यह नायकोन्मुखी अवधारणा है, जो प्रकारान्तर स अभिजनवाद का समथन करती है। इसके विपरीत राहुल ने साहित्येतिहास की जनोन्मुखी अवधारणा प्रस्तुत की है। उन्होने महान लेखको के साथ उन गौणो का भी महत्त्व दिया है, जिनसे साहित्यिक इतिहास का विस्तार निर्मित होता है। राहुल की साहित्येतिहास यात्रा मे अभिजनवाद विरोध का दूसरा सन्दभ लोक साहित्य और लोक सस्कृति की महत्ता प्रतिपादित करने म है। कई मायनो मे वे शिष्ट साहित्य से ज्यादा महत्व लोक साहित्य को देते हैं। वैचारिक स्तर पर भी राहुल न अभिजनवादी विचारधारा का विरोध किया है। उन्होंने विभिन्न कवियो तथा काव्य परम्पराओ का विश्लेषण मूल्यांकन करते हुए इसका परिचय दिया है। अपभ्रंश काव्य, भक्तिकाव्य रीतिकाव्य, भारतेन्दुयुगीन साहित्य, छायावाद, प्रगतिवाद आदि का मूल्यांकन करते हुए सामन्ती मूल्य व नैतिकता पर जमकर प्रहार किया है। उन्होंने सामन्तवाद विरोधी कवियो की गद्‌गद होकर प्रशसा की है और उसके समथक कवियो रचनाकारो की भरपूर मरम्मत की है। उन्होंने सिद्धसरहपाद, स्वयभू की सामन्तवाद विरोधी चेतना की सराहना की है, तो 'बाप की भूमडी' के रचयिता हेमचन्द्र को पूरी तरह लताड़ा है। वस्तुत यह पद सामन्तो की अपने हाथ स निकल गयी भूमडी—निरकुश राज का फिर से लौटाने के लिए आदेश है। अस्सी फीसदी जनता और भविष्य की सारी पीढ़ियो के सुख और स्वाथ का वहाँ कोई खयाल नही था।[60] राहुल न रीतिकाव्य की दरबारी मनोवृत्ति की आलोचना की है और भारतेन्दु युग, छायावाद और प्रगतिवाद की जनोन्मुखता व रूढि विरोध (सामन्ती मूल्य व नतिकता विरोध) का समथन किया है। वस्तुत राहुल न रचनात्मक इतिहास यात्रा की तरह साहित्येतिहास-यात्रा के सन्दभ मे भी व्यापक स्तर पर तथा अनवरत रूप से अभिजनवाद विरोधी अभियान चलाया है।

कहना न होगा कि राहुल के इस अभिजनवाद विरोध के मूल में मार्क्सवादी नजरिया है। उन्होंने इसी नजरिये से हिंदी साहित्य के इतिहास का पर्यालोचन किया है। जन गण के हामी रचनाकारों की संघर्षशीलता को रेखांकित किया है और शासकवर्गीय विचारधाराओं और उनके समर्थक रचनाकारों की आलोचना की है। कहना न होगा कि राहुल द्वारा अतीत की प्रगतिशील परम्परा के मूल्यांकन और रक्षा के लिए किया गया यह वैचारिक संघर्ष उनके वर्तमान संघर्ष का अंग है। पर इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि वे सापेक्षतावाद से ग्रस्त हैं। उन्होंने अतीत की रचनाओं की 'विगत सार्थकता' और 'वर्तमान अर्थवत्ता' दोनों पर ध्यान दिया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने अद्भुत विश्लेषण और मूल्यांकन शक्ति का परिचय दिया है। राबर्ट वाइमन ने जो 'आलोचक की ऐतिहासिक चेतना' और 'इतिहासकार की आलोचनात्मक चेतना' की बात की है उसका दिग्दर्शन राहुल की साहित्येतिहास यात्रा में होता है। उनकी साहित्येतिहास दृष्टि में इतिहास और आलोचना का पार्थक्य नहीं, बल्कि ऐक्य दृष्टिगत होता है।

सन्दर्भ

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 17
2 डा० मैनेजर पाण्डेय साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ० 106
3 राहुल सांकृत्यायन, हिंदी काव्यधारा, पृ० 47
4 वही, पृ० 13
5 राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिंदी-काव्यधारा, पृ० 251
6 वही, पृ० 259
7 वही, पृ० 285
8 वही, पृ० 264 65
9 राहुल सांकृत्यायन, सम्पादकीय वक्तव्य, हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास षोडश भाग, पृ० 13
10 राहुल सांकृत्यायन, उत्तर प्रदेश के लोक गीत, राहुल निबंधावली पृ० 85
11 राहुल सांकृत्यायन हिन्दी लोक साहित्य, राहुल निबंधावली पृ० 69
12 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य उसका उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली 3 पृ० 262 63
13 प्रगतिशीलता का प्रश्न राहुल सांकृत्यायन के श्रेष्ठ निबंध पृ० 20 21
14 वही, पृ० 21
15 राहुल सांकृत्यायन, साहित्यकार का दायित्व, राहुल निबंधावली, पृ० 28

16 प्रगतिशीलता का प्रश्न, राहुल सांकृत्यायन के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० 23
17 डॉ० मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, प० 138
18 राहुल साङ्कृत्यायन हिन्दी काव्य धारा, पृ० 54
19 डॉ० मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास-दृष्टि, प० 13
20 वही, पृ० 103
21 वही, पृ० 120
22 राहुल साङ्कृत्यायन, हिन्दी काव्य धारा, पृ० 36
23 राहुल साङ्कृत्यायन, दोहा-कोश, पृ 23
24 राहुल साङ्कृत्यायन, महाकवि स्वयंभू, राहुल निबन्धावली, पृ० 110
25 वही, पृ० 111
26 राहुल साङ्कृत्यायन, हिन्दी काव्य धारा, पृ० 13
27 वही
28 राहुल साङ्कृत्यायन के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० 32-33
29 राहुल साङ्कृत्यायन, हिन्दी काव्य धारा पृ० 51
30 वही, पृ० 50 51
31 वही, प० 53
32 वही, प० 48
33 राहुल साङ्कृत्यायन दोहा-कोश, पृ० 26
34 राहुल साङ्कृत्यायन हिन्दी काव्य धारा, पृ० 29
35 राहुल साङ्कृत्यायन, दोहा-कोश, पृ० 24
36 वही, पृ० 34
37 राहुल साङ्कृत्यायन, हिन्दी काव्य धारा पृ० 48
38 वही, प० 54
39 वही
40 राहुल साङ्कृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा, प० 132
41 वही प० 230
42 राहुल साङ्कृत्यायन, साहित्य निबन्धावली, पृ० 2
43 राहुल साङ्कृत्यायन, राहुल निबन्धावली पृ० 10
44 राहुल साङ्कृत्यायन, साहित्य निबन्धावली, पृ० 3
45 राहुल साङ्कृत्यायन, हिन्दी काव्यधारा, प० 48
46 वही पृ० 50
47 वही, प० 21
48 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
49 राहुल साङ्कृत्यायन, सम्पादकीय वक्तव्य, हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, पृ० 13
50 डा० मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, प० 116

51 राहुल साङ्कृत्यायन सम्पादकीय वक्तव्य, हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षोडष भाग पृ० 14

52 वही

53 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 165

54 राहुल साङ्कृत्यायन, सम्पादकीय वक्तव्य, हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षोडष भाग पृ० 14-15

55 राहुल साङ्कृत्यायन राहुल निबन्धावली, पृ० 22

56 डा० मैनेजर पाण्डेय साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ० 111 12 पर उद्धत

57 हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली 3, पृ० 305

58 डा० मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ० 111

59 सिडनी हुक, दि हीरो इन हिस्ट्री, पृ० 28 29

60 राहुल साङ्कृत्यायन, हिन्दी काव्यधारा, पृ० 49

3

भापा का इतिहास-लेखन

साहित्येतिहास मे भाषा पर विचार

साहित्य का इतिहास साहित्यिक कृतिया का इतिहास होता है और साहित्यिक कृतियाँ भाषा मे रची जाती हैं। साहित्यिक कृतियो की भाषा मे रचनाकार की सजनशीलता व्यक्त होती है, इसलिए रचनाओ की भाषा का रचनाकार से जुडा एक वैयक्तिक पक्ष होता है लेकिन साहित्यिक कृतिया की भाषा का आधार व्यापक सामाजिक जीवन की भाषा है, इसलिए कृतियो की भाषा का एक अनिवार्य सामाजिक पक्ष होता है। साहित्यिक कृतिया की भाषा के वैयक्तिक और सामाजिक रूपो का समाज, सस्कृति और भाषा के इतिहास से गहरा सम्बन्ध होता है। इसलिए साहित्य का इतिहास भाषा के इतिहास की उपेक्षा नही कर सकता। हिन्दी साहित्य के इतिहास के सन्दभ मे एक दूसरे दृष्टिकोण से भी भाषा के इतिहास पर ध्यान देना जरूरी है। अगर आप हिन्दी साहित्य के इतिहास पर गौर करें तो भाषागत जटिलता और विविधता दिखायी पडेगी। अपभ्रश, मैथिली, ब्रज, अवधी राजस्थानी खडी बोली (नागरी और फारसी लिपि)—मोटे तौर पर भाषा के ये पाँच रूप हिन्दी साहित्य के इतिहास मे दिखायी पडेंगे। इनमे अपभ्रश को छोडकर शेष सारी भाषाओ म अब भी साहित्य रचा जा रहा है। दूसरी ओर हिन्दी जिस अथ म रूढ हो चुकी है वह नागरी लिपि मे लिखी जानेवाली खडी बोली है। तो क्या इसे ही हिन्दी मानकर शेष भाषाओ या बोलिया म रचे गये या रचे जा रहे साहित्य का हिन्दी साहित्य के इतिहास से खारिज कर दिया जाय? प्रश्न बडा ही मुश्किल और जोखिम भरा है। हिन्दी साहित्य के प्रत्येक इतिहासकार का इस मुश्किल और जोखिम भरे प्रश्न से टकराना पडता है। यह और बात है कि कुछ लोगो ने इस बाद्धिक झझट से बचने के लिए 'लूप लाइन' पकडा और हिन्दी साहित्य के इतिहास को खडी बोली तक सीमित कर दिया। पर वे भूल गये कि अपने इतिहास को छोटा करना बुद्धिमानी का काम नही होता है। दूसरी बार, कुछ लोगो ने हिन्दी की जातीय अवधारणा को दरकिनार कर दिया और उर्दू मैथिली, भोजपुरी, व्रज, अवधी, राजस्थानी आदि मातभाषाओ का झुनझुना बजाने

लगे। ये दोनों अतिवादी धारणाएँ हैं और इनसे यह भी बारबार दुष्परिणाम सामने आये हैं। वस्तुतः हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बद्ध इन भाषागत समस्याओं का समुचित हल तभी निकल पायेगा जब हिन्दी भाषा और हिन्दी क्षेत्र की जातियों के विकास का इतिहास हिन्दी भाषी क्षेत्र की जनता के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास के साथ जोड़कर देखा और समझा जाय।

बहरहाल इस विवेचन से इतना स्पष्ट है कि भाषा और उसके इतिहास के बारे में हिन्दी साहित्य के इतिहासकार की दृष्टि और सजगता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के सन्दर्भ में भाषा एक विचारणीय बिन्दु है। यह केवल इत्तिफाक नहीं है कि हिन्दी साहित्य के जितने भी महत्वपूर्ण इतिहास लिखे गये, उनमें इस पक्ष पर अवश्य गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिया गया है। अब तक के प्रमुख इतिहासकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राहुल सांकृत्यायन, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ० रामविलास शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। इन तमाम इतिहासकार विचारकों ने इतिहास-यात्रा के क्रम में भाषा पर सम्यक दृष्टिपात किया है। हिन्दी साहित्य की जिस भाषागत जटिलता की चर्चा की गयी है उससे ये टकराये हैं और अपने अपने ढंग से समाधान भी प्रस्तुत किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी भाषा के स्वरूप पर विचार करते हुए ही 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखा है। उन्होंने 'हिन्दी शब्दसागर' की भूमिका के रूप में ही हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारम्भिक रूप तैयार किया था। इसके अतिरिक्त आचार्य शुक्ल ने 1899 ई० से 1928 ई० के बीच 'आनन्द कादम्बिनी', 'सरस्वती', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' आदि पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी भाषा के स्वरूप, इतिहास, भाषा और साहित्य के सम्बन्ध आदि विषयों पर कई महत्वपूर्ण लेख लिखे। साथ ही, उनके द्वारा अनूदित 'बुद्धचरित' में काव्यभाषा के रूप में हिन्दी भाषा के विकास पर विचार किया गया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने इतिहास लेखन और अनेक निबन्धों में भाषा के स्वरूप, साहित्य से उसके सम्बन्ध, उसकी सामाजिकता और उसकी विकासशीलता पर विचार किया है। अपने इतिहास लेखन के दौरान द्विवेदीजी ने हिन्दी भाषा के विकास तथा उसके जातीय स्वरूप का उद्घाटन भी किया है। डा० रामविलास शर्मा की इतिहास यात्रा का तो मुख्य उद्देश्य ही हिन्दी भाषा और साहित्य के जातीय स्वरूप की पहचान, खोज और रक्षा है। उन्होंने हिन्दी जाति के विकास के इतिहास के साथ साथ हिन्दी भाषा के अन्धकार में डूबे इतिहास पर भी प्रकाश डाला है।

अपभ्रंश और हिन्दी

राहुल सांकृत्यायन ने इतिहास-यात्रा के सन्दर्भ में और स्वतन्त्र रूप से भी हिन्दी साहित्य की भाषागत जटिलता व अन्य भाषागत मसलों पर विचार किया है। उन्होंने हिन्दी साहित्य का आरम्भ अपभ्रंश से माना है और उसके (हिन्दी के) व्यापक जातीय स्वरूप को ध्यान में रखकर हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत खड़ी बोली (नागरी और फारसी लिपि, प्रचलित अर्थ में हिन्दी उर्दू) के अतिरिक्त मैथिली, अवधी, ब्रज राजस्थानी

आदि मे रचित साहित्य को भी समाहित कर लिया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ मे अपभ्रंश साहित्य बडा ही विवादास्पद मुद्दा रहा है। कुछ लोग इस हिन्दी साहित्य मे समेटने की वकालत करते हैं और कुछ लोग छोड देने की। पहले तरह के लोग हिन्दी का विकास अपभ्रंश से मानते हैं और दूसरे तरह के लोग हिन्दी का अस्तित्व अपभ्रंश से स्वतन्त्र मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। अपभ्रंश को शुक्लजी कभी 'प्राकृताभास हिन्दी' और कभी 'पुरानी हिन्दी' भी कहते हैं।[1] लेकिन वे यह भी मानते हैं कि यह उस समय की ठीक बोलचाल की भाषा नही है, जिस समय की इनकी रचनाएँ मिलती हैं।[2] यह उस समय के कवियो की भाषा, केवल कविता की भाषा है। वास्तव म आचार्य शुक्ल अपने इतिहास म हिन्दी साहित्य का आरम्भ देश भाषा काव्य से ही मानते हैं, क्योकि व अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहने के बावजूद उसे हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि मे ही रखते हैं।

राहुल साकृत्यायन अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी साहित्य के इतिहास स निकाल बाहर करने के विरोधी हैं। उन्होंने भाव भाषा व्याकरण सभी दृष्टियो से उसे हिन्दी साहित्य का प्रस्थान बिन्दु माना है और सिद्धो जैनो की रचनाओ को हिन्दी साहित्य के इतिहास म परिगणित किया है। उनका कहना है कि अपभ्रंश का छोडकर हम हिन्दी के साहित्य को समझ नही सकेंगे। छन्द, भाव, भाषा, कवि शिल्प सभी का उद्गम हिन्दी के लिए अपभ्रंश म हुआ है। प्राकृत पाली, मस्कृत के युगो और साहित्य म सवथा अज्ञात दोहा चौपाई जैसे छन्द केवल अपभ्रंश म पहले-पहल देखे जाते हैं और बहुत प्रचुर मात्रा मे तुलसीकृत रामायण से भी बडे-बडे रामायण और महाभारत महाकवि स्वयभू न अपभ्रंश मे लिखे हैं जो तुलसीदास और सबलसिह के रामायण और महाभारत की तरह ही दोहा और चौपाइयो मे हैं। भाषा म प्राकृत और हिन्दी के बीच की जोडनेवाली कडी यही अपभ्रंश है। यदि एक ओर उसके क्रियापद अवधी और ब्रज के बिलकुल नजदीक आ जाते हैं तो दूसरी तरफ तद्भव शब्दो के प्रयोग करन म वह प्राकृत स एकता रखती है। वस्तुत अपभ्रंश समझने म हम जो कठिनाई होती है वह इन्ही (अपभ्रंश तथा प्राकृत के) तद्भव शब्दो के कारण ही। जैसे ही हम इन तद्भव शब्दो का तत्सम बना देते हैं, वैस ही हमारे लिए अपभ्रंश ब्रज और अवधी की तरह सुगम हो जाती है। अपभ्रंश अपने व्याकरण के विषय मे प्राकृत से बहुत भिन्न और अवधी ब्रज के नजदीक है। सस्कृत, पाली, प्राकृत के शब्द रूप और धातु रूप कुछ भेद और सरलीकरण के साथ एक दूसरे के सन्निकट हैं, जबकि अपभ्रंश उनसे इस विषय म बिलकुल दूर होकर आजकल की भाषाओ की पक्ति मे आ बैठती है।[3]

राहुल ने इस धारणा का जोरदार खण्डन किया है कि अपभ्रंश कवियो की भाषा हिन्दी नही बल्कि सस्कृत प्राकृत की तरह कोई बिल्कुल ही अलग भाषा है। 'अपभ्रंश नाम सुनते सुनते इस गलत धारणा के शिकार हम जरूर हो चुके हैं, मगर बात ऐसी नही है। सस्कृत (छन्दस्), पाली और प्राकृत जितनी एक-दूसरे के नजदीक है अपभ्रंश उतनी नही है।'[4] उसका नजदीकी सम्बन्ध हिन्दी और उसकी बोलियो से जुडता है। "वस्तुत

अपभ्रंश संस्कृत पालि प्राकृत के श्लिष्ट भाषाकुल से उत्पन्न, पर अश्लिष्ट होने से एक नये प्रकार की भाषा है। वह उक्त तीनों भाषाओं से भिन्न तथा हमारी हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं की माता मातामही ही नहीं, बल्कि उसी प्रकृति की भाषा है।'[5] उसमें नये सुबन्तों तिङन्तों की सृष्टि हुई जिससे वह हिन्दी से अभिन्न हो गयी है और संस्कृत पालि प्राकृत से अत्यन्त भिन्न।[6] राहुल ने स्वयम्भू सरहपाद आदि अपभ्रंश कवियों की भाषा का विस्तृत विवेचन करते हुए हिन्दी और हिन्दी प्रदेश की बोलियों से उनके निकट सम्बन्ध को रेखांकित किया है। उन्होंने स्वयम्भू की भाषा को अवधी के सबसे नजदीक माना है और उसे पुरानी अवधी या कोसली कहा है। उन्हीं के शब्दों में, "स्वयम्भू की भाषा की क्रियाओं और कितने ही कृजों के शब्दों को देखने से यह अवधी के सबसे नजदीक मालूम होती है। यद्यपि ऐसा कहने से बहुत दिनों से चली आयी इस धारणा के हम खिलाफ जा रहे हैं कि अपभ्रंश साहित्य शौरसेनी और महाराष्ट्री अपभ्रंशों ही में लिखा गया। लेकिन जो सामग्री हमारे सामने मौजूद है वह हमें यही कहने के लिए मजबूर करती है। हाँ इसका यह मतलब नहीं कि और भाषाओं के विशेष शब्द उसमें नहीं हैं। इसलिए हम स्वयम्भू जैसे कवियों की भाषा को जब पुरानी अवधी या कोसली कहते हैं, तो उसका यह मतलब नहीं कि दूसरी प्रान्तीय भाषाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था।'[7] राहुल ने सिद्ध कवियों और विशेषकर सरहपाद की काव्यभाषा की व्याकरणिक विशेषताओं पर बड़े विस्तार से विचार किया है और उसकी निकटता मगही, भोजपुरी, मैथिली, अवधी, ब्रज, कौरवी (मूल हिन्दी) आदि हिन्दी क्षेत्र की भाषाओं से स्थापित की है। राहुल की दृष्टि में 14वीं सदी में सतही तौर पर अपभ्रंश और हिन्दी (ब्रज, अवधी) में अन्तर दिखायी पड़ता है। लेकिन बुनियादी संरचना में समता रहती है। हिन्दी बोलनेवालों ने वास्तविक भाषाओं (क्रिया, विभक्ति) को तो रखा, मगर परदादी संस्कृत के शब्दों के शुद्ध रूप (तत्सम) को खूब तत्परता से उधार लेना शुरू किया। 'ब्रज भाषा तब भी इस बारे में कुछ संयम से काम लेती है लेकिन तुलसी बाबा को तो हम अपनी अवधी में लुटिया ही डुबाने के लिए तैयार देखते हैं।'[8] अस्तु अपभ्रंश और आज की हिन्दी (खड़ी, अवधी ब्रज लेते) में अन्तर इतना ही है कि एक में शुद्ध संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग बिल्कुल वर्जित है जबकि आज की साहित्यिक भाषा में मुश्किल से किसी तद्भव शब्द का प्रयोग होता है। अपभ्रंश और हिन्दी के बीच यही तद्भव और तत्सम का झमेला व्यवधान पैदा करता है। राहुल का कहना है कि अपभ्रंश को समझाने में जो दिक्कत होती है, वह इसी संस्कृत रूप के पूरे बायकाट और एकमात्र तद्भव अपभ्रंश रूप के प्रचार के कारण। आप जिस दिन तद्भव 'मयंक' को तत्सम (मृगांक) रूप देने की कुंजी पा जायेंगे उस दिन यह भाषा आपके लिए उतनी ही आसान हो जायगी जितनी सूर और तुलसी की।'[9]

इस प्रकार राहुल सांकृत्यायन हिन्दी भाषा के विकास में अपभ्रंश की भूमिका को स्वीकार करते हैं और उसके रचित साहित्य को हिन्दी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय मानते हैं। डॉ० नामवर सिंह भी आगे चलकर अपनी पुस्तक 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' में हिन्दी भाषा के विकास में अपभ्रंश के योग को स्वीकार करते हैं। डॉ० रामविलास शर्मा ने इस दृष्टिकोण की आलोचना की है। डॉ० शर्मा के चिन्तन का आधार

ग्रन्थ किशोरीदास वाजपेयी रचित 'हिन्दी शब्दानुशासन' है। इन दोनों विचारकों ने हिन्दी भाषा के विकास के संदर्भ में 'संस्कृत प्राकृत-अपभ्रंश' की सुगम नसेनी को उठाकर एक किनारे रख दिया है। ये हिन्दी की अनेक मूल विशेषताओं को इन तीनों में किसी से भी उत्पन्न नहीं मानते। उनकी दृष्टि में हिन्दी का सम्बन्ध खड़ी बोली क्षेत्र की किसी प्राचीन बोली से ही हो सकता है।

बहरहाल, हिन्दी और अपभ्रंश के सम्बन्ध के विवेचन में राहुल कई असंगतियों के शिकार हो गये हैं। वस्तुतः अपभ्रंश और हिन्दी को लेकर उनके विचार काफी उलझे हुए हैं। किशोरीदास वाजपेयी और रामविलास शर्मा की सी स्पष्टता उनमें नहीं है। ऐसा लगता है कि कहीं-न-कहीं राहुल के अन्तर्मन में कमोबेश 'आदि भाषा' की धारणा घर कर गयी है। वे कहीं अपभ्रंश और हिन्दी की निकटता का प्रतिपादित करते हुए उसे संस्कृत प्राकृत से बिलगाते हैं, तो कहीं अपभ्रंश को हिन्दी और प्राकृत के बीच की कड़ी मानते हैं, कहीं-कहीं प्रकारान्तर से संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश की विकास शृंखला को भी स्वीकारते हैं। इसी कारण विवेचन में एक विचित्र उलझन प्रकट हो गयी है। डा० रामविलास शर्मा ने 'आदि भाषा' की धारणा का खण्डन अपनी पुस्तक 'भाषा और समाज' में किया है। उन्होंने ठीक ही कहा है कि "जैसे किसी आदि पुरुष से मानव परिवार की उत्पत्ति नहीं हुई, वैसे ही किसी आदि भाषा से कोई भाषा परिवार नहीं बना। किसी भी भाषा परिवार की भाषाओं की परीक्षा कीजिए। आपको अनेक भाषाओं में ही नहीं, एक भाषा के अन्तर्गत ही ध्वनि प्रकृति, भाव प्रकृति और मूल शब्द—भण्डार के महत्वपूर्ण भेद दिखायी देंगे। इसका यह अर्थ नहीं कि भाषाओं के परिवार होते ही नहीं किन्तु उनके निर्माण की प्रक्रिया यह नहीं है कि आदि भाषा के विकृत या परिवर्तित होने से नयी नयी भाषाएँ पैदा हो गयी हैं।"[10] डा० रामविलास शर्मा ने इसी दृष्टिकोण से संस्कृत प्राकृत-अपभ्रंश देश भाषा (हिन्दी) की विकास शृंखला का खण्डन किया है। उनकी दृष्टि में "देशी भाषाएँ अर्थात् संस्कृत प्राकृत से भिन्न जनपदीय भाषाएँ कम से-कम उतनी पुरानी हैं जितना भरत का नाटयशास्त्र।"[11] भरत के नाटयशास्त्र में 'देश भाषा' का उल्लेख अवश्य है। लेकिन 'देश भाषा' का प्रयोग उस समय की जनपदीय भाषाओं के लिए हुआ है या अपभ्रंश के लिए, यह विवादास्पद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नाटयशास्त्र में प्रयुक्त 'देश भाषा' को अपभ्रंश माना है, जबकि रामसिंह तोमर 'देश भाषा' को जनपदीय बोलियों के लिए प्रयुक्त मानते हैं। रामविलास शर्मा ने रामसिंह तोमर की राय के आधार पर ही यह निष्कर्ष निकाला है कि जनपदीय भाषाएँ उतनी ही पुरानी हैं जितना भरत का नाटयशास्त्र।

इतना तय है कि देश भाषा (हिन्दी) का स्वतन्त्र विकास हुआ है। उसे संस्कृत-प्राकृत अपभ्रंश से उपजा मानना गलत है। लेकिन अपभ्रंश और देश भाषा में गहरा सम्बन्ध भी दिखायी पड़ता है। यह सम्बन्ध भाव भाषा, छन्द और व्याकरण के स्तर पर दिखायी पड़ता है। इसलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास में उसकी चर्चा अपेक्षित है। इस संदर्भ में हिन्दी साहित्य को राहुल का ऋणी होना चाहिए, जिन्होंने अपभ्रंश की पर्याप्त सामग्री को उरेहा है और उसका सम्यक् मूल्यांकन किया है।

हिन्दी भाषा का जातीय रूप और राहुल का भटकाव

राहुल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ में हिन्दी भाषा के व्यापक जातीय स्वरूप को पहचानकर उसके अन्तर्गत मैथिली, ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली (हिन्दी उर्दू) और राजस्थानी के साहित्य को शामिल किया है। हिन्दी के इस व्यापक जातीय रूप और विकास को न समझ पाने के कारण ही कुछ लोग खड़ी बोली के साहित्य को ही हिन्दी साहित्य कहते हैं और इस तरह हिन्दी जाति के इतिहास को छोटा कर देते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे इतिहासकार हिन्दी के इस व्यापक जातीय स्वरूप की पहचान के बावजूद उर्दू साहित्य को हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल नहीं करते, जबकि दोनों दो लिपियों में एक ही जाति की सांस्कृतिक साहित्यिक अभिव्यक्ति है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उर्दू साहित्य को शामिल न करने के पीछे एक तो उस समय का हिन्दी उर्दू विवाद है और दूसरे हिन्दी जाति के निर्माण और विकास की अधूरी समझ। वस्तुतः हिन्दी और उर्दू के सम्बन्ध के बारे में आचार्य शुक्ल के विचार काफी उलझे हुए तद्युगीन भाषा विवाद से प्रभावित और अन्तर्विरोधों से भरे हुए हैं। उर्दू के सन्दर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी आचार्य शुक्ल का ही अनुसरण करते हैं। हाँ, डॉ० रामविलास शर्मा ने हिन्दी जाति की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए अवश्य हिन्दी-उर्दू को एक ही खेमे में समेटा है। लेकिन उनकी चिन्ता इन दोनों के इतिहास की उतनी नहीं है जितनी कि उनके वर्तमान और भविष्य की। राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी उर्दू दोनों का विकास स्रोत एक ही माना है। साथ ही दोनों के साहित्य को हिन्दी जाति का जातीय साहित्य मानकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में विवेचित किया है। लेकिन कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि राहुल हिन्दी जाति की अवधारणा को विस्मृत भी कर देते हैं। वे हिन्दी साहित्य के जातीय स्वरूप को ध्यान में रखकर उसके इतिहास में हिन्दी के लोक साहित्य को भी समेटने का आग्रह करते हैं। और इसमें हिन्दी क्षेत्र की समस्त बोलियों के साहित्य को परिगणित करते हैं। उन्हीं के शब्दों में, 'हिन्दी के लोक साहित्य में हम उन सब भाषाओं के लोक साहित्य को लेना चाहिए, जिनके शिष्ट साहित्य को हम हिन्दी का साहित्य मानते हैं, जैसे विद्यापति की मैथिली, तुलसीदास की अवधी, सूरदास की ब्रज और पृथ्वीराज की मरुवाणी (मारवाड़ी) का लोक साहित्य। यही नहीं बल्कि असिलिपिबद्ध और अब तेजी से लिपिबद्ध होती ऊपर गिनायी हिन्दी क्षेत्र की अन्य लोक भाषाओं के लोक साहित्य को भी उसमें गिनना होगा।'[13] दूसरी ओर राहुल इन लोक भाषाओं को स्वतन्त्र जातीय भाषाएँ मानते हैं। उन्होंने बार बार हिन्दी की मूल बोली के रूप कौरवी और हरियाणी को बचा करते हुए हिन्दी प्रदेश की शेष लोक भाषाओं को स्वतन्त्र जातीय भाषाएँ माना है। वे लिखते हैं कि किसी साहित्यिक भाषा की बोली वही भाषा हो सकती है जिसका व्याकरण मामूली भेद के साथ एक सा हो और जिसके समझने में एक-दूसरे से परिचय रखनेवालों को दिक्कत न हो। हिन्दी की बोली वस्तुतः कौरवी (मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर के पूरे जिले तथा पास के गंगा जमुना पार के भी जिनों ही भू भाग की बोली) और हरियाणी (रोहतक आदि अम्बाला कमिश्नरी के जिलों की भाषा) है। ये दोनों बोलियाँ असल में एक सी ही तरह

सा बदले हुए रूप हैं। भेद 'है' और 'स' का है। बाकी भाषाएँ हिन्दी की बोलियाँ बल्कि उसी तरह स्वतन्त्र भाषाएँ हैं जैसे बगला और गुजराती। पूर्णियाँ (मथिली) मारवाड़ी का कौन एक भाषा (हिन्दी) की बोली कह सकता है? मारवाड़ी गुजराती अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रखती है, और पूर्णियाँ (मैथिली) भाषा बगला से। मार और मथिली वाले यदि अपनी-अपनी भाषा म बोलें, तो वह एक-दूसरे की बात समझ पायेंगे।[13] राहुल न हिन्दी क्षेत्र की विभिन्न लोक भाषाओं को स्वतन्त्र जातीय भा मानते हुए उन्हें शिक्षा, प्रशासन आदि विभिन्न जीवन व्यवहारों की भाषा बनाने पर दिया है। साथ ही, उन्होंने इन भाषाओं के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की माँग भी है। वे लिखते हैं, "भारत और ससार का अब की बार स्वतन्त्र होना इन भाषाओं के भी कुछ मतलब रखता है और यही कि इनके स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार किया जा मल्ली (भोजपुरी) भाषा भाषी आरा, छपरा मोतिहारी बलिया म सम्पूर्ण तथा गो पुर, आजमगढ़, गाजीपुर जिलों के कितने ही भागों को मिलाकर एक अलग मल्ल प्रज कायम किया जाय, काशिका (बनारसी) भाषा भाषी बनारस आदि जिलों को मिल काशी प्रजातन्त्र कायम किया जाय। यदि हर तरह से युक्त और न्याय इस योजन 'अखण्ड बिहार' का नारा टकराता है, तो वह झूठा नारा है, उसमें बहुसख्यक बिहा का ही नहीं देश का भी कल्याण नहीं है, और ऐसे नारे को तिलांजलि देनी होगी।"[1]

राहुल हिन्दी प्रदेश की तथाकथित जातीय भाषाओं (लोक भाषाओं) के प्र अतिरेक के बावजूद हिन्दी और अहिन्दी दोनों क्षेत्रों म राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक अन्तर प्रान्तीय भाषा के रूप म हिन्दी की आवश्य महसूस करते हैं। वे लिखते हैं "मातृभाषानुसारी प्रान्तों से हिन्दी का कोई हानि नहीं सम्पूर्ण भारत सघ की अनिवार्य राष्ट्र भाषा रहेगी। अग्रेजी का और कितनी ही दशा तक भारतीय सघ की भाषा बनाये रखने का मसूबा बाँधनेवाले वही हो सकते हैं सोचने की सारी शक्ति खो चुके हैं। जिस तरह सोवियत सघ न समूचे देश म तीसरे (दसवें साल की आयु) से सघ की भाषा (रूसी) का पठन पाठन अनिवार्य कर दिया है, ही हमें अपने यहाँ हिन्दी को अनिवार्य कर देना है। इसका विरोध करनेवाले सघ हों वे लाछन से बच नहीं सकते।"[14] राहुल न भोजपुरिया की ओर से जातीय भाष रूप मे भोजपुरी की सबसे अधिक वकालत की है, लेकिन साथ ही सम्पर्क भाषा के रू हिन्दी का भी उसी तेवर से समर्थन किया है। काश! यह समझ आज के लोक ४ हामियों की बन पाती। मैथिली को सविधान की अष्टम सूची म सम्मिलित कराने की म मस्त हठधर्मी मैथिली या भोजपुरी राहुल स कुछ सीखना चाहिए, जो कि हिन्दी के पोस्टरों और साइन बोर्डों पर कालिख पोतना ही मैथिली की सबसे बड़ी सेवा समझते या फिर जो हिन्दी को साम्राज्यवादी व शोषणमूलक भाषा समझते हैं और अँगरजी क म जयमाल डालना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

बहरहाल, राहुल की लोक भाषाओं को स्वतन्त्र जातीय भाषाएँ मानने की धा पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। यह इसलिए भी जरूरी है, क्योंकि इन फिर बहुत ही बेसुरे ढग से लोकभाषाओं का ...

इसमें कुछ मार्क्सवादी भी सहयोग दे रहे हैं। दरअसल, हिंदी भाषा (खड़ी बोली) के जातीय रूप को न समझ पाने के कारण लोक भाषाओं को स्वतन्त्र जातीय भाषाएँ मानने की जिद की जा रही है। यह सही है कि खड़ी बोली हिंदी की मूल भाषा कौरवी है। लेकिन एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया से गुजरने के बाद वह सम्पूर्ण हिंदी प्रदेश की ग्राह्य भाषा हो गयी है जातीय भाषा की भूमि में पहुँच गयी है। इस जातीय भाषा में विभिन्न जनपदीय बोलियों के तत्व घुलमिल गये हैं। डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भाषा और समाज' में इसका विस्तृत विवेचन किया है। वस्तुतः जातीय भाषा के रूप में हिंदी के विकास की प्रक्रिया सरल व सीधी रेखा की तरह नहीं हुई है और अब भी नहीं हो रही है। जातिवाद साम्प्रदायिकता, शासक वर्गीय भेदनीति इसके विकास मार्ग में रोड़े अटकाता रहा है। आर्थिक राजनीतिक विकास की बेसुरी गति भी हिन्दी के जातीय भाषा के रूप में विकास को अवरुद्ध करती रही है। एक विशेष दौर में ब्रजभाषा, अवधी का एक सीमा तक जातीय साहित्य के रूप में विकास, पुनः खड़ी बोली का जातीय भाषा एवं साहित्य के रूप में पुनर्स्थापित होना जातीय भाषा हिन्दी के विकास की जटिलता को दर्शाता है। डा० रामविलास शर्मा ने इस जटिल विकास के आर्थिक राजनीतिक कारणों की खोज की है। अंगरेजी राज के दौरान साम्राज्यवादी व शासक वर्गीय भेद नीति के तहत हिंदी उर्दू का विवाद खड़ा किया गया जिसे आज का शासक वर्ग भी हिंदी भाषी प्रान्तों में द्वितीय राजभाषा के रूप में उर्दू को प्रतिष्ठित कर इस विवाद में जान फूंक रहा है। दुर्भाग्यवश कम्युनिस्ट पार्टियाँ भाषा और धर्म में किसी तरह का सम्बन्ध न मानने के बावजूद उर्दू को मुस्लिम अल्पसंख्यक की भाषा मानती हैं और इस आधार पर उसके द्वितीय राजभाषा बनाये जाने का समर्थन कर रही हैं। कहना न होगा कि प्रकारान्तर से यह शासकवर्गीय भेदनीति में शिरकत करने का प्रमाण है। बिहार में जातीय भाषा हिंदी के विकास में कट्टर जातिवाद (मैथिलवाद) भी बाधक है। मैथिल ब्राह्मणों ने मैथिल और मैथिली के नाम पर हिन्दी के प्रति विष वमन करना अपना पुनीत कर्तव्य निर्धारित कर लिया है। वस्तुतः यह सारा हो हल्ला हिंदी के जातीय रूप को न समझ पाने के कारण हो रहा है। यह सही है कि हिंदू साम्प्रदायिक और सरकारी भाषाविद् जिस तत्सम बहुल हिन्दी को गढ़ रहे हैं वह जन जीवन से कोसों दूर है। राहुल ने भी इस तथ्य को रेखांकित किया है और ऐसे लोगों की भरपूर मरम्मत भी की है। ऐसे लोगों में एक आचार्य रघुवीर हैं जिनके पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की विस्तृत समीक्षा करते हुए राहुल ने जबर्दस्त प्रहार किया है। इस सन्दर्भ में राहुल व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए लिखते हैं "आचार्य के परिश्रम के लिए सारे भारतवासियों को कृतज्ञ होना चाहिए और बड़ी उत्सुकता के साथ उनके बृहद्-कोश के प्रकाशित होने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। सुना जाता है मध्य प्रान्त की सरकार ने इस कोश की परिभाषा के अनुसार वहाँ-कहीं कालेजों में पढ़ाई भी शुरू करवा दी है। वहाँ विद्यार्थी अब जरूर यह समझने लगे हैं कि हमारे पूर्वज क्या 'घोड़ा' विद्या पढ़ा करते थे। मैं तो इस जन्म के लिए हिम्मत हार चुका हूँ और अगले जन्म पर विश्वास नहीं रखता। नहीं तो इन्द्र की भाँति सहस्र वर्ष तपस्या करके भी इस नये शब्दानुशासन पर अधिकार प्राप्त करता। दूसरे हिम्मतवालों से मैं यही कह सकता हूँ—

शिवा व सम्पुप्यान ।[18] अगर आज राहुल जीवित होते, तो देखते कि कितने आचार्य रघुवीर पदा हो गये हैं और सरकारी टकसाल में राजभाषा हिन्दी को ढाल रहे हैं। यह हिन्दी अँगरेजी से भी कठिन है। लेकिन दूसरी ओर लेखकों का एक बड़ा जत्था ऐसी हिन्दी लिख रहा है, जहाँ खड़ी बोली और लोक-भाषाओं का फाक घटता हुआ दिखायी देता है, हिन्दी बिल्कुल चलते रूप में प्रकट होती है। वस्तुतः यही जातीय भाषा हिन्दी का असली रूप है। जो लोग हिन्दी को संस्कृत की बेटी मानकर उसमें अप्रचलित तत्सम शब्दों को ठूँस रहे हैं, वे हिन्दी की रथी सजा रहे हैं।

बहरहाल, लोक भाषाओं को जातीय भाषाएँ मानने मनवाने की धारणा पर अँगरेजी भाषा के प्रभुत्व को ध्यान में रखकर भी सोचना चाहिए। दुर्भाग्यवश राहुल ने इसे नजरअन्दाज कर दिया है। लेकिन यह दुर्भाग्य सिर्फ राहुल का ही नहीं बल्कि आज के कुछ अति उत्साही मार्क्सवादियों का भी है। दरअसल इस देश में अँगरेजी भाषा की आड़ में शोषण की एक जबर्दस्त प्रक्रिया चल रही है। शिक्षा, प्रशासन, राजनीति हरेक क्षेत्र में उच्च वर्ग अँगरेजी की आड़ में शोषण कर रहा है। अँगरेजों को गये हुए एक अर्सा गुजर गया लेकिन अँगरेजी का शिकंजा अब भी बरकरार है। इस भाषा की आड़ में उच्च वर्ग अपने प्रभुत्व और शोषण को बरकरार किए हुए है। इसलिए अँगरेजी के प्रभुत्व को चुनौती देना जरूरी है। कहना न होगा कि हिन्दी इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। शासक वर्ग अँगरेजी के प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए तरह-तरह की बहानेबाजी कर रहा है। लेकिन हिन्दी उसके सामने अपनी अपार शक्ति और सम्भावनाओं के साथ प्रश्नचिह्न बनकर उपस्थित हो गयी है। अगर हम लोक भाषाओं को जातीय भाषाएँ मानकर संविधान की आठवीं सूची में सम्मिलित किए जाने की जिद करेंगे तो वोट की राजनीति के कारण यह माँग तो स्वीकृत हो जायेगी। लेकिन तब फिर शासक वर्ग (उच्च वर्ग) अँगरेजी की सम्पन्नता और लोक भाषाओं की विपन्नता की बहानेबाजी कर एक लम्बे अर्से तक अँगरेजी के प्रभुत्व को कायम रखेगा और प्रकारान्तर से अपने प्रभुत्व व शोषण को भी कायम रखेगा। इसलिए यह पूरे हिन्दी प्रदेश के जनगण के हित में है कि लोक भाषाओं का झुनझुना न बजाया जाय।

राहुल ने अँगरेजी के प्रभुत्व का विरोध किया है और संघीय सरकार की भाषा के रूप में हिन्दी की वकालत भी की है। इस हिन्दी प्रेम के पुरस्कारस्वरूप उन्हें कम्युनिस्ट पार्टी से भी निकाला गया। मार्क्सवादी विचारक आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा ने उन्हें साम्प्रदायिक तक कह डाला। यह और बात है कि अब डॉ० शर्मा राहुल से भी कई डग आगे बढ़कर हिन्दी की वकालत कर रहे हैं। डॉ० शर्मा की यह वकालत विडम्बना ही है। बावजूद इसके राहुल से चूक वहाँ होती है जब वे लोक भाषाओं को स्वतन्त्र जातीय भाषाएँ मानते हैं। और इस प्रकार प्रकारान्तर से न चाहते हुए भी अँगरेजी के प्रभुत्व को एक लम्बे अर्से तक बरकरार रखने की भूमि तैयार कर देते हैं। ध्यान रहे कि जातीय भाषा के रूप में लोक भाषाओं की चर्चा करना एक बात है और लोक भाषाओं के साहित्य की चर्चा करना दूसरी बात है। हिन्दी साहित्य के व्यापक जातीय स्वरूप को ध्यान में रखकर उसके अन्तर्गत लोक साहित्यों को अन्तर्भुक्त कर लेना चाहिए। साथ ही लोक साहित्य की

सृजनशीलता को भी बढ़ावा देना चाहिए। खड़ी बोली भाषा एवं साहित्य को लोक भाषाओं एवं लोक साहित्य से सृजनात्मक सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। खड़ी बोली साहित्य को रूप और अन्तर्वस्तु दोनों स्तरों पर लोक भाषाओं के साहित्य से सम्पर्कित होना चाहिए। ऐसा करके ही लोक भाषा और खड़ी बोली के फाँक को कम किया जा सकता है और प्रकारान्तर से लोक भाषाओं को स्वतन्त्र जातीय भाषाएँ मानने मनवाने की प्रवृत्ति को ध्वस्त किया जा सकता है।

हिन्दी और उसकी लोकभाषाओं का सृजनात्मक सम्बन्ध

ध्यातव्य है कि शिष्ट साहित्य के स्वरूप के परिवर्तन और विकास पर लोकभाषाओं का गहरा प्रभाव पड़ता है कई बार यह प्रभाव निर्णायक भूमिका अदा करता है। साहित्य की भाषा अपने लम्बे इतिहास के दौरान बार बार लोकभाषाओं से नये जीवन्त तत्वों को ग्रहण करके आगे बढ़ती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी नये परिवर्तन लोकभाषाओं के सम्पर्क से प्रेरित और प्रभावित हुए हैं। इसलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन के सन्दर्भ में लोकभाषाओं पर ध्यान देना जरूरी है। राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के प्रसंग में बार-बार लोकभाषाओं के अध्ययन पर जोर दिया है। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लोकभाषाओं से सम्पर्कित व प्रेरित परिवर्तनों को रेखांकित किया है। वे समसामयिक हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में लोकभाषाओं और विशेषकर कौरवी से सम्पर्कित होने की बेहद जरूरत महसूस करते हैं। उन्होंने इस बात पर खेद व्यक्त किया है कि हिन्दी का गहरा सम्बन्ध अपनी मूल बोली कौरवी से नहीं है, 'कोई भी साहित्यिक या शिष्ट भाषा आकाश से नहीं उतरती, उसका किसी-न किसी बोली से विकास होता है। विद्वान यह भी मानते हैं कि जिस साहित्यिक भाषा का अपनी बोली से अटूट सम्बन्ध रहता है वह बड़ी सजीव होती है। मुहावरे, संकेत आदि जितने भाषा को सबल बनानेवाले तत्व हैं वह बोलियों की देन हैं। जिस साहित्यिक भाषा का अपने मूल स्रोत—बोली—से सम्बन्ध टूट जाता है उसकी सजीवता बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। भारत की सभी साहित्यिक भाषाएँ अपनी बोलियों से अक्षुण्ण सम्बन्ध रखती हैं, हिन्दी ही इसका एकमात्र अपवाद है।'[17] राहुल ने कई मायनों में हिन्दी भाषा और साहित्य की अक्षमता का राज अपनी मूल बोली कौरवी से कटा पिटा होना माना है। इसलिए हिन्दी लेखकों को उससे जुड़ने की सलाह देते हैं— 'आज हिन्दी उस जगह पहुँच गयी है, जहाँ उसे अपने मूल स्रोत से सम्बन्ध किए बिना उसकी अधूरी वर्णन शक्ति अधूरे भाव प्रकाशन को दूर नहीं किया जा सकता। आज मल्लाह माँझी, लोहार, कुम्हार के सकड़ों हथियारों और क्रियाओं का वर्णन क्यों हमारे उपन्यास, कहानी लेखक अपने ग्रन्थों में नहीं करते? मैं समझता हूँ हिन्दी के सम्बन्ध में सबसे जरूरी एक पंचवार्षिक योजना इस काम के लिए बनानी है कि कौरवी के अलिखित गीत कविता, कहानी, कहावत मुहावरों, शिल्प शब्दों का विस्तृत संग्रह किया जावे। हिन्दी के उपन्यास कहानी लेखकों को सामाजिक जीवन के चित्र खींचनेवालों को कुरु जिलों के गाँवों में चन्द मासों का प्रवास अपनी शिक्षा का एक अंग बनाना चाहिए।'[18]

साहित्यिक भाषा की गतिशीलता और समाज सापेक्षता

साहित्य के इतिहास-लेखन में भाषा और साहित्य के सम्बन्ध के बारे में इतिहासकार के दृष्टिकोण का बुनियादी महत्व होता है। "इस दृष्टिकोण के अनुसार ही भाषा और यथार्थ भाषा और विचार तथा रूप और अन्तवस्तु सम्बन्धी धारणाएँ बनती हैं। इसी दृष्टिकोण का अन्तर रूपवादी और वस्तुवादी इतिहास दृष्टियों का अन्तर बन जाता है। रूपवादी लेखक साहित्य को केवल भाषिक संरचना मानता है, वह साहित्यिकता को भाषानिष्ठ और रूप-केन्द्रित मानता है, आलोचना में वह इसी साहित्यिकता का विश्लेषण करता है और इतिहास में इसी साहित्यिकता के परिवर्तन एवं विकास की खोज करता है। वस्तुवादी साहित्य में व्यक्त समाज यथार्थ विचार, भाव और अन्तवस्तु का विश्लेषण करता है, वह साहित्य की भाषा और रूप को समाज यथार्थ विचार भाव और अन्तवस्तु की सापेक्षता में देखता है और वह इतिहास में भाषा और रूप सम्बन्धी परिवर्तन तथा विकास को समाज, यथार्थ, विचार भाव और अन्तवस्तु सम्बन्धी परिवर्तनों से जोड़कर व्याख्या करता है।"[19] राहुल ने इसी दूसरे दृष्टिकोण के तहत साहित्य की इतिहास-यात्रा की है। उनकी दृष्टि में भाषा अपनी प्रकृति और प्रयोजन में सामाजिक होती है। उसके परिवर्तन और विकास का समाज के परिवर्तन और विकास से गहरा सम्बन्ध होता है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की इतिहास-यात्रा के सन्दर्भ में समाज और भाषा के परिवर्तन, परम्परा और विकास को रेखांकित किया है। उन्हें इतिहास में जहाँ भाषागत कोई शिफ्ट दिखायी पड़ा है, उसके सामाजिक आर्थिक कारणों की खोज की है। यह प्रवृत्ति 'हिन्दी काव्यधारा' और 'दोहा-कोश' में विशेष रूप से दिखायी पड़ती है। राहुल की दृष्टि में 14वीं सदी से तत्सम शब्दों को खूब तत्परता से उधार लेना शुरू हुआ। वे तत्सम शब्दों की ओर इस प्रत्यावर्तन को भाषा-क्षेत्र में इस्लाम के प्रभुत्व की प्रतिक्रिया नहीं मानते। उन्होंने इसकी व्याख्या समाज की विकास प्रक्रिया के साथ जोड़कर की है। वे लिखते हैं, 'समाज के विकास के साथ-साथ उसके लिए शब्दों की आवश्यकता भी पड़ती है। जान पड़ता है जिस वक्त शब्दों की माँग बहुत बढ़ गयी थी, उस वक्त कुछ तत्सम (संस्कृत) शब्दों का भी बुलाया जाने लगा। नये अर्थों में नये शब्दों का प्रयोग करने के लिए साधारण लोग भी मजबूर थे और वह जैसे तैसे संस्कृत के क्लिष्ट उच्चारण पर अधिकार प्राप्त करने की कोशिश करने लगे। जब इस तरह अनिवार्य कारणों से लोग कितने ही तत्सम शब्दों को अपना चुके और उन्होंने उसके उच्चारण पर भी कुछ अधिकार किया तो फिर पण्डितों की बन आयी और उन्होंने संस्कृत तत्सम शब्दों को खूब ठूसना शुरू किया।"[20] ध्यान दें कि राहुल सामाजिक आवश्यकतानुसार भाषागत परिवर्तन और तत्सम शब्दों की आमद पसन्द करते हैं लेकिन तत्सम शब्दों की पण्डिताऊ ठूस-ठास के प्रबल विरोधी हैं। उन्होंने हर समय भाषा को गतिशील मानते हुए उसकी समाज सापेक्ष व्याख्या की है। [illegible] भक्त कवियों, दक्नी कवियों, छायावादियों, प्रगतिवादियों—इन [illegible] काव्य भाषा को समाज-सापेक्षता में देखा परखा है। साथ ही इन [illegible] की निजी सृजनशीलता को भी रेखांकित किया है।

4

राहुल की इतिहास-चिन्ता के अन्य रूप

राहुल सांकृत्यायन की इतिहास यात्रा उनके जीवन और व्यक्तित्व की तरह व्यापक और बहुआयामी है। वह (इतिहास-यात्रा) उनके लेखन के विविध रूपों में तथा विविध स्तरों पर दिखायी पड़ती है। राहुल की इतिहास चिन्ता कथा साहित्य और साहित्येतिहास के अलावा जीवनी और संस्मरण, यात्रा वृत्तान्त और देश दर्शन, संस्कृति, धर्म और दर्शन सम्बन्धी लेखनों के सन्दर्भ में भी प्रकट हुई है। साथ ही, उन्होंने स्वतन्त्र रूप से भी इतिहास लेखन का काम किया है।

मध्य एशियाई इतिहास का समग्रता में अध्ययन

राहुल ने मुख्यतः मध्य एशिया के इतिहास पर दृष्टिपात किया है। उन्होंने मध्य एशिया के देशों के इतिहास पर एकत्र और अलग अलग दोनों तरह से विचार किया है। 'मध्य एशिया का इतिहास' एकत्र रूप में मध्य एशियाई देशों के इतिहास की समग्र जटिलता को समझने का अनोखा प्रयास है। यह इतिहास ग्रन्थ दो भागों में है। पहले भाग में प्रागैतिहासिक मानव युग (1 लाख 3000 वर्ष ई० पू०), पाषाण युग, ताम्र युग, लौहयुग (700 ई० पू०) मुहम्मद गजनी और जलालुद्दीन के युग तक का इतिहास है। दूसरे भाग में 1200 ई० से लेकर 1929 ई० तक के मध्य एशिया का इतिहास है। राहुल ने इस ग्रन्थ में उत्तरापथ (1200-1550 ई०) के सामाजिक-आर्थिक इतिहास का प्रामाणिक विवेचन किया है। इस क्रम में उन्होंने चीन के मंगोल वंश, रूसी, ईरानी और अफगानी जातियों के सामाजिक-आर्थिक जीवन का ऐतिहासिक विश्लेषण किया है। साथ ही चगताई वंश (दक्षिणपथ) तथा उत्तरापथ (1559 1801 ई०) के रूसी प्रसार और क्रूर राजनीतिक शासन तन्त्र का इतिहास भी पूरी प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया गया है। राहुल ने विश्व इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक घटना बोल्शेविक क्रान्ति का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया है। 'जारशाही का अन्तिम प्रसार' (1801-1917 ई०) शीर्षक अध्याय में क्रान्ति-पूर्व रूसी जीवन के सामाजिक राजनीतिक परिवेश के तथ्यात्मक

सन्दर्भ

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 7
2 वही, पृ० 8
3 राहुल सांकृत्यायन, सिद्ध कवियों की भाषा राहुल निबन्धावली, पृ० 100
4 राहुल सांकृत्यायन हिन्दी काव्यधारा, पृ०8
5 राहुल सांकृत्यायन, दोहा-कोश, पृ० 7
6 राहुल सांकृत्यायन हिन्दी काव्यधारा, पृ० 9
7 वही, पृ० 6
8 वही, पृ० 10
9 वही, पृ० 4 5
10 डा० रामविलास शर्मा भाषा और समाज, पृ० 10 11
11 डॉ० रामविलास शर्मा भारतीय साहित्य, पृ० 114
12 राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी लोक साहित्य राहुल निबन्धावली, पृ० 69
13 राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी लोक साहित्य, राहुल निबन्धावली, पृ० 68 69
14 राहुल सांकृत्यायन साहित्य चर्चा साहित्य निबन्धावली, पृ० 73
15 राहुल सांकृत्यायन, प्रगतिशील लेखक, साहित्य निबन्धावली, पृ० 111 12
16 राहुल सांकृत्यायन, आचार्य रघुवीर का परिभाषा निर्माण, राहुल निबन्धावली, पृ० 143
17 राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी की मूल भाषा कौरवी बोली है, राहुल निबन्धावली पृ० 54
18 राहुल सांकृत्यायन, मातृभाषाओं का प्रश्न साहित्य निबन्धावली पृ० 84
19 डा० मैनेजर पाण्डेय साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ० 101
20 राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी काव्यधारा पृ०11

4

राहुल की इतिहास-चिन्ता के अन्य रूप

राहुल सांकृत्यायन की इतिहास यात्रा उनके जीवन और व्यक्तित्व की तरह व्यापक और बहुआयामी है। यह (इतिहास-यात्रा) उनके लेखन के विविध रूपों में तथा विविध स्तरों पर दिखायी पड़ती है। राहुल की इतिहास चिन्ता कथा साहित्य और साहित्येतिहास के अलावा जीवनी और संस्मरण, यात्रा वृत्तान्त और देश दर्शन संस्कृति, धर्म और दर्शन सम्बन्धी लेखनों के सन्दर्भ में भी प्रकट हुई है। साथ ही, उन्होंने स्वतन्त्र रूप से भी इतिहास-लेखन का काम किया है।

मध्य एशियाई इतिहास का समग्रता में अध्ययन

राहुल ने मुख्यतः मध्य एशिया के इतिहास पर दृष्टिपात किया है। उन्होंने मध्य एशिया के देशों के इतिहास पर एकत्र और अलग अलग दोनों तरह से विचार किया है। 'मध्य एशिया का इतिहास' एकत्र रूप में मध्य एशियाई देशों के इतिहास की समग्र जटिलता को समझने का अनोखा प्रयास है। यह इतिहास ग्रन्थ दो भागों में है। पहले भाग में प्रागैतिहासिक मानव युग (1 लाख 3000 वर्ष ई० पू०), पाषाण युग, ताम्र युग, लौहयुग (700 ई० पू०) मुहम्मद गजनी और जलालुद्दीन के युग तक का इतिहास है। दूसरे भाग में 1200 ई० से लेकर 1929 ई० तक के मध्य एशिया का इतिहास है। राहुल ने इस ग्रन्थ में उत्तरापथ (1200 1550 ई०) के सामाजिक-आर्थिक इतिहास का प्रामाणिक विवेचन किया है। इस क्रम में उन्होंने चीन के मंगोल वंश, रूसी, ईरानी और अफगानी जातियों के सामाजिक-आर्थिक जीवन का एतिहासिक विश्लेषण किया है। साथ ही, चगताई वंश (दक्षिणपथ) तथा उत्तरापथ (1559 1801 ई०) के रूसी प्रसार और क्रूर राजनीतिक शासन तन्त्र का इतिहास भी पूरी प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया गया है। राहुल ने विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण और एतिहासिक घटना बोल्शेविक क्रान्ति का एतिहासिक मूल्यांकन किया है। जारशाही का अन्तिम प्रसार (1801-1917 ई०) शीर्षक अध्याय में क्रान्ति पूर्व रूसी जीवन के सामाजिक राजनीतिक परिवेश के तथ्यात्मक

विश्लेषण के साथ साथ लेखक ने पूँजीवादी आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहे वर्गीय समाज की जटिलताओं का विश्लेषण किया है। वस्तुत राहुल ने 'मध्य एशिया का इतिहास' में मध्य एशिया के सामाजिक-आर्थिक जीवन के इतिहास की वस्तुगत व्याख्या करने का प्रयास किया है।

राहुल ने एशिया के दुर्गम भूखण्डों में शीर्षक यात्रा वृत्तान्त में भी प्रकारान्तर से मध्य एशिया के कुछ भू भागों जैसे लद्दाख, तिब्बत, अफगानिस्तान और ईरान के इतिहास पर प्रकाश डाला है। इस कृति में राहुल की 1933 37 ई० तक की महत्वपूर्ण यात्राओं के संस्मरण हैं। पुस्तक में यात्रा वृत्तान्त और भावपूर्ण संस्मरणों का अद्भुत समन्वय हुआ है। राहुल ने यात्रा संस्मरणों के माध्यम से लद्दाख तिब्बत, ईरान और अफगानिस्तान के सामाजिक राजनीतिक-सांस्कृतिक परिवेश का रोचक ढंग से विश्लेषण किया है। पुस्तक में तिब्बत और ईरान के प्राचीन इतिहास सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों घटनाओं का जिक्र किया गया है। एशिया के दुर्गम भूखण्डों में इतिहास ग्रन्थ नहीं है किन्तु एशियाई देशों के इतिहास और सामाजिक जीवन को प्रामाणिक ढंग से समेटने का अच्छा प्रयास है।

भारतीय इतिहास का अध्ययन

यह कहना असंगत नहीं होगा कि राहुल ने भारतीय इतिहास की समग्र जटिलता को समझने के लिए मध्य एशियाई देशों के इतिहास की विराट यात्रा की है। वस्तुत उनकी मूल इतिहास चिन्ता भारतवर्ष से सम्बद्ध है। उन्होंने उपर्युक्त कृतियों में मध्य एशियाई देशों की इतिहास यात्रा के सन्दर्भ में भारत पर दृष्टिपात करने के साथ ही स्वतन्त्र रूप से भी उसके इतिहास पर विचार किया है। इस सन्दर्भ में 'ऋग्वैदिक आर्य' और 'अकबर' उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। राहुल ने 'ऋग्वैदिक आर्य' में आर्यों की भौगोलिक, सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का विवेचन किया है। उनकी दृष्टि में "ऋग्वेद से ही हमारे इतिहास की लिखित सामग्री का आरम्भ होता है।"[1] ऋग्वैदिक आर्यों की सभ्यता के स्वरूप पर विचार करते हुए राहुल ने लिखा है, 'ऋग्वैदिक आर्यों की संस्कृति पशुपालों और ग्रामों की संस्कृति थी।'[2] सारत इस पुस्तक में ऋग्वैदिक आर्यों के सामाजिक जीवन, आर्य-संस्कृति एवं उनके ऐतिहासिक सन्दर्भों को समेटने का प्रयास किया गया है।

राहुल ने अपनी पुस्तक 'अकबर' में भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर अकबर का मूल्यांकन किया है। उनकी दृष्टि में, 'अशोक के बाद हमारे देश में दूसरा महान ध्रुवतारा अकबर ही दिखायी पड़ता है।"[3] राहुल ने सांस्कृतिक समन्वय के सन्दर्भ में अकबर की महती भूमिका को रेखांकित किया है। 'भारत में दो संस्कृतियों के संघर्ष से जो भयंकर स्थिति पिछली तीन चार शताब्दियों से चल रही थी, उसको सुलझाने के लिए चारों तरफ से प्रयत्न करने की जरूरत थी और प्रयत्न ऐसा कि उसके पीछे कोई दूसरा छिपा उद्देश्य न हो। संस्कृतियों के समन्वय का प्रयास हमारे देश में अनेक बार किया गया। पर जो समस्याएँ इन शताब्दियों में उठ खड़ी हुई थीं, वह उससे कहीं अधिक भयंकर और कठिन थीं। अकबर ने इसी महान समन्वय का बीड़ा उठाया।"[4] राहुल ने अकबर की

धम निरपेक्षता का गुणगान किया है और उसे सही अर्थों मे देशभक्त अपने राष्ट्र का परम उन्नायक माना है। उन्होंने अकबर के समकालीन महत्वपूर्ण व्यक्तियो 'बीरबल' 'तानसेन' 'हुसेन खाँ', 'टोडरमल', 'रहीम' आदि से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। सारतः राहुल ने अपनी कृति 'अकबर' म केवल ऐतिहासिक तथ्यो और घटनाओ का सकलन नहीं किया है, बल्कि तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों का विश्लेषण ऐतिहासिक सन्दर्भों मे किया है। लेकिन राहुल न अकबर के मूल्याकन मे अति उत्साह का भी परिचय दिया है। उन्होंने अकबर के ऐतिहासिक व्यक्तित्व और उनकी राजनीतिक कार्यवाहियो का मूल्याकन करते हुए अतिरिक्त उत्साह का प्रदशन किया है और उनकी तमाम कमजोरियो का भी डिफेण्ड किया है। अकबर को 17वी सदी का ही नही, 20वी सदी का भी सास्कृतिक पैगम्बर माना है।

राहुल न जीवनियो और ससमरणो के माध्यम से भी भारतीय इतिहास के एकाधिक अध्यायो पर प्रकाश डाला है। उन्होंने अपनी कृति 'महामानव बुद्ध' मे गौतम बुद्ध के जीवन और विचारधारा के विवेचन के साथ ही तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक परिवेश एव सामाजिक सगठन का गम्भीर विश्लेषण किया है। उन्होंने बौद्ध-दशन के उदय और विकास की पष्ठभूमि उसके सामाजिक वैचारिक आधार एव भारतीय समाज के लिए उसकी महान भूमिका की विस्तत चर्चा की है।

राहुल का गहरा सरोकार भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन से रहा है। इसलिए इस आन्दोलन के इतिहास से जुडे लोगो के प्रति उनका झुकाव स्वाभाविक है। इस सन्दभ में उन्होंने जनता के सच्चे हिमायतियो को अपना उपजीव्य बनाया है। साम्राज्यवादी सामन्तवादी मूल्यो से समझौता करनेवाले काग्रेसियो की भरपूर आलोचना की है। और इसके विरोधी सुराजियो का समथन करते हुए उत्प्रेरित करनेवाली उनकी जीवनियाँ लिखी हैं। और इस बहाने स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास को उजागर किया है। 'सरदार पृथ्वीसिंह' और 'वीरचन्द्र सिंह गढवाली' ऐसी ही जीवनियाँ हैं। राहुल न 'सरदार पृथ्वीसिह' की जीवनी उस समय (1944) लिखी थी जब भारत साम्राज्यवादियो की सीधी गिरफ्त मे था। ऐसे समय सरदार पथ्वीसिंह जसे क्रान्तिकारी और साम्राज्यवाद विरोधी देशभक्त जन-योद्धा की जीवनी लिखना स्वय मे एक जोखिम भरा काम था। ब्रिटिश साम्राज्यवादियो न उन्हें कई बार गिरफ्तार किया और भारत के कोने कोने की जेलो मे कइ वर्षों तक वे बन्दी बनाकर रखे गये। राहुल न उनके जेल जीवन, जेल की अमानवीय यन्त्रणा और तकलीफदेह दौर का विवरण विस्तार के साथ लिखा है। उन्होंने सरदार के 'अज्ञातवास' के दौर मे किये जानेवाले सामाजिक राजनीतिक कार्यों का विवरण पेश किया है। सरदार पृथ्वीसिह के जीवन के ये दौर बेहद रोमाचक और खतरनाक थे, हमेशा मौत की छाया मँडराया करती थी। पथ्वीसिंह ने बार बार गाधीजी और काग्रेस की समझौता परस्ती तथा ढलमुल नीति को बेनकाब किया है। इस कृति के परिशिष्ट के अन्तगत सरदार पथ्वीसिंह और गाधीजी के बीच हुए पत्राचार सकलित किय गये हैं, जिसम सरदार का 1945 का लिखा गाधीजी के नाम एक लम्बा पत्र है। इस पत्र मे सरदार ने गाधीजी के राजनीतिक दशन पर कई प्रश्न चिह्न लगाये हैं और काग्रेस की

समझौतापरस्ती को बेनकाब किया है। दूसरा पत्र 1946 का लिखा हुआ है जिसमें उन्होंने गांधीजी की नीतियों से अपनी असहमति जाहिर करते हुए अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं के सन्दर्भ में अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं। सरदार ने हिन्दू मुस्लिम एकता, अछूत, चरखा और खद्दर जैसे सवालों पर गांधीजी की नीतियों के दिवालियेपन को उजागर किया है। वस्तुतः सरदार की यह जीवनी स्वाधीनता आन्दोलन की जनवादी धारा के तेवर को स्पष्ट करती है।

राहुल ने अपनी एक अन्य जीवनी-परक कृति 'वीरचन्द्र सिंह गढ़वाली' में पेशावर विद्रोह के नेता वीरचन्द्र सिंह गढ़वाली के जीवन और स्वाधीनता आन्दोलन के एक गौरवपूर्ण अध्याय का विस्तार से वर्णन किया है। ज्ञातव्य है कि 1930 तक आते-आते भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन अपनी ऊँचाइयों को छून लगा था। दूसरी ओर अंग्रेजी साम्राज्यवाद अपनी दमनात्मक कारवाइयों की हद से गुजर रहा था। ऐसे ही समय पेशावर में सन् 1930 के आस पास अंग्रेजी सेना की एक बड़ी बटालियन के गढ़वाली सिपाहियों ने अंग्रेजी सरकार के आदेश मानने से इनकार कर दिया। गढ़वाली सिपाहियों में देश भक्ति की आग जगाने का श्रेय वीरचन्द्र सिंह गढ़वाली को है, जो पेशावर की इसी बटालियन के सैनिक थे। अंग्रेजी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध भारतीय सैनिकों में देशभक्ति की भावना जगाने और उन्हें संगठित करने के जुर्म में वीरचन्द्र सिंह गढ़वाली को आजन्म कारावास की सजा दी गयी।

राहुल ने 'घुमक्कड़ स्वामी' में भी स्वाधीनता आन्दोलन को दृष्टिपथ में रखा है। यह कृति स्वामी हरिशरणानन्द की जीवनी है। इस कृति में स्वामीजी के जीवन के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज के अनेक अनजाने पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। राहुल ने उनके जीवन के विविध आयामों, समाज की वास्तविक स्थितियों भौगोलिक ऐतिहासिक चित्रों और राजनीतिक परिदृश्य को भी अपने लेखन का विषय बनाया है। उन्होंने स्वामी जी के जीवन चरित की चर्चा करते हुए भारतीय जीवन की समस्त विचित्रताओं और जटिलताओं का स्थान स्थान पर जिक्र किया है। देश की आग में (1919 22) शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी हरिशरणानन्द के जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करते हुए स्वाधीनता आन्दोलन के एक महत्वपूर्ण कालखण्ड की वास्तविक स्थिति को चित्रित किया है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में 'नये भारत के नये नेता' भी उल्लेखनीय कृति है। यह आधुनिक भारत के महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञों, रचनाकारों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की जीवनियों का संग्रह है। राहुल ने इन जीवनियों के माध्यम से आधुनिक भारत के सामाजिक राजनीतिक इतिहास का परिदृश्य प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस सन्दर्भ में लिखा भी है 'मैंने यहाँ जीवनियों को परिस्थितियों से अलग करके नहीं, बल्कि उनके भीतर एक दूसरे को प्रभावित करते हुए की तरह लिया है।'[7] यह कृति दो खण्डों में है, जिसमें सिर्फ पहला खण्ड ही उपलब्ध है। पहले खण्ड में 42 महान् पुरुषों की जीवनियाँ और उनसे सम्बन्धित संस्मरण संकलित हैं। इनमें सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, पी० सी० जोशी, अजय घोष, मुजफ्फर अहमद, सहजानन्द सरस्वती आदि कुछ प्रमुख नाम हैं। नये भारत के नये नेताओं की ये जीवनियाँ मात्र जीवनियाँ नहीं हैं इनके माध्यम से आधुनिक

भारत के राजनीतिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। आधुनिक भारत की बदलती हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के साथ साथ तीव्र वैचारिक-राजनीतिक संघर्षों के विभिन्न पहलुओं को इसमें प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ये जीवनियाँ संक्षिप्त हैं, लेकिन सभी महत्वपूर्ण नेताओं की विचारधारा और उनकी राष्ट्र के प्रति की गयी सेवाओं को राहुल ने सही ढंग से प्रस्तुत किया है। राहुल ने इन राजनीतिक-साहित्यिक चिंतकों के विचारधारात्मक संघर्ष को समसामयिक परिस्थितियों से जोड़कर देखा है। इस पुस्तक में ऐसे अनेक महान जन-नेताओं और क्रान्तिकारियों की जीवनियाँ हैं, जिन्होंने भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध आजीवन संघर्ष किया और जिनकी ऐतिहासिक भूमिका को सरकारी इतिहासकारों ने अपने इतिहास के पन्नों में जगह नहीं दी है। चटगाँव विद्रोह के प्रसिद्ध अभियुक्त कल्पना दत्त के बारे में राहुल ने लिखा है, "बंगाल से बाहर हममें से बहुत कम चटगाँव की उस वीर तरुणी के बारे में जानते हैं जिसने आधुनिक हथियारों से सुसज्जित सुशिक्षित सेना की गोलियों से एक नहीं तीन तीन बार जबर्दस्त मुकाबला किया। वर्षा की बूँदों की तरह बरसती गोलियों के बीच से जो आँधी की तरह दौड़ती निकल गयी।"[6] कहना न होगा कि चटगाँव काण्ड के क्रान्तिकारियों को इस जीवनी में और प्रकारान्तर से स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में उचित स्थान दिया गया है। अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ इस जीवनी के माध्यम से मिलती हैं। चटगाँव में 24 सितम्बर 1920 को शहीद होने वाली प्रीति वद्दर (जिन्होंने गिरफ्तार होने से पूर्व आत्महत्या कर ली थी) का राहुल ने विशेष उल्लेख किया है। वस्तुतः 'नये भारत के नये नेता' में प्रमुख जन नेताओं की जीवनियों के माध्यम से आधुनिक भारत की सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक दशा पर प्रकाश डाला गया है।

'मेरे असहयोग के साथी' में राहुल ने असहयोग आन्दोलन के दौरान देश के सुदूर अंचलों में सक्रिय तौर पर आजादी के लिए संघर्ष करने वाले 38 देशभक्त कार्यकर्ताओं के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डाला है। राहुल स्वयं असहयोग आन्दोलन में सक्रिय तौर पर हिस्सा ले रहे थे। वस्तुतः 'मेरे असहयोग के साथी' उस दौर के महान् देशभक्तों की संक्षिप्त जीवनियों और उनके संस्मरणों का अद्भुत संकलन है। जलेश्वर प्रसाद, फिरंगी सिंह, मथुरा बाबू, हरिनन्दन सहाय आदि ऐसे ही कुछ नाम हैं जिन्होंने आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सारतः इस पुस्तक के अधिकांश संस्मरण पश्चिमी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के राजनीतिक आन्दोलनों से सम्बंधित हैं। राहुल ने अपनी कृति 'कप्तान लाल' में रोचक संस्मरणात्मक कथा लेखों के माध्यम से ब्रिटिश-कालीन भारत से लेकर कांग्रेसी शासन के भारतीय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, लूट खसोट और अमानवीय स्थितियों को चित्रित किया है। राहुल ने आजादी के वास्तविक चरित्र का पर्दाफाश करते हुए लिखा है, "सारे आन्दोलन के समय लोगों को बड़ी बड़ी आशाएँ दिलायी गयी थीं। रामराज्य का सपना गाँधीजी भी दिखलाने से बाज नहीं आते थे। लेकिन जो सरकार कायम की गयी थी, वह भ्रष्टाचार, घूस, रिश्वत के बल पर चलती थी।"[7] राहुल ने भारत के पड़ोसी देश चीन द्वारा मुक्ति के बाद दिनों दिन प्राप्त

की जानेवाली सफलताओं का उदाहरण देकर यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि भारत आज भी सही मायनों में मुक्ति नहीं पा सका है।

कहना न होगा कि प्रस्तुत जीवनियों और संस्मरणों के सन्दर्भ में अभिजनवाद विरोधी दृष्टि काम करती है। तभी गांधीजी और नेहरू जी जैसे शासक वर्गीय मौनारी राजनीतिज्ञों की उपेक्षा की गयी है और साधारण जन गण के हिमायतियों की भूमिकाओं को उजागर किया गया है। साथ ही जनवादी दृष्टि से स्वाधीनता आन्दोलन की वास्तविकताओं पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार ये जीवनियाँ भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण अध्याय पर भी प्रकाश डालती हैं।

जनपदों का इतिहास-लेखन

राहुल ने अपनी अनेक कृतियों में भारतवर्ष के कतिपय जनपदों के इतिहास पर भी प्रकाश डाला है। ये कृतियाँ कभी स्वतन्त्र रूप में इतिहास की पुस्तकों के रूप में लिखी गयी हैं और कभी यात्रा वृत्तान्त, देश दर्शन व संस्मरणात्मक कृतियों के रूप में। 'दार्जिलिंग परिचय' में राहुल ने दार्जिलिंग के जीवन और इतिहास का गहन अध्ययन किया है। उन्होंने दार्जिलिंग के प्राचीन इतिहास एवं वहाँ के निवासियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला है। दार्जिलिंग के प्राचीन इतिहास के विश्लेषण के क्रम में लेखक ने सिक्किम, भूटान और नेपाल से उसके सम्बन्धों का भी जिक्र किया है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की विस्तारवादी नीतियों के फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रीयताओं की जनता पर होनेवाले अमानवीय अत्याचारों और साम्राज्यवाद द्वारा स्वतन्त्र राज्यों के अस्तित्व खत्म किये जाने का विस्तार से उल्लेख किया है। सन् 1835 में सिक्किम नरेश ने साम्राज्यवादियों को दार्जिलिंग-सहित आस-पास की भूमि भेंटस्वरूप प्रदान की थी। राहुल ने सामन्तों की साम्राज्यवादपरस्ती के कारण दोहरे शोषण चक्र में पिस रही आम जनता की जीवन स्थितियों का प्रामाणिक चित्र पेश किया है। राहुल ने 'कुमाऊँ' में पर्वतीय जीवन की जटिलताओं का चित्रण करते हुए कुमाऊँ के प्राचीन इतिहास और आधुनिक परिदृश्य का पेश किया है। उन्होंने 'हिमाचल प्रदेश' और 'गढ़वाल' शीर्षक कृतियों में इन दोनों जनपदों (हिमाचल और गढ़वाल) के इतिहास पर प्रकाश डाला है। 'गढ़वाल' में पहाड़ी जिन्दगी की कठिन और जटिल वास्तविकता के मार्मिक चित्रण के साथ ही गढ़वाल की ऐतिहासिक भौगोलिक परिस्थितियों का भी चित्रण किया गया है। जनपदीय इतिहास लेखन के सन्दर्भ में 'जौनसार देहरादून' का भी उल्लेखनीय स्थान है। इसमें देहरादून की भौगोलिक सामाजिक परिस्थितियों और प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही प्रागैतिहासिक कालसे लेकर ब्रिटिश शासन और भारत के गणराज्य बनने के बाद तक के देहरादून के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत सन्दर्भ में 'जेतवन श्रावस्ती' और 'आजमगढ़ की पुराकथा' के भी नाम लिये जा सकते हैं।

'बचपन की स्मृति' शीर्षक संस्मरणात्मक कृति में भी राहुल की जनपदीय इतिहास दृष्टि झाँक गयी है। राहुल ने अपनी बाल्यावस्था की स्मृतियों की रोशनी में अपने गाँव,

गाँव के आस-पास के ग्रामीण परिवेश, विभिन्न प्राचीन स्थानो और आजमगढ़ जिले के भौगोलिक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिवेश को चित्रित किया है। इसमे भोजपुरी क्षेत्र की संस्कृति, भाषा और क्षेत्रीय समस्याओ पर रोचक रिपोर्ताज है। रोचक संस्मरणो और लोक प्रचलित कथाओ के माध्यम से लेखक ने जन-जीवन की सांस्कृतिक बनावट, जनता की महान विरासत और उसके गौरवपूर्ण ऐतिहासिक पक्षो को उभारने का प्रयास किया है। साथ ही, तत्कालीन भारतीय समाज की विपन्नता, अंग्रेजी लूट म ग्रस्त जनता के दु ख दद और उसके टूटते विघटित होते हुए मूल्यो को जटिल सामाजिक सम्बन्धो के सन्दभ म व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। अंग्रेजो शोषण के शिकार गाँव के किसानो की माल-गुजारी की समस्या से लेकर बदलते हुए भारतीय समाज के अनक जटिल सवालो को लेखक ने ईमानदारी के साथ चित्रित किया है।

भारतेतर देशो की इतिहास यात्रा

राहुल ने भारत से इतर अन्य मध्य एशियाई देशो की भी इतिहास-यात्रा की है। य इतिहास-यात्राएँ स्वतन्त्र रूप से लिखे गये इतिहास ग्रन्थो के अतिरिक्त यात्रा-वृत्तान्तो, जीवनियो के रूप मे भी की गयी हैं। 'सोवियत शासन का इतिहास' सोवियत रूस के राज-नीतिक इतिहास पर हिन्दी मे अपने ढग की अकेली पुस्तक है। यह पुस्तक दो भागो म है। पहले भाग मे समाजवादी जनतान्त्रिक मजदूर दल के निर्माण से लेकर 1914 17 तक के महत्वपूर्ण आन्दोलनो के दौर का इतिहास है। राहुल ने रूसी समाजवादी जनतान्त्रिक दल की स्थापना, बाद के समय म बोल्शेविको और मेन्शेविको के उदय और कम्युनिस्ट आन्दोलन के विभिन्न पहलुओ पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उन्होने वस्तुगत परिस्थि-तियो का विश्लेषण करते हुए कम्युनिस्ट आन्दोलन के अन्तर्विरोधो पर भी प्रकाश डाला है। इस पुस्तक के चौथे अध्याय मे 1908 12 के दौरान की राजनीतिक घटनाओ, कम्युनिस्ट आन्दोलन की लोकप्रियता, बोल्शेविको का पार्टी के रूप म उभरने आदि जैसे महत्वपूर्ण विषयो की चर्चा हुई है। पाँचवें तथा छठे अध्यायो म क्रमश 'प्रथम साम्राज्य वादी युद्ध' से पूव के रूसी समाज का वस्तुगत विश्लेषण और रूसी क्रान्ति की पृष्ठभूमि (1914-17) का विस्तृत विवेचन किया गया है।

इस पुस्तक के दूसरे भाग मे अस्थायी सरकार बनने के बाद पूजीपति वग और सवहारा वग के बीच बढते हुए राजनीतिक अन्तर्विरोधो, बोल्शेविको द्वारा सत्ता ग्रहण के लिए किये जानेवाले क्रान्तिकारी सघर्षों का तथ्यात्मक वणन है। राहुल ने सामाजिक-जनवादियो और मेन्शेविको के क्रान्ति विरोधी, सशोधनवादी समझौतापरस्त कायक्रमो की आलोचना करते हुए लेनिन के नेतत्व म चल रहे क्रान्तिकारी सघर्षों का ऐतिहासिक विश्लेषण किया है। उन्होने अस्थायी सरकार की दोगली नीतियो का पर्दाफाश करते हुए लिखा है, "क्योकि घटनाचक्र और अस्थायी सरकार का आचरण दिन-पर दिन प्रकट ही सिद्ध कर रहा था। समाजवादी क्रान्तिकारियो और मेन्शेविको की नीति भोले भालो को फँसाने और भरमाने की नीति है। अस्थायी सरकार न केवल क्रान्तिकारी आन्दोलनो

के खिलाफ थी उसने कितनी ही बार जनतांत्रिक स्वतंत्रता के ऊपर खुले प्रहार का प्रयत्न किया।"[8] राहुल ने सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी की ऐतिहासिक छठी पार्टी कांग्रेस द्वारा तय की गयी नीतियों और उनके ऐतिहासिक महत्त्व का मूल्यांकन किया है। यहाँ अक्तूबर 1917 के सशस्त्र विद्रोह से पूर्व 'केन्द्रीय कमेटी' की महत्त्वपूर्ण बैठकों में लिये गये निर्णयों और पार्टी के भीतर चल रहे दो विचारधाराओं के संघर्ष का गम्भीर विवेचन किया गया है। राहुल ने 10 अक्टूबर 1917 के लेनिन के राजनीतिक प्रस्ताव (जो केन्द्रीय कमेटी में बहस के लिए प्रस्तुत किया गया था) की विशेष चर्चा की है। बहरहाल क्रान्ति के पश्चात सोवियत समाजवादी शासन के विरुद्ध विश्व भर के पूंजीवादियों और साम्राज्यवादियों के क्रान्ति विरोधी गठबंधन का जिक्र करते हुए लेखक ने प्रतिक्रियावादी ताकतों द्वारा सोवियत सत्ता के खिलाफ की जा रही साजिशों का पर्दाफाश भी किया है। साथ ही 1921-25 की राजनीतिक घटनाओं, समाजवादी निर्माण की प्रक्रिया और सोवियत अर्थतन्त्र को शक्तिशाली बनाने की कम्युनिस्ट नीतियों का विश्लेषण किया गया है। नयी आर्थिक नीतियों की चर्चा करते हुए राहुल ने सोवियत समाज के सर्वांगीण विकास का वर्णन किया है। ग्यारहवीं से चौदहवीं पार्टी कांग्रेस का विस्तृत विवेचन करते हुए लेखक ने रूसी क्रान्ति की ऐतिहासिक सफलताओं का मूल्यांकन किया है। लेनिन की मृत्यु के बाद सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के आन्तरिक संघर्षों, स्तालिन और मोरस्की के गम्भीर मतभेदों और कामेनेव, जिनोवियेफ आदि के क्रान्ति विरोधी रवैये पर भी विचार किया गया है।

राहुल ने अपनी यायावरी के क्रम में भी रूस के इतिहास पर दृष्टिपात किया है। 'सोवियत भूमि' राहुल की सोवियत रूस की यात्राओं के निजी अनुभवों के आधार पर लिखा गया प्रामाणिक ग्रंथ है। इसमें सोवियत रूस का इतिहास, भूगोल, वहाँ के नगर, गांव, जन जीवन और सामाजिक-आर्थिक परिवेश के बारे में विस्तार से लिखा गया है। राहुल ने वहाँ प्रजातंत्रों के सामाजिक आर्थिक जीवन और विभिन्न राष्ट्रीयताओं के बीच के सम्बन्धों के बारे में पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है। उन्होंने सोवियत रूस की आर्थिक प्रगति का लेखा जोखा बड़े विस्तार से प्रस्तुत किया है। रूसी क्रान्ति के बाद रूसी उत्पादक शक्तियों के विकास और उत्पादन में निरन्तर बढ़ोत्तरी पर प्रकाश डाला है। 'रूस में पच्चीस मास' में भी रूस की विभिन्न राष्ट्रीयताओं की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का विशद अध्ययन प्रस्तुत किया है। 'सोवियत मध्य एशिया' में राहुल ने कजाकस्तान, किर्गिजिस्तान, उज्बेकिस्तान, तुर्कमानिस्तान एवं ताजिकिस्तान इन पाँच प्रजातन्त्रों के इतिहास और वहाँ के निवासियों की सभ्यता संस्कृति पर प्रकाश डाला है। सोवियत क्रान्ति के पूर्व ये प्रजातन्त्र तानाशाही शासन प्रबन्ध के अन्तर्गत शोषण और दमन के शिकार थे। सोवियत मध्य एशिया की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अवस्था दयनीय थी। राजनीतिक दृष्टि से सोवियत मध्य एशिया जारशाही दासता के जुए के नीचे कराह रहा था। राहुल ने रूसी क्रान्ति के बाद इन प्रजातन्त्रों के बदलते रूप का भी चित्रण किया है। शोषण पर टिकी सत्ता के खत्म होने के साथ ही प्रजातन्त्रों को आजादी मिली। सामाजिक, आर्थिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में हुए विकास से सम्बन्धित अनेक प्रामाणिक

आदर्शो की रोशनी मे लेखक ने इन प्रजातन्त्रो के बदलते स्वरूप का विश्लेपण किया है।

राहुल ने 'लेनिन' और 'स्तालिन' की जीवनिया लिखते हुए भी सक्रान्तिकालीन रूसी समाज के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक परिदृश्य को प्रस्तुत किया है। लेनिन की जीवनी म क्रान्ति-पूर्व रूसी समाज और क्रान्ति के बाद क रूसी समाज का सामाजिक आर्थिक इतिहास सहज ढग से रखा गया है। क्रान्ति पूव रूसी समाज अनेक अन्तर्विरोधो से ग्रस्त था। एक ओर गरीब और गरीब होते जा रहे थे, दूसरी ओर जार की क्रूरता दिन दिन बढती जाती थी। किसानो मजदूरो को इसस त्राण दिलान के लिए कम्युनिस्ट पार्टी के नतत्व मे सगठित किया जा रहा था। रूस क मजदूरो के पूजीवाद विरोधी सघर्षो को लेनिन ने सही दिशा दी। राहुल न लेनिन की इस जीवनी म रूस के कम्युनिस्ट आन्दोलन मे विभिन्न धाराओ के सघष का भी सामने लाने का प्रयास किया है। 'स्तालिन' म राहुल न सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख नेता और लेनिन के प्रिय सहयोगी जोसफ स्तालिन की जीवनी को तत्कालीन परिस्थितियो के सन्दभ मे प्रस्तुत किया है। इसम 'अक्टूबर क्रान्ति' म स्तालिन की ऐतिहासिक भूमिका क्रान्ति के पश्चात समाजवादी पुनर्निर्माण के काय मे उनके योगदान की विशेष चचा की गयी है। लेनिन की मत्यु क बाद स्तालिन न समाजवाद के शिशु को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जबकि विश्व पूजीवादी ताकतें क्रान्ति की सफलताओ का नष्ट करना चाहती थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौर म 'फासिज्म' के विरुद्ध सयुक्त मोर्चे के निर्माण और उसे वचारिक दिशा देने का काम स्तालिन न किया था। राहुल की दृष्टि म, "स्तालिन का जीवन केवल ज्ञानवद्धन का साधन ही नही बल्कि वह पग पग पर गहन कम पथ पर प्रकाश डालता है।[9] बहरहाल एसा लगता है कि राहुल ने कम्युनिस्ट आन्दोलन की महत्त्वपूण हस्तियो—काल माक्स, लेनिन स्तालिन, माओत्से तुग—की जीवनिया के माध्यम से विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन का इतिहास लिखने का प्रयास किया है। 'काल माक्स' म राहुल ने यूरोप की सामाजिक आर्थिक परिस्थितिया और इतिहास की वास्तविक अवस्था पर प्रकाश डालत हुए माक्स वाद के उदय और विकास का मूल्याकन किया है।

राहुल का गहरा लगाव एक अन्य कम्युनिस्ट मुल्क चीन से भी रहा ह। वे चीनी क्रान्ति के अगुआ माओत्से तुग से भी गहरे स्तरो पर प्रभावित हुए हैं जिसका प्रतिफलन 'माओत्से तुग' की रचना क रूप मे हुआ है। माओत्से तुग की यह जीवनी मात्र एक व्यक्ति की जीवन कहानी नही है, वरन् यह चीनी समाज और चीनी क्रान्ति की महान कथा है। बीसवी सदी के पूर्वार्द्ध के चीनी समाज का विश्लेपण प्रारम्भिक अध्यायो मे किया गया है। राहुल ने चीनी समाज मे किसानो की प्रमुख भूमिका का विश्लेपण करत हुए चीनी जनता के सामन्तवाद विरोधी, साम्राज्यवाद विरोधी सघर्षो का इतिहास रोचक ढग से प्रस्तुत किया है। उन्होने माओत्स तुग की नतत्वकारी भूमिका का उल्लेख करत हुए चीनी-क्रान्ति को महान विजय को साम्राज्यवाद-पूजीवाद के विरुद्ध शोषित जनता के पक्ष की ऐतिहासिक घटना बताया है। राहुल जून 1958 म चीन की यात्रा पर गए जिसक अनुभवो को 'चीन म क्या देखा' म सहेजा है। अपने अन्य यात्रा-वृत्तान्तो की तरह इसम भी

लेखक ने चीनी समाज के विभिन्न पक्षों को उभारने का प्रयास किया है। चीनी समाज में घटित हो रहे नये सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों को नजदीक से देखने के बाद राहुल ने समाजवादी पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का चीनी समाज की विशिष्टताओं के सन्दर्भ में मूल्यांकन किया है। 'चीन के कम्यून' में छः कम्यूनों की अवस्थिति का जायजा पेश किया गया है।

राहुल अपनी यायावरी के क्रम में तिब्बत, लंका, जापान, ईरान आदि देशों की यात्रा पर गये। इस क्रम में उन्होंने वहां के इतिहास का भी सिंहावलोकन किया है। 'तिब्बत में सवा वर्ष' राहुलजी की तिब्बत यात्रा और तिब्बत प्रवास के संस्मरणों यात्रा वृत्तान्तों और तिब्बती जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण लेखों रिपोर्ताजों का संकलन है। साथ ही तिब्बत और भारत के प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः 'तिब्बत में सवा वर्ष' के यात्रा वृत्तान्तों में वहां का इतिहास, भूगोल एवं राजनीतिक सांस्कृतिक परिवेश का कलात्मक मार्मिकता के साथ वर्णन किया गया है। इस सन्दर्भ में 'मेरी तिब्बत यात्रा' और 'यात्रा के पन्ने' भी उल्लेखनीय हैं। 'यात्रा के पन्ने' में भारत तिब्बत और चीन में ऐतिहासिक सांस्कृतिक सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें 'अज्ञात तिब्बत' शीर्षक के अन्तर्गत तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रवेश, तिब्बत चीन समझौता और भारत चीन के प्राचीन सम्बन्धों का विवेचन किया गया है। 'लंका' में अनुराधपुर पुलस्त्यपुर, काण्डी आदि नगरों की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डाला गया है। 'सिंहल के वीर' और 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्द्धन' का सम्बन्ध भी लंका से है। 'सिंहल के वीर' एक जीवनी ग्रन्थ है जिसमें सिंहल के सात महापुरुषों—विजय, महेन्द्र, दुष्ट ग्रामणी, विजय बहादुर महापराक्रम बाहु, टिकरी भण्डार और श्री भण्डारनायक—के जीवन और कृतित्व के बारे में लिखा गया है। राहुल ने इन सात सिंहल वीरों के व्यक्तित्व और जीवन के उल्लेख के साथ साथ सिंहल के जन जीवन और इतिहास पर भी प्रकाश डाला है।

राहुलजी 1935 में मार्च में जापान गये थे। उन्होंने अपनी यात्रा के अनुभवों को 'जापान' पुस्तक के अन्तर्गत चार भागों में लिखा है। इस पुस्तक में जापान के ऐतिहासिक भौगोलिक अध्ययन के साथ साथ वहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्थितियों की सही तस्वीर पेश की गयी है। जापान के बौद्ध मठों और जापान में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के कारणों पर विस्तार से विचार किया गया है। 'मेरी लद्दाख यात्रा'—राहुलजी की लद्दाख यात्रा का विवरण ग्रन्थ है। लेकिन इसे केवल यात्रा विवरण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें लद्दाख के जन जीवन, वहाँ की संस्कृति वहाँ के इतिहास और सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार 'किन्नर देश' को भी सिर्फ यात्रा वृत्तान्त नहीं कहा जा सकता। किन्नर प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए लेखक ने किन्नर इतिहास वहाँ की भौगोलिक बनावट के बारे में विस्तार से लिखा है। राहुल ने ईरान के इतिहास पर भी विचार किया है। उन्होंने अपनी कृति 'ईरान' के पहले भाग में प्राचीन ईरान के इतिहास और दूसरे भाग में आधुनिक ईरान के इतिहास पर प्रकाश डाला है। ईरान के राजवंशों के इतिहास के साथ साथ लेखक ने ईरानी जनता के

सामाजिक जीवन का ऐतिहासिक विश्लेषण किया है। नवीन ईरान' के अन्तगत ईरान के आधुनिक समाज का विश्लेषण किया गया है।

संस्कृति, धर्म एव दर्शन की इतिहास-यात्रा

राहुल की इतिहास चिन्ता विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों एव दशनो के विवेचन के सन्दभ म भी प्रकट हुई है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'बौद्ध संस्कृति' म विश्व के कोने कोने म बौद्ध संस्कृति के प्रचार प्रसार का लेखा-जोखा तथा उसकी लोकप्रियता के कारणो का विस्तार से विश्लेषण किया है। भारत लका बर्मा सुवर्ण-द्वीप, जावा इडोनेशिया, कोरिया, जापान, तिब्बत, मगोलिया आदि देशो म बौद्ध धम एव संस्कृति के प्रचार प्रसार के साथ ही इन देशो के इतिहास का वस्तुगत विवेचन किया है। तिब्बत म बौद्ध धम' म राहुल ने तिब्बत म बौद्ध धम के प्रचार प्रसार और उसकी लोकप्रियता का वणन किया है। लेखक ने बौद्ध धम के प्रवेश के समय तिब्बत की सामाजिक सास्कृतिक स्थितियो का विस्तार स विवेचन किया है और बौद्ध धम की लोकप्रियता के कारणो पर प्रकाश डाला है। राहुल जी ने तिब्बत के प्रमुख बौद्ध मठो बौद्ध-साहित्य और वहाँ की बौद्ध-संस्कृति का उल्लेख करते हुए बौद्ध धम के प्रति तिब्बती जनता की गहरी आस्था का वणन किया है।

राहुल ने इस्लाम धम पर भी विचार किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक इस्लाम धम की रूपरेखा' म इस्लाम धम एव दशन का परिचायक विवेचन किया है। इसम पगम्बर मुहम्मद का जीवन-परिचय, मुहम्मद साहब क सिद्धान्तो एव उस काल क अरब की सामाजिक परिस्थितियो का विवचन किया गया है। साथ ही, 'कुरान' क प्रयोजन, उसकी वणन शली उसकी विषय-वस्तु और दशन का विश्लपण किया गया है। राहुल न इस्लाम धम की अनेक धार्मिक, दाशनिक स्थापनाओ का विश्लेषण किया है। सृष्टि, कमफल, स्वग, नरक, कयामत, आदि जसे सवालो पर इस्लाम धम की स्थापनाओ का विवेचन किया है। राहुल न इस्लाम की मानवतावादी नीतियो की व्याख्या की है और इस्लाम धम म आचार विचार, दण्डनीति, मद्यपान, न्याय व्यवस्था सदाचार आदि जस सामाजिक सवालो के स्वरूप की चर्चा की है।

राहुल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दशन दिग्दशन' म यूरोपीय, यूनानी इस्लाम एव भारतीय दाशनिक विचारधाराओ के इतिहास का समेटने की कोशिश की है। वस्तुत इस ग्रन्थ मे लगभग तीन हजार वर्षों की मानवीय चिन्ता और दाशनिक विकास-यात्रा का आकलन किया गया है। यूनानी दशन की पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुए उसके बुद्धिवादी, द्वतवादी, अद्वतवादी साफीवादी धाराओ का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, सुकरात, अरस्तू के दाशनिक विचारो तथा नवीन अफलातूनी दशन का मूल्याकन किया गया है। राहुल ने इस्लाम दशन तथा स्पेन की विभिन्न दाशनिक विचार धाराओ का मूल्याकन किया है। इब्नबाजा, इब्न तुफेल और इब्न रोश्द की दाशनिक धाराओ का विशेष उल्लेख किया है। राहुल न यूरोप के प्रमुख दाशनिको हाब्स, लाक, स्पिनोजा, देकात, बकले, काण्ट, ह्यूम, हगेल, शोपेनहार नीत्शे, स्पेसर, फायरबाख, काल माक्स,

एंड्रेल रसल आदि की विचारधाराओं का विश्लेषण किया है। उन्होंने भौतिकवादी दर्शनों का चरम विकास मार्क्स के दर्शन में माना है। उन्हीं के शब्दों में 'आधुनिक युग में अभौतिकवादी यूरोपीय दर्शनों का चरम विकास हेगल के दर्शन में हुआ, और सारे मानव के भौतिकवादी, वस्तुवादी दर्शनों का चरम विकास मार्क्स के दर्शन में।'[10]

राहुल ने भारतीय दर्शन की विभिन्न धाराओं और विशेषकर बौद्ध दर्शन का विश्लेषण मूल्यांकन किया है। बौद्ध दर्शन के प्रसंग को अलग पुस्तकाकार भी 'बौद्ध-दर्शन' शीर्षक से प्रकाशित किया गया है। राहुल ने बौद्ध दर्शन के प्रणेता गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों, उनके जीवन एवं व्यक्तित्व और उनके दार्शनिक विचारों की व्याख्या की है। बौद्ध-दर्शन के वैचारिक पक्ष के साथ साथ उसके व्यावहारिक पक्ष का भी विस्तृत चर्चा की गयी है। राहुल ने बौद्ध-दर्शन के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों—चार आर्य सत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद एवं अनीश्वरवाद का विवेचन करते हुए गौतम बुद्ध की ऐतिहासिक भूमिका को दर्शन के क्षेत्र में प्रगतिशील एवं मानववादी कहा है। उन्होंने बौद्ध-दर्शन का अगली कड़ी धर्मकीर्ति के दार्शनिक विचारों की भी विशद व्याख्या की है और उनकी तुलना हेगल से की है।

राहुल की सहानुभूति तथा लगाव भौतिकवादी विचारधारा के प्रति है। तभी तो मार्क्सवादी दर्शन में अपनी आस्था व्यक्त करते हुए उसका विशद विश्लेषण किया और बौद्ध दर्शन (जो एक सीमा तक भौतिकवादी दर्शन है) की प्रगतिशीलता को रेखांकित किया। उन्होंने 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की वैज्ञानिक विचार धारा पर प्रकाश डाला है। वैज्ञानिक भौतिकवाद की द्वन्द्वात्मक प्रणाली का रोचक ढंग से विश्लेषण किया है। लेखक ने द्वन्द्वात्मकता के तीनों पहलुओं वाद प्रतिवाद-संवाद को उदाहरणों द्वारा समझाने की कोशिश की है। प्रस्तुत पुस्तक में भौतिकवादी दर्शन के ऐतिहासिक विकास के विश्लेषण के सन्दर्भ में भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि पर विस्तार से विचार किया गया है। भारतीय दर्शन की आदर्शवादी-अध्यात्मवादी धारा की जन विरोधी भूमिका की चर्चा करते हुए आधुनिक अध्यात्मवादियों के वैचारिक दिवालिएपन को उजागर किया गया है। 'मानव समाज' में भी राहुल ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा के प्रति आस्था व्यक्त की है और इस दृष्टि से मानव समाज के विकास की जटिल प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया है। इसमें विभिन्न कालखण्डों, विभिन्न सामाजिक संगठनों और समाज व्यवस्थाओं के दौर से गुजरते हुए मानव समाज और मानव चेतना के विकास के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। सारतः 'मानव समाज' में मानव सभ्यता के विविध रूपों, व्यवस्थाओं के भिन्न चरित्रों और सामाजिक अन्तर्विरोधों के कारण सामाजिक विकास की अनिवार्य ऐतिहासिक प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है।

बहरहाल विविध रूपों में की गयी इतिहास यात्राओं व सिंहावलोकन से राहुल की इतिहास चिन्ता की व्यापकता का अनुमान किया जा सकता है। ये इतिहास-यात्राएं सिर्फ तथ्यों के संग्रह के निमित्त नहीं की गयी हैं। उनके पीछे एक सुसंगत एवं वैज्ञानिक दृष्टि भी काम करती है। वह दृष्टि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी और अभिजनवाद विरोधी है। राहुल ने इतिहास प्रक्रिया को राजाओं और तथाकथित महान व्यक्तियों से अलगाकर

साधारण जन-गण की अपेक्षा में देखा परखा है। हाँ, उन्होंने उन महापुरुषों की ओर अवश्य दृष्टिपात किया है जिन्होंने सामाजिक विकास गति को जन गण के पक्ष में उत्प्रेरित किया है। उन्होंने गौतम बुद्ध कार्ल मार्क्स लेनिन जैसे महापुरुषों में स्थित उस अतिविशिष्ट व्यक्ति को रेखांकित किया है, जो एक साथ ही इतिहास प्रक्रिया का उत्पादन और एजेण्ट है, मानव चिन्तन का परिवर्तित करनेवाली सामाजिक शक्तियों का निमाता और प्रतिनिधि है। इसी तथ्य को दृष्टिपथ में रखकर 'कार्ल मार्क्स' 'लेनिन' और 'माओत्से तुंग' की रचना की गयी है।

राहुल की इस बहुआयामी इतिहास चिन्ता का ध्येय भारतीय जन-मानस को बेहतरी की दिशा (समाजवाद की दिशा) में उत्प्रेरित करना है। उन्होंने समाज संस्कृति, धर्म, दर्शन सभी सन्दर्भों में इतिहास यात्रा करते हुए भारत के बेहतर कल के अनुकूल तथ्यों को रेखांकित किया है। वे रूस चीन आदि देशों के इतिहास का पर्यालोचन करते हुए भारतीय सन्दर्भ को दृष्टिपथ में रखते हैं और उसके धनात्मक पक्षों को भारत के लिए श्रेयस्कर मानते हैं। उन्होंने 'माओत्से तुंग' में भारतीय और चीनी समाज की समान परिस्थितियों की चर्चा की है और माओत्से तुंग की जीवनी को भारत के लिए लाभदायक माना है।[11] 'सोवियत मध्य एशिया' के प्राक्कथन में लिखते हैं "इस पुस्तक को पढ़ते वक्त पाठकों को अपने सामने भारत के भारतीय किसानों मजदूरों की गरीबी नंगी-भूखी मूर्तियाँ अवश्य सामने रखनी चाहिए। सोवियत क्रान्ति ने हमारी ही जैसी जनता पायी थी। और उसने उसकी काया पलट कर दी। कज्जाक, किर्गिज, उज्बक, तुर्कमान और ताजिक जनता के लिए कल की कालरात्रि अतीत की बात हो गयी, आज वह विश्व की उन्नत जातियों में सम्मिलित है।"[12] जाहिर है कि राहुल के अन्तर्मन में सोवियत मध्य एशिया की इतिहास यात्रा के सन्दर्भ में भारतीय विपन्नता की पीड़ा विद्यमान है। वे सोवियत मध्य एशिया के संघर्षशील इतिहास को भारत की बेहतरी के लिए पाथेय मानते हैं। वस्तुत राहुल ने हर सन्दर्भों में भारत की बेहतरी को दृष्टिपथ में रखा है और इसी से परिचालित होकर इसके अनुकूल प्रसंगों को रेखांकित किया है।

सन्दर्भ

1 राहुल सांकृत्यायन, ऋग्वैदिक आर्य, पृ० 5
2 वही, पृ० 6
3 वही, अकबर भूमिका से
4 वही
5 वही, मेरी जीवन यात्रा प्राक्कथन, पृ० 2
6 वही, नये भारत के नये नेता पृ० 193

7 राहुल सांकृत्यायन, कप्तान लाल, पृ० 66
8 वही, सोवियत शासन का इतिहास, भाग 2, पृ० 3
9 वही, स्तालिन, भूमिका, पृ० 3
10 वही, दर्शन दिग्दर्शन, पृ० 353
11 वही, माओत्से तुंग, भूमिका से
12 वही, सोवियत मध्य एशिया, प्राक्कथन, पृ० 1

5

इतिहास-दृष्टि राजनीतिक-सास्कृतिक आदोलनो के सदर्भ मे

इतिहास-दृष्टि और इतिहासकार का वतमान

इतिहास एक गतिशील बौद्धिक अनुशासन है। इतिहास के तथ्य या घटनाएँ गतिशील होती हैं। इतिहासकार ऐतिहासिक तथ्यो का चुनाव और उसकी व्याख्या अपने समय और समाज से प्रेरित प्रभावित होकर करता है। इससे स्पष्ट है कि एक समय विशेष के इतिहास लेखन के सदर्भ मे प्रासगिक तथ्य, दूसरे समय मे अप्रासगिक हो सकता है या उसकी प्रासगिकता और भी अधिक बढ सकती है। चूकि इतिहासकार अपने समय और समाज से प्रेरित प्रभावित होकर इतिहास के तथ्यो का चयन और व्याख्या करता है, इसलिए यह कहना असगत नही है कि इतिहास के साथ ही इतिहासकार भी प्रवहमान होता है। ई० एच० कार ने ठीक ही कहा है कि केवल घटनाएँ ही प्रवहमान नही होती, इतिहासकार भी प्रवहमान होता है। जब आप किसी इतिहास की कृति को हाथ म लें तो मुख्य पष्ठ पर केवल लेखक का नाम पढ लेना ही काफी नही होता। उसके लेखन और प्रकाशन की तिथि भी देख लेनी चाहिए। कभी-कभी आपको इससे अधिक जानकारी मिलेगी। अगर किसी दार्शनिक का यह कहना सही है कि हम किसी नदी मे दो बार प्रविष्ट नही हो सकते तो सम्भवत इसी कारण यह भी उतना ही सच है कि एक ही इतिहासकार द्वारा दो पुस्तकें नहीं लिखी जा सकती।[1] वस्तुत इतिहासकार की इतिहास-यात्रा कमोबेश अपने समय और समाज से परिचालित होती है। ऐसी स्थिति मे उसकी इतिहास दृष्टि के अध्ययन का एक आयाम उसका समय और समाज भी है। इस समझे बिना उसकी इतिहास दृष्टि की विशिष्टता को नही समझा जा सकता है। इसलिए ई० एच० कार का कहना भी है कि इतिहासकार का अध्ययन करने से पहले उसके ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिवेश का अध्ययन करो। इतिहासकार एक व्यक्ति के रूप मे इतिहास और समाज का उत्पादन होता है और इतिहास के विद्यार्थी को उसे इसी दोहरी रोशनी मे देखना चाहिए।[2]

राहुल सांकृत्यायन इतिहास यात्रा में उस समय प्रवृत्त हुए जब भारत और समकालीन पूरी दुनिया दासता या स्वाधीनता आन्दोलन अपने निर्णायक दौर से गुजर रहा था। जिसमें राजनीतिक व सांस्कृतिक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सोवियत(?) [illegible] जा रहा था। इस राजनीतिक उथल-पुथल का गहरा दबाव साहित्य एवं संस्कृति क्षेत्र में भी पड़ा। भारत के साहित्यिक सांस्कृतिक क्षेत्र में इसका प्रभाव प्रगतिशील आन्दोलन पर पड़ रहा था। राहुल के [illegible] [illegible] [illegible] पर इस राजनीतिक साहित्य एवं सांस्कृतिक उथल-पुथल का गहरा असर पड़ा है। उनके सभी आन्दोलनों में प्रवेश और प्रभावित होकर इतिहास के मूल्यांकन का [illegible] किया है। इसलिए यह कहना असंगत नहीं होगा कि उनकी अतीत यात्रा या इतिहास-यात्रा वर्तमान के प्रकाश में सम्पन्न की गयी है।

वस्तुतः साहित्य तथा इतिहास दोनों में इतिहास यात्रा वर्तमान से प्रेरित होती है। उसी को समझने के लिए अतीत यात्रा की जाती है। ई० एच० कार ने लिखा भी है कि इतिहासकार का काम न तो अतीत से प्यार करना है और न खुद को अतीत से मुक्त करना बल्कि वर्तमान को समझने के लिए उस अतीत के अध्ययन में दक्षता प्राप्त करनी चाहिए और उसी समझ को वर्तमान की कुंजी के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए।[5] हालांकि इस इतिहास-दृष्टि तथा इतिहास-दर्शन के प्रणेताओं का भी समूह रहा है जो वर्तमान से तटस्थ होकर केवल अतीत में डूब जाता है या डूबने की सलाह देता है। अतीत के प्रति यह दृष्टिकोण सापेक्षतावाद से ग्रस्त है। इस कोटि के इतिहासकारों में विधेयवादी आते हैं। लेकिन अपने समय और समाज से अगर इतिहासकार का पाठक भी वास्ता है तो फिर उसकी इतिहास यात्रा वर्तमान से आँख नहीं चुरा सकती। उसकी इतिहास-यात्रा या अतीत यात्रा का वर्तमान से जाने-अनजाने सीधा संवाद होता ही रहेगा। वस्तुतः केवल वर्तमान के प्रकाश में ही अतीत हमारे समझने योग्य बन पाता है और हम अतीत के प्रकाश में ही वर्तमान को पूरी तौर से समझ सकते हैं। अतीत के समाज को मनुष्य के लिए सुबोध बनाना और वर्तमान समाज पर उसकी पकड़ को और मजबूत करना, इतिहास का दुहरा मन्तव्य है।[6] सारतः इतिहास में अतीत और वर्तमान के बीच द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध होता है। इसलिए अतीत यात्रा में सिर्फ वर्तमान पर दृष्टि केन्द्रित करना भी उचित नहीं है। वह एक दूसरे तरह के सापेक्षतावाद से ग्रस्त होना होगा।

इतिहास-लेखन में अतीत और वर्तमान के जिस जटिल सम्बन्ध की बात कही गयी है उसका व्यावहारिक रूप राहुलजी द्वारा सम्पन्न की गयी इतिहास-यात्रा में दिखायी पड़ता है। राहुल देश की गुलामी (वर्तमान) को समग्र जटिलता में समझने तथा भविष्य का संकेत सूत्र खोजने के लिए इतिहास की ओर प्रवृत्त हुए थे न कि अतीत की अंधी गलियों में भटकने के लिए।

स्वाधीनता आन्दोलन और इतिहास यात्रा

वस्तुतः दुनिया भर के नव-जागरणों तथा स्वाधीनता आन्दोलनों की एक प्रमुख विशेषता

है और [illegible]-भाषा। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। इस बात में [illegible] नहीं, [illegible] भारतीय [illegible] के विभिन्न [illegible] थे। [illegible] प्रसाद [illegible] [illegible] आदि [illegible] ने इस बात [illegible] महात्मा गांधी [illegible] [illegible] 1921 [illegible] भारतीय [illegible] [illegible] भारतीय अस्मिता का [illegible] विराट [illegible] भारतीय अस्मिता की [illegible] यह विराट [illegible] किसी एक भाषा तक सीमित नहीं था। इस समय की [illegible] अभिव्यक्ति [illegible] भारतीय साहित्य [illegible] विभिन्न भाषाओं [illegible] ([illegible]) [illegible] और [illegible] किसी एक [illegible] भारतीय साहित्य [illegible] यदि [illegible] और [illegible] तो [illegible] आधुनिक भारतीय भाषाओं में [illegible] साहित्य [illegible] कथावस्तुओं, अभिप्रायों और प्रतीकों का [illegible] जिसका [illegible] सीमा में बांधकर नहीं किया जा सकता। राहुल सांकृत्यायन का सम्पूर्ण लेखन इसी विराट ऐतिहासिक यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और उसकी सर्जना में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन [illegible] है।

स्वाधीनता आन्दोलन में दुर्धर्ष योद्धा राहुल

राहुल सांकृत्यायन सिर्फ लेखन के स्तर पर ही नहीं बल्कि राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी स्वाधीनता आन्दोलन में शिरकत कर रहे थे। राहुल के सम्बन्ध में यह सुपरिचित तथ्य है कि वे केवल विचारक और लेखक ही नहीं सामाजिक राजनीतिक कार्यकर्ता भी थे। उन्होंने असहयोग आन्दोलन से लेकर किसान आन्दोलन तक में काम किया था, जिसमें उन्हें लाठियाँ भी खानी पड़ी थीं। बिहार के किसान आन्दोलन में काम करने वाले बहुत सारे कार्यकर्ताओं और नेताओं की स्मृति में 'फिरंगिया' के रचयिता प्रसिद्ध मनोरंजन जी की ये पंक्तियाँ अभी भी ताजा हैं—

'राहुल के सर से खून बहे।
फिर क्या यह खून उबल न उठे?'

वस्तुतः हिन्दी साहित्य के इतिहास में राहुल जैसे जीवट के इने गिने ही लेखक विचारक हैं, जिन्होंने जनता के लिए लेखन और सामाजिक राजनीतिक संघर्ष किया हो और जिन्हें शासक वर्ग ने जेल के सींखचों में बन्द कर दिया हो। वस्तुतः राहुल भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के दुर्धर्ष योद्धा हैं। ऐसे दुर्धर्ष योद्धा के लेखन का स्वाधीनता आन्दोलन से प्रेरित और प्रभावित होना स्वाभाविक ही है।

जैसाकि पहले अध्याय मे ही कहा जा चुका है कि भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन दो मोर्चे पर चल रहा था। एक मोर्चे पर भारत की सघषशील जनता ब्रिटिश साम्राज्यवाद से सघष कर रही थी और दूसरे मार्चे पर भारतीय सामन्तवाद से सघष कर रही थी। यह और बात है कि आजादी हासिल करन का दावा करनवाली काग्रेस पार्टी इन दोनो मोर्चों के सन्दभ म ढुलमुल नीति का परिचय दे रही थी। राहुल ने अपने लेखन तथा राजनीतिक सामाजिक कम दोनो स्तरा पर इन दोनो मोर्चों के सन्दभ म सशक्त सघष किया। साथ ही, इन दाना मार्चों के सन्दभ म साठ गाँठ करनवाले तथा ढुलमुल नीति का परिचय देने वाल राजनेताआ-साहित्यकारो विचारका की भरपूर आलोचना भी की, उनकी पाल को खोलकर सवसाधारण के सामन रख दिया।

राहुल की इतिहास-यात्रा और साम्राज्यवाद विरोध

राहुल न अपनी इतिहास-यात्रा के सन्दभ मे साम्राज्यवाद के खिलाफ कई स्तरा पर जबदस्त सघष किया है। वे राजनीतिक सास्कृतिक बौद्धिक आदि विभिन्न स्तरा पर साम्राज्यवाद से लोहा लेते हैं। उन्हान प्रकारान्तर स साम्राज्यवाद के समथक अँगरेज इतिहासकारा की भारतीय इतिहास सम्बन्धी अवधारणाओ से सघष करते हुए अपनी रचनात्मक इतिहास यात्रा सम्पन्न की है। य अँगरेज इतिहासकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद को एक बौद्धिक आधार प्रदान कर रहे थे, यानी साम्राज्यवाद की वकालत कर रहे थे। राहुल न अपनी इतिहास यात्रा के दौरान इन इतिहासकारो की अवधारणाआ का चुनौती दी। यह प्रकारान्तर से साम्राज्यवादी प्रभुत्व का चुनौती है। सारत राहुल का अँगरेज इतिहासकारा की इतिहास दृष्टि से सघष साम्राज्यवाद विराध का एक महत्वपूण पहलू है।

साम्राज्यवाद के समथक अँगरेज इतिहासकार प्रकारान्तर से भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आधिपत्य को भारतीय इतिहास की एकतार्किक परिणति मान रहे थे, या कि भारत के अतीत को पिछडा तथा अन्धकारपूण सिद्ध कर रह थे। इन इतिहासकारा ने भारतीय इतिहास का बरगलाकर अन्धकारपूण बताया तथा भारत पर ब्रिटिश राज के आधिपत्य को आधुनिकता स जाडा। उनका मानना था कि ब्रिटिश राज ने ही भारत को आधुनिक युग की देहली तक पहुँचाया। वास्तव म ये इतिहासकार इस बहान प्रकारान्तर से भारत पर ब्रिटिश राज के आधिपत्य की वकालत कर रहे थे।

वस्तुत जब कोई जाति किसी दूसरी जाति को अधीन करती है तब उसका यह प्रयत्न रहता है कि विजित जाति अपने कीर्ति चिह्नो का, अपने इतिहास का भुला दे। इस सन्दभ म मजीनी न ठीक ही कहा है कि विजयी का वश चल ता वह इतिहास की घटनाओ को छीलकर फेंक दे। इतिहास से जाति म जीवन आता है सो उस जीवन पर प्रतिबन्ध क लिए सबकुछ करना परजाति का अभीष्ट होता है। और अभीष्ट सिद्धि के लिए अपनी ओर से वह मनमानी शिक्षा जारी करती है। ठीक यही प्रयत्न अँगरेजा का था। इसक बिना वे अपनी गौराग श्रेष्ठता की घोषणा नही कर सकते थे, भारत के लोगो को पिछडा हुआ तथा

स्वाधीनता के अयोग्य सिद्ध न कर सकते थे। इसलिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पोषक इतिहासकारा तथा बुद्धिजीविया ने बार बार भारत के इतिहास को बरगलाने तथा अन्ध कारपूण बतान की कोशिश की।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पोषक इतिहासकारा तथा बुद्धिजीवियो ने सबसे पहले भारतीय राष्ट्र की अवधारणा पर जोरदार प्रहार किया। सर जान स्ट्रैची ने कहा "भारत के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के लिए यह जानना पहली आवश्यक बात है कि भारत जैसी कोई चीज या कोई देश न ता है और न कभी होगा, जिसम यूरोपीय विचारा के अनुसार भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक एकता जैसी कोई एकता हो। जिसके बारे मे हम इतना कुछ सुनते आये हैं वमा न तो कोई भारतीय राष्ट्र है और न कही भारत की जनता है।" विन्सैण्ट ए० स्मिथ भारतीय सस्कृति के प्रति अपेक्षाकृत सहानुभूतिपूण रवया अख्तियार करते थे। लेकिन वे भी भारत की पूण राजनीतिक एकता का बीते हुए कल की बात मानत थे। साथ ही, भारत पर अँगरेजा के आधिपत्य को भी उचित मानते थे।[6] एक दूसर विचारक सर जॉन सीले ने भारत की विभिन्न भाषाओ तथा उप सस्कृतियो की आड मे भारतीय राष्ट्र की अवधारणा पर प्रहार किया। उन्हाने कहा कि भारत को एक राष्ट्र बनाने की धारणा उस भद्दी भूल पर आधारित है जिसको राजनीतिशास्त्र मुख्यतया दूर करना चाहता है। भारत कोई राजनीतिक नाम नही है बल्कि यह यूरोप या अफ्रीका की तरह मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है। यह किसी एक राष्ट्र या एक भाषा की सीमा रेखा का नही बल्कि अनेक राष्ट्रो और अनक भाषाओ की सीमा का अकन करता है।[7]

भारतीय स्वाधीनता आदोलन जब अपन निर्णायक दौर मे पहुँच रहा था उस दौरान भी भारत की विविधता को आधार बनानेवाली दलीलें पूरी शक्ति के साथ पेश की जाती रही। इसका आशय या तो भारत राष्ट्र को नकारना होता था या इसे मान्यता देने म बरती गयी अत्यधिक धीमी रफ्तार का औचित्य ठहराना होता था। साइमन कमीशन की रिपोट 'सर्वेक्षण खण्ड' म यह दलील पूरी तडक भडक के साथ पेश की गयी। रिपाट का यह खण्ड भारत के बारे मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दुष्प्रचार का मुख्य हिस्सा है। इसे 1930 मे प्रकाशित किया गया था और भारतीय समस्याओ पर आम जनता की जानकारी के लिए तथाकथित सूचनाप्रद दस्तावेज के रूप मे इसका बडे पैमाने पर वितरण किया गया था। इस अविस्मरणीय दस्तावेज के प्रारम्भ मे ही बडे इत्मीनान के साथ घोषणा की गयी कि जिसे भारत का राष्ट्रवादी आदोलन' कहा जाता है वह वस्तुत "भारत की विशाल आबादी के केवल एक मामूली हिस्से की आकाक्षाओ को सीधे सीधे प्रभावित करता है।" इस घोषणा के बाद रिपोट म भारत की जो रूढिगत तस्वीर पेश की गयी थी उसके बारे मे हालाकि लेखको ने हमेशा यह दावा किया कि उनका विवेचन विशुद्ध, वैज्ञानिक, निष्पक्ष और वस्तुगत है पर अपने विवेचन के जरिये वे पाठक को आतकित करना चाहते थे। अपने विवेचन मे उन्होन कही भारत की समस्या की विशालता और कठिनाई का वणन किया तो कही भारत की विशाल जनसख्या और भारत के विशाल क्षेत्रफल का हवाला देकर पाठको को आतकित किया। कही 222 बोलियो का उल्लेख करके यहाँ की भाषा-

समस्या का वर्णन किया गया, तो कहीं असंख्य जातियों के कारण उत्पन्न जटिलता की चर्चा की गयी। कहीं धार्मिक क्षेत्र में पायी जानेवाली लगभग असीम विविधता और हिंदुओं तथा मुसलमानों के बुनियादी विरोध का जिक्र किया गया, तो कहीं विभिन्न जातियों और धर्मों के रंग बिरंगे जमघट का चित्र पेश किया गया। सार यह कि भारतीय राष्ट्र की धारणा को तिरस्कारपूर्ण ढंग से ठुकरा दिया गया।

20वीं सदी में राष्ट्रीय आन्दोलन की बढ़ती हुई शक्ति को देखते हुए भारतीय राष्ट्र के अस्तित्व को कम से कम साम्राज्यवादियों के उदार मतावलम्बियों द्वारा व्यापक मान्यता मिली। फिर यह दलील दी जाने लगी कि भारतीय राष्ट्र के अस्तित्व को मान्यता दिये जाने जैसी स्थितियों का विकास ब्रिटिश शासन की देन है।

कहना न होगा कि भारतीय राष्ट्र की अवधारणा को नकारने के बहाने साम्राज्यवाद के पोषक बुद्धिजीवियों ने भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन पर जोरदार प्रहार किया। यह साम्राज्यवादियों का भयानक षड्यन्त्र था। राहुलजी तथा अन्य भारतीय इतिहासकारों ने इसके खिलाफ व्यवस्थित रूप से संघर्ष किया। उन्होंने प्राचीन काल से ही भारतीय राष्ट्र के अस्तित्व और उसकी राजनीतिक सांस्कृतिक एकता को रेखांकित किया।

उपयोगितावादी चिंतक जेम्स मिल ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री आव ब्रिटिश इण्डिया में कहा कि भारतीय समाज अपने उद्भव काल से लेकर अँगरेजों के आने तक अपरिवर्तित रहा है। साथ ही यह समाज सदा से राजनीतिक चेतना से शून्य रहा है। इसलिए यह तानाशाहों द्वारा शासित होता रहा है। यह माना गया कि यहाँ के गाँवों में रहनेवाले लोग राजनीतिक उथल पुथल से बिल्कुल ही वास्ता नहीं रखते थे। इस रवैये के कारण न सिर्फ तानाशाही को तरजीह मिली बल्कि विदेशी आक्रान्ताओं को भी बहुधा उत्पात करने का मौका मिल जाता था।' तानाशाही के उद्भव का एक अन्य तथा सबल कारण ब्रिटिश-पूर्व भारत में भूमि के निजी स्वामित्व का न होना माना गया। वस्तुतः इस भ्रम का मूल थामस रो तथा फ्रैंकोइस बर्नियर की मुगल साम्राज्य की कृषि व्यवस्था की गलत समझ में निहित था।[8] चूँकि इन दोनों का भारत से प्रत्यक्ष सम्पर्क हुआ था इसलिए इनकी स्थापना को प्रामाणिक मानकर भारत की राज-व्यवस्था—तानाशाही—के स्रोत की व्याख्या की गयी। सर थामस रो मुगल सम्राट जहाँगीर के दरबार में जेम्स प्रथम के राजदूत थे। और फ्रैंकोइस बर्नियर लुई चौदहवें के दरबार से सम्बद्ध थे तथा उन्होंने 1668 ई० में भारत की यात्रा की थी।

मिल के अतिरिक्त अन्य अँगरेज इतिहासकारों ने भी प्राचीन काल से ही भारत को तानाशाही के शिकंजे में जकड़ा देखा। सद्धान्तिक शब्दावली में इस प्राच्य तानाशाही (ओरिएन्टल डस्पाटिज्म) की संज्ञा से अभिहित किया गया। अँगरेजी राज के दौरान इस अवधारणा का पूरी शक्ति के साथ प्रचारित प्रसारित किया गया। कहना न होगा कि इस तरह की अवधारणा के वाहक साम्राज्यवाद के हिमायती अंगरेज इतिहासकार भारतीय समाज पर अँगरेजों की तानाशाही हुकूमत को औचित्य प्रदान कर रहे थे। जान-अनजाने वे इस बात का प्रतिपादन कर रहे थे कि भारत शुरू से ही तानाशाही हुकूमत के अधीन रहा है इसलिए अगर यहाँ आज अँगरेजों की तानाशाही हुकूमत है तो कोई आश्चर्य की

बात नहीं।

राहुल ने उपर्युक्त अवधारणा को चुनौती दी। इस सन्दर्भ में राहुल के वरिष्ठ समकालीन काशीप्रसाद जायसवाल का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दू पालिटी' में कहा कि ग्रीक की तरह ही प्राचीन भारतीय गणतन्त्र का राजनीतिक जीवन लोकतन्त्र तथा जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाली सरकार की अवधारणाओं पर आधृत था। अन्य भारतीय इतिहासकारों ने भी यह सिद्ध करने की भरपूर चेष्टा की कि हमारे यहाँ निरंकुश राज्य नहीं होता था, राजा पर धर्म का नियन्त्रण रहता था। इतना ही नहीं, हमारे यहाँ एक प्रकार का जनतन्त्र भी था जैसे वैशाली और यौधेय का गणराज्य। इसलिए स्वराज्य, जनतन्त्र और स्वाशासन का हम अनुभव है। राहुल सांकृत्यायन ने इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण चिन्तन और लेखन किया है। उन्होंने देश की गुलामी, निरंकुश राजतन्त्र की दीर्घ आयु तथा गणतन्त्र की अवधारणा के विस्मरण का ऐतिहासिक सन्दर्भ में विश्लेषण किया है। उनका मोहनलाल खन्ना (जीन के लिए का पात्र) कहना है कि मुट्ठी भर विदेशी हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश को गुलाम नहीं बना सकते, इसका सारा दोष हमारे समाज की बनावट के मत्थे है। इस देश के सभी निवासी अपने को देश की स्वतन्त्रता का जिम्मेदार नहीं समझते। बुद्ध के एक दो शताब्दी बाद ही जन-सत्ताक शासन प्रणाली इस देश से बिल्कुल लुप्त हो गयी। यूरोप में एथेन्स और स्पार्टा के प्रजातन्त्र और उनके स्वातन्त्र्य प्रेम रोमन साम्राज्य के साथ बिल्कुल लुप्त नहीं हुए। इटली और दूसरे देशों के कितने ही नगर एथेन्स की आत्मा को कायम रखे हुए थे और सबसे बड़ी बात यह भी कि अफलातून का 'प्रजातन्त्र' तथा कितने ही प्रजासत्ता प्रतिपादक यूनानी और दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ वहाँ मौजूद रहे।—इस प्रकार पुनर्जागरण के समय नये यूरोप को पुराने एथेन्स से सम्बन्ध जोड़ने का बड़ा अच्छा मौका मिला। भारत के लिच्छिवी और यौधेय जैसे गणतन्त्र न जाने कब के लुप्त हो गये।—प्रजासत्ता सम्बन्धी साहित्य जैसे भी ही नष्ट हो गया। वैशाली की आत्मा को जीवित रखनेवाला कोई नगर यहाँ नहीं रह गया।[9] भारतीय नवजागरण के प्रतिनिधि राहुल ने इसी पीड़ा को महसूस कर 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय' तथा 'वोल्गा से गंगा' में वैशाली तथा यौधेय गणतन्त्र की आत्मा को पुनर्स्थापित किया। भारतीय नवजागरण के सन्दर्भ में उसे प्रेरणा स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया।

राहुल ने अपनी इतिहास-यात्रा के क्रम में प्राचीन भारत के लिच्छिवी, यौधेय आदि गणतन्त्रों की गरिमा को पुनर्जीवित किया, राजतन्त्रात्मक व्यवस्था से उसके संघर्ष को चित्रित किया और इस संघर्ष के चित्रण में गणतन्त्रात्मक व्यवस्था के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की। इस प्रसंग की विस्तृत चर्चा पहले अध्याय में की जा चुकी है। बहरहाल इस प्रसंग के जरिये राहुल 'प्राच्य तानाशाही' की अवधारणा को चुनौती दे रहे थे और प्रकारान्तर से साम्राज्यवादी बौद्धिक साजिश का विरोध कर रहे थे। उन्होंने वैशाली, यौधेय आदि गणतन्त्रों जैसे प्राचीन भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण अध्यायों को पुनर्जीवित कर उन अँगरेज इतिहासकारों पर जोरदार बौद्धिक हमला किया जो प्राचीन काल से ही भारत को तानाशाही शिकंजे में जकड़ा देख रहे थे और प्रकारान्तर से अँगरेजी तानाशाही

की वकालत कर रहे थे।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पोषक इतिहासकारों ने भारत के इतिहास को पिछड़ा तथा अंधकारपूर्ण बताया और इसका कारण यहां के धर्म और संस्कृति को माना। इसीलिए मिल ने अपनी पुस्तक *'हिस्ट्री ऑव ब्रिटिश इण्डिया'* में हिन्दू सभ्यता की भरपूर मुखालफत की। उनका मानना था कि इसमें बुद्धिवाद तथा व्यक्तिवाद का अभाव है, जो किसी संस्कृति का मुख्य मूल्य होता है। इस संदर्भ में ईवैनजेलइकल्स का दृष्टिकोण भी उपयोगितावादी चिंतक मिल के मेल में ही दिखायी पड़ता था। इसके प्रमुख हस्ताक्षर चार्ल्स ग्रान्ट ने कहा कि भारत के पिछड़ेपन का मूल हिंदूधर्म में निहित है। लेकिन एक मुद्दे पर वे मिल से अलग थे। वह यह कि जहां मिल कानून के जरिये भारतीय समाज के जाकड़पन को दूर करना चाहते थे, वहीं चार्ल्स ग्रान्ट भारतीयों को ईसाइयत में दीक्षित कराकर यह काम प्रतिपादित करना चाहते थे।

ईसाइयत का भूत क्रिश्चियन लेसन पर भी सवार दिखायी देता है। उन्होंने हेगेल के इतिहास दर्शन से सैद्धान्तिक औजार ग्रहण कर भारतीय इतिहास की व्याख्या की। भारत के संदर्भ में हिंदू मुस्लिम तथा ईसाई सभ्यता को क्रमशः थीसिस, एण्टी थीसिस तथा सिंथीसिस के रूप में व्याख्यायित किया। वस्तुतः क्रिश्चियन लेसन हेगेलियन दर्शन की मूर्खतापूर्ण आड़ में भारतवर्ष पर ब्रिटिश आधिपत्य को उचित ठहरा रहे थे। आश्चर्य होता है कि भारतीय इतिहास की व्याख्या के संदर्भ में हेगेलियन डायलेक्टिक्स का इस्तेमाल करने के बावजूद क्रिश्चियन लेसन ने हेगेल की इस धारणा का खण्डन नहीं किया कि भारत का अतीत अपरिवर्तनशील है।

साम्राज्यवादी इतिहासकारों की इन मान्यताओं की प्रतिक्रिया में राहुलजी ने भारतीय अतीत के गौरवपूर्ण अध्यायों को उजागर किया। भारतीय इतिहास की विराट यात्रा करते हुए उसकी श्रेयस्कर उपलब्धियों को रेखांकित किया। उन्होंने हिन्दूधर्म का सम्यक् मूल्यांकन किया और इस धारणा का खण्डन किया कि हिन्दूधर्म व सभ्यता विवेकी नहीं है। उन्होंने हिंदूधर्म की एक विशाल प्रशाखा बौद्ध धर्म की भौतिकता और द्वन्द्वात्मकता (एक सीमा तक) को रेखांकित किया। भारतीय धर्म दर्शन की भौतिकवादी अभौतिकवादी धाराओं का समग्रता में विस्तृत विवेचन 'दर्शन दिग्दर्शन' में किया। पर इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि राहुल ने परम्परागत भारतीय धर्म दर्शन को पुनर्जीवित करने की कोशिश की। उन्होंने हर समय द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का आग्रह किया है और इन धर्मों की प्रतिगामिता को रेखांकित किया है। बहरहाल महत्व की बात है कि राहुल ने साम्राज्यवाद के समर्थक अंगरेज इतिहासकारों की मान्यताओं का विवेकपूर्ण खण्डन करते हुए उनकी साम्राज्यवादी मंशा का भण्डाफोड़ किया।

अंगरेजी इतिहास-दृष्टि का विरोध और भारतीय इतिहासकारों का भटकाव

कुछ भारतीय इतिहासकार-लेखक इन अंगरेज इतिहासकारों की मान्यताओं का खण्डन

करते हुए पुनरुत्थानवाद के भी शिकार हो गये हैं। मिल के इस आरोप के जवाब में कि हिन्दू सभ्यता विवेकी नहीं है, कहा गया कि भारतीय संस्कृति की मूल संवेदना आध्यात्मिक है जो पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति का अनिवार्यतः विरोधी और उससे श्रेष्ठ है। भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता की भरपूर वकालत की गयी। ए० के० कुमारास्वामी ने ग्रीक कला की सौन्दर्य विषयक वरीयता को चुनौती दी। उन्होंने कहा कि ग्रीक शारीरिक सौन्दर्य से अभिभूत थे, जबकि भारतीय कलाकारों ने अपनी कला कृतियों में आध्यात्मिक गुणों को अभिव्यक्त करने की कोशिश की। इसलिए यह ग्रीक कला से श्रेष्ठ है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति तथा भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का विवाद पूरे जोर शोर से चला। राष्ट्रीयता के आवेश में पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति की भरपूर मुखालफत की गयी तथा भारत की आध्यात्मिक संस्कृति की ओर भावुक दृष्टिपात किया गया। जयशंकर प्रसाद की नाट्य-कृति 'कामना' में भी यह दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। 'स्वर्ण' और 'मदिरा' (भौतिकवादी संस्कृति के प्रतीक) के लोलुप 'विलास' और 'लालसा' को अन्ततः फूलों के देश से निष्कासित होना पड़ता है।

अँगरेज इतिहासकारों की मान्यताओं के विरोध का नशा कुछ इस कदर चढ़ा कि एक पल के लिए इतिहास की वास्तविकता को झुठलाने में भी हिचकिचाहट महसूस नहीं हुई। विन्सेन्ट स्मिथ, डब्ल्यू० डब्ल्यू० टार्न तथा अन्य इतिहासकारों के उन सिद्धान्तों की भरपूर आलोचना की गयी जिसके तहत यह माना जाता था कि ग्रीक संस्कृति का व्यापक असर भारतीय संस्कृति पर पड़ा है। इसका आधार प्राच्यविद मैक्समूलर की ग्रीक और संस्कृत की भाषिक सजातीयता सम्बन्धी मान्यता थी। इस भाषिक सजातीयता के अध्ययन के परिणामस्वरूप एक विशाल आर्यजाति की अवधारणा सामने आयी, जो भारतीय तथा यूरोपीय संस्कृति का जनक मानी गयी। ये आर्य भारत में पश्चिम की ओर से आये। यानी वे भारत के मूल निवासी नहीं थे। कुछ भारतीय इतिहासकारों ने इस मान्यता को उलट दिया, ताकि वे सिद्ध कर सकें कि भारतीय संस्कृति देशज है वह किसी दूसरी संस्कृति से प्रभावापन्न नहीं है। लेकिन वे आर्य जाति की अवस्थिति से इन्कार नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने कहना शुरू किया कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आये वे भारत के ही मूल वासी थे।

स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान भारतीय इतिहासकारों ने राष्ट्रवाद के आवेश में अँगरेज इतिहासकारों की इतिहास दृष्टि की आलोचना की और भारतीय संस्कृति (हिन्दू संस्कृति के अर्थ में) के प्रति अतिरिक्त उत्साह का परिचय दिया। इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने की कोशिश कि भारतीय संस्कृति ही पूरे विश्व में फैली है। इस सांस्कृतिक उत्थान ने धार्मिक उत्थान को प्रोत्साहित किया। फलतः कुछ विचारकों को भारत का पुनर्निर्माण हिन्दू संस्कृति को पुनर्जीवित करने से ही सम्भव लगा।'[10] इस प्रकार राष्ट्रीयता ने हिन्दूवाद का रूप ले लिया। गुप्तकाल स्वर्ण युग कहा गया, क्योंकि वह हिन्दू नवजागरण का काल था। साथ ही, यह माना जाने लगा कि दक्षिण-पूर्व एशिया की संस्कृति का मूल हिन्दू संस्कृति है। इस 'हिन्दू व्याकुल दृष्टि' ने महान तथा विशाल भारत की परिकल्पना को उपस्थित किया तथा भारत के साम्राज्यवादी अतीत का गौरव

प्रचार किया। भारतीय इतिहास की गौरवपूर्ण उपलब्धियों को हिन्दू शासन काल के साथ जोड़ दिया। दूसरी ओर सारी बुराइयाँ मुस्लिम शासकों के साथ जोड़ दी गयीं। 1930 और 1940 के वर्षों में साम्राज्यवाद [illegible] साम्प्रदायिक तनाव [illegible] इस प्रवृत्ति को [illegible] आहुति का काम किया। [illegible] अनुयायियों का साम्प्रदायिक इतिहास लेखन अब भी हमारे देश में [illegible] है।

राहुल सांकृत्यायन ने साम्राज्यवादी इतिहास दृष्टि से संघर्ष करने के क्रम में अंधराष्ट्रवाद या पुनरुत्थानवाद की गिरफ्त में नहीं आए हैं। साथ ही पाश्चात्य भौतिकवादी मूल्यों का विरोध और भारतीय आध्यात्मिकता का समर्थन भी नहीं किया है। यह उनकी इतिहास दृष्टि की वैज्ञानिकता, प्रगतिशीलता और साम्राज्यवादी दृष्टि के सही परिप्रेक्ष्य में विरोध का प्रमाण है।

राहुल की इतिहास यात्रा और सामन्तवाद विरोध

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि राहुल ने विभिन्न स्थानों तथा विभिन्न स्तरों पर साम्राज्यवाद से संघर्ष करने के साथ ही उसके सामाजिक आधार भारतीय सामन्तवाद से भी संघर्ष किया है। उनके लिए राष्ट्रीय मुक्ति का अर्थ केवल साम्राज्यवाद से छुटकारा पाना ही नहीं है, बल्कि सामन्तवाद से छुटकारा पाना भी है। राहुल इस अर्थ में युग द्रष्टा थे कि अपने समय के तमाम बड़े राजनीतिज्ञों की अपेक्षा यह स्पष्ट देख रहे थे और बार-बार घोषित कर रहे थे कि व्यापक सामन्त विरोधी क्रान्ति के बिना भारत का साम्राज्य विरोधी आन्दोलन कभी पूरी तरह सफल नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने हर तरह के सामन्ती उत्पीड़न का, सामन्ती मूल्य और नैतिकता का विरोध किया है। उन्होंने अपनी कथाकृतियों में इतिहास की रचनात्मक यात्रा करते हुए उन घटनाओं को रूपायित किया है जिनसे सामन्ती मूल्य तथा नैतिकता के ध्वस्त होने की बात ध्वनित होती है। राहुल ने सामन्ती भूमि सम्बन्ध, नारी के भोग्या रूप, वर्ण व्यवस्था, धर्म इन तमाम सामन्ती मूल्य व नैतिकता से संघर्ष करते हुए अपनी रचनात्मक इतिहास-यात्रा सम्पन्न की है। उनके सारे प्रिय पात्र चाहे वह सिंह सेनापति हो या जय यौधेय सामन्ती मूल्य व नैतिकता के विरोधी हैं। वे दोनों सामन्ती राज व्यवस्था—राजतन्त्र—और सामन्ती मूल्य व नैतिकता के विरोधी और गणतन्त्रात्मक व्यवस्था व मानवतावादी मूल्यों के समर्थक हैं। यह इत्तिफाक नहीं है कि इन दोनों के नेतृत्व में राजतन्त्र से संघर्ष होता है और इस संघर्ष में राहुल गणतन्त्रात्मक व्यवस्था व मानवतावादी मूल्यों को अपनी रचनात्मक सहानुभूति देते हैं। इस प्रसंग की विस्तृत चर्चा पहले अध्याय में ही की जा चुकी है इसलिए यहाँ उसे दुहराने की जरूरत नहीं है। वस्तुतः यह रचनात्मक सहानुभूति राहुल के सामन्तवाद विरोधी अभियान का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। उन्होंने अपने इसी अभियान के तहत धर्म (जो सामन्ती मूल्य का भयानक संरक्षक है) पर भयानक प्रहार किया और आध्यात्मिक दर्शन की भूलभुलैया की असली सामन्ती मंशा की पोल खोलकर रख दी। दूसरी ओर, भौतिकवादी दर्शन के प्रणेताओं तथा साधारण जन गण के हामी विचारकों

को अपनी सहानुभूति दी।

साहित्येतिहास लेखन के संदर्भ में भी राहुल ने व्यापक रूप से सामन्तवाद विरोधी अभियान चलाया है। उन्होंने विस्मृत सिद्धों की कविताओं के पुनरुद्धार और मूल्यांकन की जरूरत महसूस की क्योंकि वे एक सीमा तक सामन्ती मूल्य व नैतिकता का विरोध करती हैं। साथ ही, सामन्तवाद पर धक्कामार प्रहार करनेवाले निर्गुणियाँ संतों के ऐतिहासिक योगदान का मूल्यांकन किया और रीति कविता की सामन्ती मनोवृत्ति की भरपूर भर्त्सना की। राहुल सबसे अधिक गदगद होकर प्रगतिवाद का मूल्यांकन करते हैं क्योंकि उसका सामन्तवाद विरोधी तेवर सबसे अधिक प्रखर और अभूतपूर्व है। स्वतन्त्र रूप से समाज का इतिहास लेखन करते हुए तो उन्होंने और भी अधिक विस्तार में जाकर अपनी सामन्तवाद विरोधी दृष्टि का परिचय दिया है। यह स्थिति सामाजिक-राजनीतिक लेखन के संदर्भ में भी दृष्टिगत होती है। वह एक स्वतन्त्र चर्चा का विषय होगा। वस्तुतः राहुल की इस व्यापक सामन्तवाद विरोधी इतिहास-यात्रा की सधर्मिता भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के सामन्तवाद विरोधी मोर्चे में है।

राहुल की इतिहास-दृष्टि का अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ

राहुल जिस समय इतिहास यात्रा की ओर प्रवृत्त हुए यह कमोबेश पूरी तीसरी दुनिया के स्वाधीनता आंदोलनों का भी निर्णायक दौर था। साथ ही, विश्व की जनवादी ताकतें कम्युनिस्ट आंदोलन के रूप में अपनी शक्ति को संगठित कर रही थीं। दूसरी ओर पूँजीवादी साम्राज्यवादी ताकतें इन आंदोलनों को कुचलने में अपने हद को फाँद रही थीं। स्वाधीनता और बेहतर कल की आकांक्षी जनता और नवजात कम्युनिस्ट देशों पर फासिज्म का खतरा डोल रहा था। राहुल ने अपनी इतिहास यात्रा के संदर्भ में स्वाधीनता आंदोलन और कम्युनिस्ट आंदोलन को डिफेंड किया और साम्राज्यवाद फासीवाद पर करारी चोट की। राहुल का सफदर (सफदर कहानी का पात्र) साम्राज्यवाद के खूनी उदय की चर्चा करते हुए ठीक ही कहता है "कैसर शब्द के साथ सन् 1871 से हम *साम्राज्यवाद के युग में प्रविष्ट होते हैं। इंगलैंड पहले आता है। पराजित प्रजातन्त्रीय फ्रांस युद्ध सँभलने के बाद सन 1881 ई० में तूनिस (अफ्रीका) पर अधिकार जमा* साम्राज्यवाद का प्रारम्भ करता है। और नयी फैक्टरियों और पूँजीपतियों से लैस जर्मनी भी सन् 1884 ई० से उपनिवेश की माँग पेश कर साम्राज्यवाद की स्थापना का प्रयत्न करता है।"[11] यह साम्राज्यवादी शक्ति स्वाधीनता आन्दोलनों और कम्युनिस्ट आंदोलनों का जबर्दस्त विरोधी थी, क्योंकि इससे उनका स्वार्थ टकराता था। यह स्थिति आज भी दृष्टिगत होती है। दूसरी ओर, स्वाधीनता की आकांक्षी जनता के लिए कम्युनिस्ट आन्दोलन और कम्युनिस्ट मुल्क रूस प्रेरणा का स्रोत था। क्रान्तिकारी शक्तियाँ उससे जीवनी शक्ति ग्रहण कर रही थीं। पूँजीवादी साम्राज्यवादी शक्ति इसे कुचलने के लिए तरह-तरह की अमानवीय हरकतें कर रही थी और आज भी बदले हुए रूप में कर रही है। सफदर कहता भी है, "दुनियाँ के छठे हिस्से रूस पर 7 नवम्बर सन् 1917 ई० से

साम्यवादी सरकार कायम हो चुकी है। आज भी पूंजीवादी दुनिया मानवता की उस एकमात्र आशा को मिटाना चाहती है किन्तु पहली जबदस्त परीक्षा में सोवियत सरकार उत्तीर्ण हो चुकी है। हाँ फ्रांस अमेरिका के पूंजीपतियों की मदद से हंगरी में ■ मास (मार्च, अगस्त सन् 1919 ई०) के बाद वहाँ से सोवियत शासन को खत्म कर दिया गया। सोवियत रूस की मजदूर किसान सरकार का अस्तित्व दुनिया के लिए भारी प्रेरणा है और जिन शक्तियों ने सोवियत शासन को कायम किया, वह हर मुल्क में काम कर रही हैं। लड़ाई बन्द होने के साथ अंग्रेजों ने रौलट कानून पास करने की जल्दी क्यों की? उसी विश्व की क्रांतिकारिणी शक्ति को कुण्ठित करने के लिए।"[13] राहुल ने अपनी इतिहास यात्रा के क्रम में इस विश्व राजनीतिक परिप्रेक्ष्य से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया है। एक ऐसी इतिहास दृष्टि प्राप्त की है जो हर तरह के सामन्ती, पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण का विरोधी है जो इतिहास को वर्गीय संघर्ष के रूप में देखती है और जिसका चरम विकास साम्यवाद में होता है।

राहुल ने अपनी इतिहास-यात्रा के सन्दर्भ में कम्युनिस्ट मुल्कों की उपलब्धियों को हिन्दी भाषी जनता के सामने प्रस्तुत किया और इस प्रकार साम्राज्यवादियों के कम्युनिस्ट विरोधी प्रोपेगंडा का भण्डाफोड़ किया। इस सन्दर्भ में 'सोवियत शासन का इतिहास', 'सोवियत मध्य एशिया', 'चीन में क्या देखा', 'चीन के कम्यून' आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इन कृतियों में राहुल ने सोवियत रूस और चीन के क्रान्ति-पूर्व और क्रान्ति के पश्चात के विकास के इतिहास का लेखा जोखा प्रस्तुत किया और भारत के लिए उसकी प्रासंगिकता प्रतिपादित की। यानी भारतीय समाज के लिए एक प्रेरणा-स्रोत के रूप में उसके इतिहास को प्रस्तुत किया।

राहुल की इतिहास यात्रा और प्रगतिशील आन्दोलन

राहुल की साहित्य दृष्टि और इतिहास-दृष्टि के निर्माण में प्रगतिशील आन्दोलन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनके इतिहासविवेक पर इस आन्दोलन का जबदस्त प्रभाव पड़ा है। प्रगतिशील आन्दोलन साहित्य की किसी एक विधा या सिर्फ हिन्दी साहित्य का आन्दोलन नहीं है। उसका स्वरूप और प्रसार राष्ट्रीय है। वस्तुतः यह अखिल भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण है। सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के साहित्य और कलात्मक सृजन के कमोबेश प्रत्येक क्षेत्र में इस आन्दोलन का प्रसार हुआ है। भक्ति आन्दोलन के बाद यह दूसरा अखिल भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण है। भक्ति आन्दोलन की मूल संवेदना सामन्तवाद विरोधी और मानवतावादी थी, इस आन्दोलन की मूल संवेदना सामन्तवाद पूंजीवाद विरोधी और समतामूलक व्यवस्था की हामी है। प्रगतिशील आन्दोलन स्वाधीनता आन्दोलन की जनवादी धारा की सम्यक साहित्यिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट हुआ। साथ ही यह आन्दोलन कमोबेश पूरी तीसरी दुनिया के स्वाधीनता आन्दोलन और विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन से भी प्रेरित और प्रभावित है। राहुल सांकृत्यायन इस आन्दोलन से गहरे स्तरों पर सम्पर्कित थे। वे इस आन्दोलन के

ध्वजवाहियों में से एक थे। ऐसी स्थिति में उनका इस आंदोलन से प्रभावित होना स्वाभाविक ही था। प्रगतिशील आंदोलन की जिस मूल संवेदना की बात की गयी है, उसका गहरा असर राहुल की इतिहास दृष्टि पर पड़ा है। रचनात्मक इतिहास-यात्रा, साहित्येतिहास-यात्रा और समाज की इतिहास यात्रा—सभी संदर्भ में राहुल इस आंदोलन की मूल संवेदना को पाथेय के रूप में ग्रहण करते हैं।

प्रगतिशील आंदोलन के पहले हिन्दी साहित्य के इतिहास में सिद्धों और निर्गुणियों सन्तों की कविताओं की चर्चा नहीं के बराबर होती थी। उन्हें कवि ही नहीं माना जाता था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे पुरोधा और लोकवादी आलोचक ने भी उनकी रचनाओं को खारिज कर दिया। प्रगतिशील आंदोलन के दौरान जन संस्कृति और शोषण विरोधी दृष्टि को प्रोत्साहन मिला। अभिजनवादी सौंदर्यशास्त्र अप्रासंगिक हुआ और जनवादी सौन्दर्यशास्त्र की प्रासंगिकता महसूस की गयी। साहित्य के मूल्यांकन के मानदण्ड बदले और कविता को कलाबाजी के जाल से मुक्त करके धूल भरी धरती से सम्पर्कित किया गया। केशव देव, बिहारी की कलाबाजी से वितृष्णा हुई और संत कबीर, सूर तुलसी की प्रासंगिकता महसूस की गयी। राहुल ने अपने पूर्ववर्ती आलोचकों, इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित सिद्धों और निर्गुणियाँ कवियों का मूल्यांकन विश्लेषण किया और उनकी व्यवस्था विरोधी दृष्टि को रेखांकित किया। सिद्धों की रचनाओं के विवेचन मूल्यांकन के संदर्भ में राहुल ने अपना महत्त्वपूर्ण श्रम खर्च किया है। यह उनका ऐतिहासिक योगदान है। प्रगतिशील आन्दोलन के दौरान उभरे साहित्येतिहासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर पर एक स्वतन्त्र और महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। उन्होंने अपने साहित्येतिहास में भी निर्गुणियाँ संतों को सम्यक् स्थान दिया। साहित्येतिहास लेखन का यह 'शिफ्ट' प्रगतिशील आन्दोलन से प्रभावित है। सारतः राहुल ने अपनी साहित्येतिहास यात्रा के संदर्भ में इस आन्दोलन से प्रेरित प्रभावित होकर शोषणमूलक दृष्टि के समर्थक रचनाकारों का विरोध और इसके विरोधी रचनाकारों का समर्थन किया है। अभिजन संस्कृति व अभिजनवादी विचारधारा का विरोध और जन संस्कृति, जन भाषा साहित्य और जनवादी विचारधारा का समर्थन प्रतिपादन किया है।

इतिहास-यात्रा में वर्तमान का आग्रह और उसके खतरे

इस विस्तृत विवेचन से स्पष्ट है कि राहुल की इतिहास दृष्टि पर उनके समय और समाज का गहरा असर पड़ा है। उनकी इतिहास दृष्टि के निर्माण में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन, विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन और प्रगतिशील आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका रही है। इसलिए शुरू में जो इतिहास-यात्रा या अतीत यात्रा पर वर्तमान के प्रभाव की प्रस्थापना रखी गयी थी, वह तार्किक निष्कर्ष पर पहुँचती है। लेकिन जैसा कि कहा गया कि इतिहास-यात्रा के संदर्भ में सिर्फ वर्तमान पर दृष्टि केन्द्रित करना एक दूसरे तरह के सापेक्षतावाद से ग्रस्त होना है। राहुल इससे बचते हैं। वस्तुतः इससे इतिहास का स्वरूप क्षतिग्रस्त होता है। साथ ही, इसके बड़े ही दुष्प्रभाव दर्ज किए जा सकते हैं।

वतमाना के हाथा पूरी तरह बिका इतिहास न केवल धार पक्षपात का शिकार हो जाता है बल्कि विनाश की पष्ठभूमि तैयार करन म भी मदद करता है। वतमानता के आग्रही फासिस्ट राजतन्त्रा ने इतिहास का राजनतिक उपकरण के रूप म इस्तमाल करना शुरू कर दिया और इतिहासकार का इतिहास क मार्चे का सिपाही' घोषित कर दिया गया। जमनी म हिटलर क जमान म वस्तुगत इतिहास की परम्परा के मुख्य पत्र 'हिस्टोरिश साइटश्रिफ्ट' का स्वरूप ही बदल दिया गया और नात्सीवाद के प्रभाव मे वाल्टर फान्क न इतिहासकारा का आह्वान किया कि व देश के अधिकारियो की तरह काय करें। माइनक जैस विद्वान इतिहासकार का 'हिस्टोरिश साइटश्रिफ्ट' क सम्पादक पद से हटा दिया गया और उसकी जगह एक नात्सी प्रचारक फान म्यूलर का सम्पादक बनाया गया। म्यूलर न अपन पहले ही सम्पादकीय म लिखा कि इतिहास का निकटतम सम्बन्ध कविता स है और इतिहास को वतमान की सवा करनी चाहिए। इसका अथ स्पष्ट था कि इतिहासकार हिटलर के नात्सीवाद को इतिहास के माध्यम से सजीव और शक्तिशाली बनाय। यह स्थिति पिछले कुछ वर्षों से भारतवष मे भी दिखायी पडती है। कांग्रेसी शासक वग के रहनुमा अपन का या अपनी परम्परा का स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास म बलात प्रतिष्ठित करवा रहे हैं। कुख्यात 'कालपात्र काण्ड' इसी की विकृत अभिव्यक्ति थी। इन दिनो स्वाधीनता आन्दोलन क इतिहास का लिखवान की साजिशपूर्ण योजना तैयार की गयी है। इसमे शासक घराने को भरपूर उछालन की हिदायत दी गयी है। इस इतिहास की पढाई स्कूली शिक्षा से ही अनिवाय कर दी जायेगी। आप सहज ही अनुमान लगा सकत हैं कि भावी पीढी को किस कदर बरगलाने और चौपट करन की साजिश की जा रही है। कहना न होगा कि इतिहास लेखन की एसी त्रासदी वतमानता के आग्रह के कारण होती है। इसलिए इतिहास लेखन के सन्दभ म अतीत और वतमान दोना की सापेक्षता से बचते हुए दोना क द्वद्वात्मक सम्बन्ध पर ध्यान देना जरूरी है। इस सम्बन्ध को दृष्टिपथ म रखकर ही सही और वज्ञानिक इतिहास लिखा जा सकता है।

राहुल का सन्तुलन

राहुल सांकृत्यायन न अपनी इतिहास यात्रा क सन्दभ म अतीत और वतमान के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध का दष्टिपथ म रखा है। व अपन का दोनो की सापेक्षता स बचाते हैं। बावजूद इसके कुछ लोगा न उन्ह वतमानता का आग्रही माना है। इतिहास पर माक्सवाद का लादने और ऐतिहासिक पात्रा-लेखका को माक्सवादी बनाने का आरोप लगाया है। जैसा कि पहले अध्याय म ही कहा जा चुका है कि इस तरह क आरोप माक्सवाद और इतिहास प्रक्रिया की नासमझी और जनवादी विचारधारा के प्रच्छन्न विरोध क प्रमाण है। वस्तुत राहुल न कही भी माक्सवाद को लादन या किसी को माक्सवादी बनाने या ऐतिहासिक तथ्यो का तोडन मरोडन की कोशिश नही की है। ई० एच० कार न ठीक ही लिखा है कि मनुष्य का अपने परिवेश के साथ जो सम्बन्ध है वही इतिहासकार का अपनी विषय-वस्तु से है। इतिहासकार न तो अपन तथ्यो का बदाम गुलाम होता है, न ही उनका

निरकुश शासक। इतिहासकार या अपने तथ्यों के साथ बराबर का दर्जा होता है। जैसा प्रत्येक कार्यशील इतिहासकार जानता है अगर वह सोचने और लिखने की प्रक्रिया के बीच रुककर महसूस करे कि वह अपने तथ्यों को व्याख्या के रूप में ढालने और अपनी व्याख्या को तथ्यों के रूप में ढालने की एक अनवरत प्रक्रिया में लगा हुआ है। इनमें से *किसी एक को प्राथमिकता देना असम्भव है।*[13] राहुल ने अपनी इतिहास यात्रा के संदर्भ में तथ्यों के साथ यही बराबरी का रिश्ता कायम किया है। वे न तो उसे तोड़ते मरोड़ते हैं और न ही अनजाने उसका अनुगमन करते हैं। यह समझ अतीत और वर्तमान की द्वन्द्वात्मकता को दृष्टिपथ में रखने के कारण ही आ सकी है।

संदर्भ

1 ई० एच० कार इतिहास क्या है प० 32 33
2 वही प० 34
3 वही, प० 17
4 वही प० 43
5 सर जान स्ट्रैची, इण्डिया इट्स एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड प्रोग्रेस प० 5
6 *एस० आर० गोयल, ए हिस्ट्री आव द इम्पीरियल गुप्तास प० 31*
7 सर जान सीले, द एक्सपेंशन आव इंग्लैण्ड प० 254 55
8 रोमिला थापर एंसिएण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री सम इण्टरप्रेटेशन्स प० 5
9 राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए प० 28-29
10 रोमिला थापर दि पास्ट एण्ड प्रीज्युडिस प० 12
11 राहुल सांकृत्यायन सफदर, वोल्गा से गंगा प० 359
12 वही प० 362
13 ई० एच० कार, इतिहास क्या है, प० 20 21

परिशिष्ट

(क) राहुल सांकृत्यायन की कृतियाँ

उपन्यास

1 बाईसवीं सदी 1981 इलाहाबाद, किताब महल
2 जीने के लिए 1981 इलाहाबाद, किताब महल
3 सिंह सेनापति 1951, इलाहाबाद, किताब महल
4 जय यौधेय 1956 इलाहाबाद, किताब महल
5 मधुर स्वप्न जुलाई 1950, कलकत्ता, आधुनिक पुस्तक भवन
6 राजस्थानी रनिवास 1953, मसूरी, राहुल प्रकाशन
7 विस्मृत यात्री 1955 इलाहाबाद, किताब महल
8 दिवोदास 1963, इलाहाबाद, किताब महल

अनुवाद

9 शैतान की आँख 1944, इलाहाबाद, किताब महल
10 विस्मृति के गर्भ में 1945, इलाहाबाद, किताब महल
11 जादू का मुल्क 1942 इलाहाबाद, किताब महल
12 सोने की ढाल 1942 इलाहाबाद किताब महल
13 जो दास थे (मूल लेखक सदरुद्दीन ऐनी) 1947, इलाहाबाद, किताब महल
14 अनाथ (मूल लेखक सदरुद्दीन ऐनी) 1948 इलाहाबाद किताब महल
15 सूदखोर की मौत (मूल लेखक सदरुद्दीन ऐनी) 1952 पटना राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान
16 दाखुन्दा (मूल लेखक सदरुद्दीन ऐनी) 1955 इलाहाबाद किताब महल
17 अदीना (मूल लेखक सदरुद्दीन ऐनी) 1981, इलाहाबाद किताब महल
18 शादी (मूल लेखक जलाल इकरामी) 1967, वाराणसी हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

कहानी सग्रह

1 सतमी के बच्चे 1977, इलाहाबाद, किताब महल
2 वोल्गा से गगा 1981, इलाहाबाद, किताब महल
3 बहुरगी मधुपुरी 1954, हैपीवेली, मसूरी, राहुल प्रकाशन
4 कनल की कथा 1957, इलाहाबाद, किताब महल

आलोचना, साहित्येतिहास भाषा एव लोक साहित्य सम्बधी चिन्तन

1 पुरातत्व निबधावली 1937, इलाहाबाद, इण्डियन प्रेस लिमिटड
2 हिन्दी काव्यधारा 1945, इलाहाबाद, किताब महल
3 साहित्य निबधावली 1948, इलाहाबाद, किताब महल
4 दखिनी हिदी काव्यधारा 1880, शकाब्द, पटना बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
5 सस्कृत काव्यधारा 1958, इलाहाबाद, किताब महल
6 राहुल निबधावली 1970 पीपुल्स पब्लिशिग हाउस
7 आदि हिदी की कहानियाँ और गीतें (सम्पादन) 1952, पटना, राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान
8 पालि साहित्य का इतिहास 1963 लखनऊ, हिदी समिति, उत्तर प्रदेश शासन
9 दोहा-कोश (सम्पादन) 1957, पटना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
10 हिदी साहित्य का बहत इतिहास (षोडश भाग), सम्पादन स० 2016 वि०, वाराणसी नागरी प्रचारिणी सभा
11 तुलसी रामायण सक्षेप, 1957 (सम्पादन)
12 सस्कृत (टीका अनुवाद), 1956 (सम्पादन)

कोश

1 शासन शब्द कोश 1948, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन
2 सक्षिप्त राष्ट्रभाषा कोश 1953, वर्धा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
3 तिब्बती हिदी कोश (भाग-1) 1972, नयी दिल्ली, साहित्य अकादमी
4 तिब्बती सस्कृत कोश

जीवनी और सस्मरण

1 नये भारत के नय नता (दो खण्डा म) 1944, इलाहाबाद यू बुक सिंडीकेट
2 सरदार पृथ्वी सिंह 1944 नयी दिल्ली पीपुल्स पब्लिशिग हाउस
3 अतीत स वतमान सितम्बर 1965, वाराणसी, हिदी प्रचारक पुस्तकालय
4 स्तालिन 1954, नयी दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिग हाउस
5 काल मावस 1954, इलाहाबाद, किताब महल

6 बचपन की स्मृतियाँ 1955, इलाहाबाद, किताब महल
7 लनिन 1955, नयी दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस
8 माओत्से तुग 1956 इलाहाबाद, किताब महल
9 महामानव बुद्ध 1956 लखनऊ बुद्ध विहार
10 जिनका म कृतज्ञ 1956, इलाहाबाद, किताब महल
11 वीरचन्द्र सिंह गढ़वाली 1957 इलाहाबाद, किताब महल
12 धमरत्न पमि 1954, काठमाण्डा नपाल
13 घुमक्कड स्वामी 1958, इलाहाबाद, किताब महल
14 मरे असहयाग क साथी 1958 इलाहाबाद, किताब महल
15 कप्तान लाल 1961, दिल्ली राजपाल एण्ड सस
16 सिंहल क वीर 1883 शकाब्द, इलाहाबाद, किताब महल
17 सिंहल घुमक्कड जयवद्धन 1961 ई०, दिल्ली, राजपाल एण्ड सस

यात्रा वत्तात और देश दर्शन

1 तिब्बत म सवा वष 1933, नयी दिल्ली, शारदा मन्दिर
2 मरी तिब्बत यात्रा 1936, प्रयाग, छात्र हितकारी पुस्तकमाला
3 जापान 1938, छपरा साहित्य सवक सघ
4 सावियत भूमि 1949
5 मेरी लद्दाख यात्रा 1939 इलाहाबाद, इण्डियन प्रेस
6 घुमक्कड शास्त्र 1948, इलाहाबाद किताब महल
7 किन्नर देश 1956 इलाहाबाद, किताब महल
8 सावियत मध्य एशिया 1948 प्रयाग छाया निकुज प्रकाशन
9 लका इलाहाबाद, किताब महल
10 दार्जलिंग परिचय 1950 कलकत्ता आधुनिक पुस्तक भवन
11 रूस म पच्चीस मास 1952, बीकानेर आलोक प्रकाशन
12 यात्रा क पन्ने 1952 देहरादून साहित्य सदन
13 कुमाऊँ 1952 वाराणसी ज्ञान मण्डल
14 गढवाल 1953, लोगनल प्रेस
15 एशिया के दुगम भूखण्डो म 1959 इलाहाबाद, नवभारती प्रकाशन
16 चीन मे क्या देखा 1960, नयी दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस
17 जौनसार देहरादून 1961, प्रयाग विद्यार्थी ग्रन्थागार
18 जेतवन श्रावस्ती 1964, भारतीय महाबोधि सागायटी, श्रावस्ती
19 ईरान इण्डियन प्रेस इलाहाबाद

इतिहास

1 मध्य एशिया का इतिहास (प्रथम भाग) 1956, पटना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
2 मध्य एशिया का इतिहास (द्वितीय भाग) 1957, पटना बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
3 ऋग्वैदिक आर्य 1957, इलाहाबाद किताब महल
4 अकबर 1956 इलाहाबाद, किताब महल
5 सोवियत शासन का इतिहास (प्रथम भाग) इलाहाबाद, नया हिन्दुस्तान प्रेस
6 सोवियत शासन का इतिहास (द्वितीय भाग) इलाहाबाद, किताब महल
7 मानव की कहानी 1968, दिल्ली राजपाल एण्ड सन्स
8 मानव समाज 1943, पटना, ग्रंथमाला कार्यालय

अनुवाद

1 भारत में ब्रिटिश राज्य के संस्थापक, मूल लेखक—अर्नेस्ट फास्टर 1956 करेण्ट प्रकाशन, कानपुर

दर्शन

1 बौद्ध दर्शन 1943, इलाहाबाद, किताब महल
2 वैज्ञानिक भौतिकवाद 1944, इलाहाबाद लोकभारती प्रकाशन
3 दर्शन दिग्दर्शन 1944, इलाहाबाद, किताब महल

विज्ञान

1 विश्व की रूपरेखा 1944, इलाहाबाद, किताब महल

संस्कृति, धर्म एवं अन्य

1 बौद्ध संस्कृति 1952, कलकत्ता, आधुनिक पुस्तक भवन
2 तिब्बत में बौद्ध धर्म इलाहाबाद, किताब महल
3 इस्लाम धर्म की रूपरेखा 1950, इलाहाबाद, किताब महल
4 नवदीक्षित बौद्ध 1975, बुद्ध विहार लखनऊ

सम्पादन एवं अनुवाद

1 बुद्ध चर्या 1931, वाराणसी सेवा उपवन
2 मज्झिम निकाय 1933, वाराणसी महाबोधि सभा, सारनाथ
3 विनय पिटक 1935, वाराणसी, महाबोधि सभा, सारनाथ
4 थेरी गाथा 1937, उत्तम भिक्खुना

5 दीघ निकाय 1936, वाराणसी, महाबोधि सभा, सारनाथ
6 इतिवुत्तक 1936, उत्तम भिक्खुना
7 उदान 1937 उत्तम भिक्खुना
8 खुद्दक पाठा 1937, उत्तम भिक्खुना
9 चरियापिटक 1937, उत्तम भिक्खुना
10 प्रमाण वार्तिक पटना, रिसर्च इन्स्टीच्यूट
11 प्रमाण वार्तिक भाष्य 1948 इलाहाबाद किताब महल
12 प्रमाण वार्तिक वृत्ति पटना बिहार रिसर्च सोसायटी
13 वाद न्याय पटना बिहार रिसर्च सोसायटी
14 प्रमाण वार्तिक स्ववृत्ति टीका इलाहाबाद, किताब महल
15 प्रमाण वार्तिक स्ववृत्ति इलाहाबाद किताब महल
16 सम्बन्ध परीक्षा पटना, जायसवाल रिसर्च इंस्टीच्यूट
17 धम्म पद 1965 लखनऊ, बुद्ध विहार
18 अम्बट्ठ सुत्त महाबोधि सभा
19 दीर्घागमस्य सूत्र दयम 1957 लखनऊ बुद्ध विहार

आत्मकथा

1 मेरी जीवन यात्रा (भाग 1) 1944 कलकत्ता, आधुनिक पुस्तक भवन
2 मेरी जीवन यात्रा (भाग-2) 1951, इलाहाबाद, किताब महल
3 मेरी जीवन यात्रा (भाग-3) 1966, नयी दिल्ली राजकमल प्रकाशन
4 मेरी जीवन यात्रा (भाग 4) 1966, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
5 मेरी जीवन यात्रा (भाग 5) 1967, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

राजनीतिक चिन्तन

मौलिक

1 साम्यवाद ही क्यों? 1934, इलाहाबाद किताब महल
2 क्या करें? 1937, इलाहाबाद, किताब महल
3 भागो नहीं (दुनियाँ को) बदलो 1944, इलाहाबाद, किताब महल
4 आज की समस्याएँ 1945, इलाहाबाद किताब महल
5 आज की राजनीति 1950 नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
6 कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं? 1953 राहुल प्रकाशन
7 तुम्हारी क्षय 1959 इलाहाबाद किताब महल
8 रामराज्य और मार्क्सवाद 1959, नयी दिल्ली, पापुलर पब्लिशिंग हाउस

9 चीन में कम्युन 1959 नयी दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस
10 दिमागी गुलामी 1965 इलाहाबाद, किताब महल

अनुवाद

1 सोवियत न्याय, मूल लेखक —हडडो मोलाड 1980, छपरा, वाणी मन्दिर

राहुल के भोजपुरी नाटक

1 तीन नाटक 1958, इलाहाबाद किताब महल
2 पाँच नाटक 1944, छपरा अच्युतानन्द सिंह

(ख) सन्दर्भ-ग्रन्थ

1 डॉ० कमला सांकृत्यायन एव डॉ० मूलचन्द आनन्द, राहुल सांकृत्यायन के श्रेष्ठ निबन्ध 1982, प्रवीण प्रकाशन महरौली नयी दिल्ली 30
2 डॉ० गुप्तेश्वर नाथ उपाध्याय राहुल सांकृत्यायन के गद्य साहित्य का शैलीगत अध्ययन, 1976 विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी
3 डॉ० मनेजर पाण्डेय साहित्य और इतिहास दृष्टि 1981, पीपुल्स लिटरेसी, मटिया महल, दिल्ली 6
4 डॉ० रागेय राघव, महायात्रा गाथा (भाग-1 और भाग 2) 1964, किताब महल इलाहाबाद
5 डॉ० भगवतशरण उपाध्याय सवेरा संघर्ष गर्जन, तृतीय संस्करण 1966 भारतीय ज्ञानपीठ कलकत्ता 27
6 डा० रामविलास शर्मा, भाषा और समाज दूसरा संस्करण, 1977, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली 2
7 डॉ० रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, प्रथम संस्करण, 1981, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली 2
8 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली 3 प्रथम संस्करण, 1981, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 2
9 जार्ज लुकाच, उपन्यास का सिद्धान्त प्रथम हिन्दी संस्करण 1981 मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, नयी दिल्ली 28
10 डा० नामवर सिंह इतिहास और आलोचना तीसरा संस्करण 1978, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 2
11 डा० रांगेय राघव रांगेय राघव ग्रन्थावली, प्रथम संस्करण 1982 राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली

12 व० केल्ले और म० कावालजोन, ऐतिहासिक भौतिकवाद,1974,प्रगति प्रकाशन, मास्को

13 कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगेल्स, सकलित रचनाएँ खण्ड 3 भाग 2, 1978, प्रगति प्रकाशन मास्को

14 रोमिला थापर भारत का इतिहास, द्वितीय संस्करण 1981, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-2

15 एमिल बर्न्स मार्क्सवाद क्या है ?, सातवां हिन्दी संस्करण 1976, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 55

16 वि० अफनास्येव, मार्क्सवादी दर्शन, तीसरा संस्करण, 1977, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 55

17 डा० रामविलास शर्मा मानव सभ्यता का विकास, द्वितीय संस्करण, 1983 वाणी प्रकाशन दिल्ली 2

18 डा० भगवतशरण उपाध्याय भारतीय संस्कृति के स्रोत, 1983, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली 55

19 प्रभाकर माचवे राहुल सांकृत्यायन द्वितीय संस्करण,1982 साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली 1

20 डा० दिवाकर राहुल सांकृत्यायन, 1983, दीपम प्रकाशन, नवादा (बिहार)

21 डा० नामवर सिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

22 चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू

23 गुरुदत्त, बहती रेता

24 डा० मजूमदार साम्राज्य एकता का युग

25 डा० काशीप्रसाद जायसवाल, हिन्दू राजतन्त्र

26 रजनी पामदत्त, आज का भारत प्रथम हिन्दी संस्करण 1977, दि मैकमिलन कम्पनी आव इण्डिया लि०

27 डा० नगेन्द्र, काव्य चिंतन

28 डा० त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद

29 डा० सत्यपाल चुघ ऐतिहासिक उपन्यास, प्रथम संस्करण 1973, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 2

30 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

31 Georg Lukacs The Historical Novel Third Edition, 1976, Penguin Books Ltd

32 Lucien Goldmann, The Hinden God, Third English Edition 1977, Routledge and Kegan Paul Ltd London and Henley

33 A R Desai, Social Background of Indian Nationalism Fifth Edition, 1976, Popular Prakashan Pvt Ltd, Bombay 34

34 Bipan Chandra, Modern India 1980, NCERT New Delhi 16

35 Bipan Chandra, Amales Tripathi and Barun De, Freedom Struggle 1980, National Book Trust, India, New Delhi 16

36 E H Carr What is History 1976, Penguin Books Ltd

37 A B Keith, Speeches and Documents on Indian Policy 1750 1921 vol I Oxford University Press

38 S C Bose, The Indian Struggle

39 Sir John Strechi, India its administration and progress ICWA

40 S R Goyal, A History of the Imperial Guptas 1967, Central Book Depot Allahabad

41 H C Roy Chaudhuri, Political History of Ancient India, Calcutta 1923

42 Romila Thapar Ancient Indian Social History Some interpretations, 1978 Orient Longman

43 Romila Thapar Asoka and the decline of Mauryas, Second edition 1977, Oxford University Press

44 Romila Thapar, The past and prejudice Reprinted 1979, National Book Trust India New Delhi-16

45 Karl Marx A contribution to the critique of Political Economy, Progress Publisher, Moscow

46 P B Kane History of Dharmashastra vol-II, part 1, 1941

47 A J P Tailor, From Nepolian to Stalin

48 V I Lenin, Selected Works vol VII Progress Publisher, Moscow

49 Sidney Huk The Hero in History

50 Sir John Shelay, The expansion of England

51 Gregor McLennan Marxism and the Methodologies of History 1981, Verso Editions and NLB

52 G A Cohen, Karl Marx s theory of History—A defence, Clarendon Press, Oxford 1978

पत्रिकाएँ

1 आलोचना 3 / नवांक 49 50 / नवांक 62 63 / नवांक 72, नयी दिल्ली

2 वचन, अंक-5, नयी दिल्ली

3 दृष्टि, अंक 14, नवादा (बिहार)

०००



डा० चन्द्रभानु प्रसाद सिंह

15 दिसम्बर 1959 को बिहार प्रांत के मुंगेर (अब बेगूसराय) जिले के छोटे से गाँव हसनपुर (तेघड़ा) में जन्म। उच्च शिक्षा के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में 1978 में प्रवेश। 1980 में एम० ए०, प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान। 1982 में 'भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन और जयशंकर प्रसाद के नाटक' विषय पर एम० फिल०। 1986 में 'राहुल सांकृत्यायन की इतिहास दृष्टि' विषय पर पी एच० डी०। सम्प्रति ए० पी० एस० एम० कॉलेज, बरौनी (बिहार) में हिन्दी अध्यापन के साथ ही 'भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन और माखनलाल चतुर्वेदी का साहित्य' विषय पर डी० लिट्० उपाधि के लिए शोधकार्य में रत।